भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता

(तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)

शोध-प्रबन्ध

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच. डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत
हिन्दी
(कला संकाय)

शोधार्थी
श्रीकृष्ण शर्मा

शोध–पर्यवेक्षक
डॉ. पूरणमल मीना (विभागाध्यक्ष)
हिन्दी विभाग
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सवाई माधोपुर

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2017

डॉ. पूरणमल मीना
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाईमाधोपुर (राज.)

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध प्रबन्ध **'भक्ति काल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता (तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)'** शोधार्थी श्रीकृष्ण शर्मा ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है—

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने वर्ष में 200 दिन से अधिक आकर विश्वविद्यालय के नियम का पालन किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी का बताई गई शोध पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देता हूँ।

दिनांक :

डॉ. पूरणमल मीना
(शोध पर्यवेक्षक)

घोषणा–पत्र (शोधार्थी)

मैं घोषणा करता हूँ कि शोध–प्रबन्ध **'भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता (तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)'** में, जो शोधकार्य मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिये आवश्यक है। मैंने यह शोधकार्य **डॉ. पूरणमल मीणा (विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाई माधोपुर, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा)** के निर्देशन में पूर्ण किया है। यह मेरा मौलिक कार्य है। मैंने अपने विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है और जहाँ दूसरे विचारों और शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे मेरे द्वारा विभिन्न मान्य स्रोतों से लिये गये हैं। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है। जो कार्य इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है, वह कहीं और किसी और डिग्री के लिए किसी भी संस्था में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारी से पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया है। मैं समझता हूँ कि किसी भी नियम का उल्लंघन करने पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है और मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है। यदि मैंने किसी स्रोत से बिना, उसका नाम दर्शाये या जिस स्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक :

श्रीकृष्ण शर्मा
(शोधार्थी)

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी श्रीकृष्ण शर्मा (RS/1085/13) द्वारा उपर्युक्त सभी सूचनायें मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

दिनांक :

डॉ. पूरणमल मीणा
(शोध पर्यवेक्षक)
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर (राज.)

पीएच. डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध का अनुमोदन

यह शोध प्रबन्ध **'भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता (तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)'** शोधार्थी श्रीकृष्ण शर्मा (पंजीयन संख्या (RS/1085/13) शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाई माधोपुर (कोटा विश्वविद्यालय, कोटा) द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसे पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए अनुमोदित किया जाता है।

परीक्षक

दिनांक :

स्थान :

शोध पर्यवेक्षक

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled **'भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता (तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)'** by Shrikrishna Sharma under my guidance. He has completed the following requirements as per Ph.D. regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented his work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal.

I recommend the submission of thesis.

Date:

Dr. Pooran Mal Meena
Supervisor
Head of the Deptt. of Hindi
Shaheed Captain Ripudaman Singh,
Govt. P.G. College, Sawaimadhopur.

CANDIDATE'S DECLARATION

I hereby certify that the work which is being presented in the thesis entitled **'भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता (तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)' is partial** fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy carried under the supervision of **Dr. Pooran Mal Meena and submitted to Shaheed Captain Ripudaman Singh, Govt. P.G. College, Sawaimadhopur, University of Kota, Kota** represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources, the work presented in the thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and Integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Date: **(Shrikrishna Sharma)**

Date :

This is to certify that the above statement made by Shrikirshan Sharma (RS/1085/13) is correct the best of my knowledge.

(DR. POORAN MAL MEENA)
Research Supervisor
Head of the Deptt. of Hindi
Shaheed Captain Ripudaman Singh,
Govt. P.G. College, Sawaimadhopur

THESIS APPROVAL FOR DOCTOR OF PHILOSOPHY

This thesis entitled **'भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता (तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)' by** Shrikrishna Sharma (RS/1085/13) submitted to the Shaheed Captain Ripudaman Singh, Govt. P.G. College, Sawaimadhopur, University of Kota, Kota approved for the award of Degree of Doctor of Philosophy

Examiner's

Supervisor

Date : --------------

Place : -------------

भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता

(तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)

शोध-सारांश

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच. डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत
हिन्दी
(कला संकाय)

शोधार्थी
श्रीकृष्ण शर्मा

शोध–पर्यवेक्षक
डॉ. पूरणमल मीना (विभागाध्यक्ष)
हिन्दी विभाग
शहीद कैप्टर रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सवाई माधोपुर

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2017

पीएच.डी.
थीसिस

भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता

(तुलसीदास, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के विशेष सन्दर्भ में)

श्रीकृष्ण
शर्मा

2017

प्रथम अध्याय

नारी चिंतन का अर्थ, स्वरूप और अवधारणा, नारी चिंतन का अभिप्राय

नारी चिंतन में स्त्रीपक्ष एवं स्त्री सम्बन्धित प्रश्न

भारतीय समाज में नारी की स्थिति तथा उससे जुड़े हुए प्रश्नों की चर्चा करने के पूर्व इतिहास के पृष्ठों पर स्त्रियों का कैसा चित्र अंकित है यह समझना आवश्यक है। सामाजिक जीवन कभी भी देश एवं काल के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री का दर्जा बहुत ऊँचा था। ऐसी मान्यताओं को यथार्थ की कसौटी पर कसने की आवश्यकता है। यदि हम यह स्वीकार कर लें कि प्राचीन युग में स्त्री की स्थिति बहुत अच्छी थी तथा उसका स्थान ऊँचा था तो उसकी उच्चता के प्रेरक तत्त्व कौन-कौन-से थे तथा उसका ह्रास कब और कैसे हुआ। यह समझने के लिए इतिहास पर दृष्टि डालना परमावश्यक है।

भारतीय व्यवस्था के इतिहास में स्त्रियों की स्थिति एक लम्बे समय से विवाद का विषय रही है। स्त्रियों की स्थिति से सम्बन्धित विवाद का कारण यह नहीं कि हम जैविकीय या मानसिक रूप से उन्हें दोषपूर्ण मानते हैं। बल्कि इसका प्रमुख कारण हमारी पवित्रता सम्बन्धी संकीर्ण विचारधारा ही है। अनेक पश्चिमी विद्वानों ने यहाँ तक मान लिया कि नारी के कुछ ऐसे जन्मजात दोष हैं, जिनके कारण वह पुरुषों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकती है। डॉ. रूबैक (Dr. A. R. Roobac) का विचार है कि स्त्रियों के जन्म से ही असंगति और परस्पर विरोध का दोष होता है। जबकि फ्राइड ने यहाँ तक कह दिया है कि "यह स्वीकार करना होगा स्त्रियों में न्याय की भावना बहुत कम होती है। क्योंकि उनके मस्तिष्क में ईर्ष्या भरी होती है। जबकि भारतीय समाज में ऐसी कोई धारणा नहीं पाई जाती

है। हमारी मौलिक, सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों को सम्पत्ति ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है जिसकी अभिव्यक्ति के रूप में लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा की पूजा की जाती रही है। भारतीय समाज में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी के रूप में स्थान दिया गया है जिसके बिना किसी भी कर्त्तव्य की पूर्ति नहीं की जा सकती है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि वैदिक और उत्तर वैदिक काल के पश्चात् हमारे समाज की मौलिक व्यवस्थाएँ, रूढ़ियों के रूप में परिवर्तित होने लगीं और फलस्वरूप स्त्रियों को लज्जा, ममता और स्नेह के गुणों को उनकी दुर्बलता समझकर पुरुष ने शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी प्रवृत्तियों को स्मृतिकारों एवं धर्मशास्त्रकारों का आशीर्वाद प्राप्त होने के कारण स्त्री धीरे-धीरे परतंत्र नि:सहाय और निर्बल बन गई। पुरुष ने शक्ति के लोभ में स्त्री के पारिवारिक अधिकार तक छीन लिए। इन परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि मध्यकाल में हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति एक दासी की तरह हो गई। समय और समाज परिवर्तनशील होता है और हमारे समाज के एक बड़े भाग ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए व्यापक प्रयत्न किए गए। अनेक क्षेत्रों में स्त्रियों ने पुरुषों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर यह सिद्ध कर दिया है कि जन्मजात दृष्टि से उनमें कोई भी क्षमता पुरुषों से कम नहीं होती है।

भारतीय स्त्री की चर्चा करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि स्त्री की स्थिति में मूलभूत परिवर्तन 19वीं सदी के बाद हुआ। बाह्य दृष्टि से इस परिवर्तन के लिए अंग्रेजी राज्य को उत्तरदायी माना जा सकता है। इस नई राजसत्ता ने कौन-सी शक्तियाँ पैदा की जिन्होंने सदियों से जमी मान्यताओं की नींव हिला दी। साथ ही एक अन्य विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि 19वीं सदी के पूर्व समाज में कौन-से कारण, कौन-से दबाव, कौन-सी जटिलताएँ थी तथा कौन-से नियंत्रण थे, जिनके कारण स्त्री के स्थान एवं दर्जे में पिछले 3-4 हजार वर्षों के इतिहास में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हो सका, इन सब समस्याओं के समाधान के लिए इतिहास की गहराइयों का अन्वेषण करना जरूरी है। समाज में स्त्रियों की स्थिति की विवेचन के लिए हम विभिन्न कालों में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन कर सकते हैं। ये इस प्रकार हैं—[1]

1. वैदिक काल में स्त्रियों की प्रस्थिति

2. उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की प्रस्थिति

3. धर्मशास्त्र काल में स्त्रियों की प्रस्थिति

4. मध्यकाल में स्त्रियों की प्रस्थिति

5. ब्रिटिश काल में स्त्रियों की प्रस्थिति

6. स्वतंत्रता काल में स्त्रियों की प्रस्थिति

7. बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की प्रस्थिति

वैदिक काल में स्त्रियों की प्रस्थिति कैसी थी?

वैदिक समाज में नारी के अस्तित्व एवं योगदान से गृहस्थाश्रम को आदर्श रूप प्राप्त होता था। इस युग में घर का अस्तित्व नारी के अस्तित्व में ही निहित माना जाता था, नारी समाज में पूज्य मानी जाती थी। वह समाज इतिहास का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है। इस समाज में नारियों ने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपयोग किया था।

ऋग्वैदिक युग में योग्य कन्या सुख का कारण मानी जाती थी फिर भी वेद पुराणों में स्त्रियाँ पुत्र प्राप्ति की कामना करती हुई दृष्टिगत होती हैं।

वैदिक समाज में यद्यपि कन्या को भी पुत्रवत स्नेह एवं आदर प्राप्त था फिर भी कन्या जन्म के समय पुत्र जन्म के समान संस्कारों का सम्पादन नहीं किया जाता था। शत्रु नाश एवं आर्यों की स्थिति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से विशेष खुशी मनाई जाती थी।

अथर्ववेद में कहा गया है कि "नववधू तू जिस घर में जा रही है वहाँ की तू साम्राज्ञी है, तेरे सास ससुर तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनन्दित हों।" अथर्ववेद में ही ही लिखा है—'जायापत्ये मधुमती वां वदतु शांतिवाम' अर्थात् बहू घर में आते ही गृहस्थी की बागडोर सँभाल ले और आते ही घर की साम्राज्ञी बन जाए। पत्नी के रूप में नारी निश्चय ही पति की अर्धांगिनी होती थी। वेद युग में पत्नी को मित्र का रूप प्राप्त था, वेदों में दम्पति इस तथ्य का परिचायक है कि पति और पत्नी मिलकर दोनों गृहस्थी का संचालन करते थे।

पति-पत्नी के संबंधों में इतनी अधिक समता, घनिष्टता एवं माधुर्य होते हुए भी पितृप्रधान वैदिक समाज में पति की प्रभुता ही मानी जाती थी। ए. एस. एल्तेकर के अनुसार तद्‌युगीन समाज में पत्नी के पति के प्रति अधीनता व आदर भाव से पूरित थी।

इस अधीनत्व के बावजूद पत्नियाँ तद्युगीन गृहों का आभूषण मानी जाती थी। पत्नी ही पूरे गृह का संचालन करती थी एवं दास आदि लोगों को उचित कार्यों में प्रवृत्त करती थी।

वेदयुगीन नारी मातृ रूप में देवी के समान पूज्य मानी जाती थी। पत्नी को 'जाया' का अभिधान प्रदान कर हमारे आर्य मनीषियों ने नि:सन्देह नारी को गौरवपूर्ण स्थान दिया है जिसके गर्भ में स्वामी स्वयं पुत्र रूप में जन्म ग्रहण करे। वही जाया है। वेद युग में पर्दा–प्रथा का पूर्णत: अभाव था। कन्याएँ नि:शंक होकर युवकों के साथ अध्ययन करती थीं एवं काम धन्धे भी करती थीं। वे अध्यापन कार्य भी करती थीं। स्त्रियाँ खुली आम सभाओं में भी भाग लेती थीं। किन्तु उत्तर वैदिक युग में नारी की बाह्य क्षेत्रीय स्वतंत्रता कुछ कम हो गई थी।

वेदयुगीन नारियाँ वैदिक वाङ्मय का विधिवत् अध्ययन करती थीं एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चार भी करती थीं। वैदिक समाज में धर्म के नाम पर स्त्रियों के प्रति दुराचार नहीं किया जाता था।

विवाह संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् कन्याएँ अधिक सम्मान की पात्र हो जाती थी। प्रारम्भिक वेद युग में पत्नी ही यज्ञ में सोमगीतों का गान करती थी। वह यज्ञ के लिए चावल बनाती थी। पति और पत्नी दोनों साथ ही पूजा करते थे। तदुपरान्त पति के दाईं और बैठ कर पति के संयोग से विधिवत् यज्ञ सम्पन्न करती थी।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री पी. एन. प्रभु ने हिन्दू सोशियल आर्गनाइजेशन में लिखा है कि जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध था स्त्री–पुरुषों में कोई भेद नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक स्थिति समान रूप से महत्त्वपूर्ण थी। वैदिक युग में पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह आदि कुरीतियाँ नहीं थी। यद्यपि वैदिक युग में नारी पावन और पवित्र समझी जाती थी किन्तु मासिक धर्म के समय वह अपवित्र एवं अस्पृश्य समझी जाती थी। वेदयुगीन समाज में धारणा थी कि इस समय पत्नी का स्पर्श भी पति को हानि पहुँचा सकता है।

उस सीमित काल के अलावा वैदिक नारी धार्मिक क्षेत्र में पुरुषों के समान समस्त अधिकारों का प्रयोग करती थी। ए. एस. एल्तेकर के अनुसार नारी धर्म के मार्ग में बाधक नहीं थी। धार्मिक संस्कारों एवं उत्सवों में पत्नी की उपस्थिति एवं सहयोग आवश्यक समझा जाता था। वैदिक युग में पत्नी व्यक्तिगत सम्पत्ति की स्वामिनी भी होती थी। पत्नी

की यह सम्पत्ति उसके वस्त्र आभूषण एवं धनराशि के रूप में होते थे। पत्नी विवाह के समय दहेज एवं भेंट में यह सम्पत्ति प्राप्त करती थी। इस सम्पत्ति पर पत्नी का पूरा अधिकार होता था। पत्नी इस व्यक्तिगत सम्पत्ति को कभी भी बेच सकती थी या किसी को दे सकती थी। भाई के अभाव में पिता की पूरी सम्पत्ति की वह अधिकारी होती थी।

वेदयुगीन विधवाएँ यातनामय जीवन नहीं जीती थीं अपितु वे समस्त सुविधाओं का उपयोग करती थीं। पुनर्विवाह भी वेदयुग में आदरणीय दृष्टि से देखे जाते थे। विधवा स्त्री अधिकांशत: अपने मृत पति के भाई या उनके किसी निकट सम्बन्धी से ही विवाह कर सकती थी। वैसे इन्हें अजनबी व्यक्ति से विवाह करने का भी अधिकार प्राप्त था।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित है कि उर्वशी पुरुरवा की कुछ शर्तों पर दूसरा विवाह करती है और शर्तों के हट जाने से वह पति से सम्बन्ध तोड़ लेती है।

निष्कर्षत: वेदयुगीन स्त्रियाँ समस्त अधिकारों की भोक्ता थीं एवं उनकी स्थिति उच्च एवं आदरणीय थी।

समाजशास्त्री के.एम. कपाड़िया के अनुसार वह घरेलू दिनचर्या की मुख्य केन्द्र थी। वह अपने घर की साम्राज्ञी थी। उस पावन युग में स्त्री सम्बन्धी कुरीतियों का चलन प्रारम्भ नहीं हुआ था। प्राचीन भारत के इतिहास में वेद युग नारी के उत्थान का सर्वोच्च काल माना जाता है।

उत्तर वैदिककाल में स्त्रियों की प्रस्थिति कैसी थी?

उत्तर वैदिक काल को सामान्यत: ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 300 वर्ष बाद तक माना जाता है। इस युग में पुत्री की अपेक्षा पुत्र जन्म अधिक मंगलदायक एवं आनन्ददायक माना जाता था। फिर भी पुत्री का स्थान सम्मानजनक था।

स्त्रियों को शिक्षा का पूरा अधिकार था क्योंकि गृहसूत्रों में स्त्रियों को समावर्तन संस्कार का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती थी। विवाह संस्कार के समय वर एवं वधू सम्मिलित रूप से अनुवादक मंत्रों का उच्चारण करते थे। स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों से कम नहीं थी। पाणिनी ने भी 'उपाध्याय एवं आचार्या' में स्त्रियों पर प्रकाश

डाला है। सूत्र के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विवाह के समय कन्याएँ पूर्णत: वयस्क एवं समागम के योग्य होती थीं।

बोधायन (बौद्ध ग्रन्थ) के अनुसार यदि वयस्क कन्या का पिता 3 वर्ष तक कन्या का पति खोज न सके तो कन्या को स्वयं पति वरण करने का अधिकार प्राप्त था। इस युग में सती-प्रथा का पूर्णत: अभाव था। विधवा स्त्री पति के साथ श्मशान घाट तक जाती थी। वहाँ से विधवा का देवर या वृद्ध व्यक्ति या पति का शिष्य उसे श्मशान घाट से घर लेकर आता था। घर में रहकर विधवा स्त्री संयमित एवं अनुशासित जीवन जीती थी। पति के नपुंसक होने पर, दुश्चरित्र होने पर पत्नी पति से सम्बन्ध विच्छेद कर सकती थी।

इस समय स्त्रियाँ पर्दा नहीं करती थीं। नवविवाहित स्त्रियाँ भी पर्दा नहीं करती थीं। यह प्रमाण हमें आपस्ताम्ब गृह सूत्र से प्राप्त होता है कि विवाह के पश्चात् श्वसुर गृह जाते हुए वधू का मुख सभी दर्शक देखते, साथ ही निम्नांकित वेदमंत्रों का उच्चारण भी करते थे—

सुमंगलीपि वधुरिमा समूत पश्नतु।
सोभाग्यमस्से दतवापाथास्त विपरेतन।।

स्त्री का स्थान समाज में भार्या के रूप में तो प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय था ही परन्तु स्त्री सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान माता के रूप में पाती थी। पतनोन्मुख पिता को पुत्र बहिष्कृत कर सकता था परन्तु पतिता माता पुत्र के आदर की पात्रा होती थी। अत: सूत्र काल में स्त्री का स्थान आदरणीय था। धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में वह पूर्ण स्वतंत्रता का भोग करती थी। आर्थिक क्षेत्र में वह सीमित अधिकार ही प्राप्त हुए हुए थी। पति की अनुपस्थिति में पत्नी अवश्य कुछ धन व्यय कर सकती थी।

महाकाव्ययुगीन समाज में नारी का स्थान धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा। सम्पूर्ण महाभारत में कन्या जन्म को अशुभ मानने का मात्र एक ही संकेत मिलता है। हालाँकि इस युग में कन्या जन्म को लक्ष्मी माना जाता था। कन्या की पवित्रता के कारण ही सिंहासना-रोहण या राजतिलक जैसे शुभ कार्यों में कन्या की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। पुत्री की रक्षा करना पितृधर्म माना जाता था। अनाथ कन्याओं की सुरक्षा राजा पितृवत करता था। घर में कन्या का कार्य मुख्यत: अतिथि सत्कार होता था। कन्या को पुत्र के समान सभी

अधिकार प्राप्त थे। केवल पिता की संपत्ति पर अधिकार नहीं होता था। फिर भी पितृ संपत्ति का कुछ अंश वह दहेज में प्राप्त कर लेती थी। इस समय कन्याएँ शिक्षा प्राप्त करती थीं।

गृहलक्ष्मी के रूप में पत्नी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। पुत्र, पौत्र, नौकर-चाकर आदि से सम्पन्न घर पत्नी के अभाव में जंगल समान माना जाता था। कन्या को प्रारम्भ से ही पतिव्रता बनने की शिक्षा दी जाती थी। पत्नी पति के धार्मिक कार्यों में साथ देती थी। पत्नी के प्रति पत्नी का प्रेम निस्वार्थ एवं मधुर होना आवश्यक माना जाता था।

पत्नी का आदर्श रूप महाभारत के अनुशासन पर्व में विस्तृत रूप से वर्णित है। पत्नी घर की शोभा एवं आभूषण मानी जाती थी। परिवार में उसका सम्मान किसी देवी से कम नहीं होता था। परन्तु देवी जैसा सम्मान पाने के लिए पत्नी को पतिव्रता एवं आदर्श गृहणी बनना होता था।

महाभारतकालीन परिवार हालाँकि पितृ सत्तात्मक था फिर भी वीर प्रसूता एवं जननी होने के कारण माता का स्थान अति आदरणीय माना जाता था। माता अपने शरीर के अंग एवं हृदय के अंश के रूप में संतान को जन्म देती है। बालक की पोषक एवं धात्री होने के कारण माता अंवा एवं शूश्रु कहलाती थी। संतान को पालने के लिए माता पृथ्वी के समान कष्ट सहती है। इसी कारण उसे पृथ्वी से महान माना जाता है।

शिक्षा जगत में माता का स्थान पिता एवं उपाध्याय से उच्च माना जाता था। माता को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। पुत्र के लिए माता से बढ़कर कोई वेद एवं शास्त्र नहीं माना जाता था। गर्भवती स्त्री के लिए बहुत सतर्कता बरती जाती थी। गर्भवती स्त्री की सुख-सुविधा का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। प्रसूति गृहों की पर्याप्त व्यवस्था थी। गर्भवती स्त्री की हत्या करने वाला व्यक्ति ब्रह्म हत्या का भागी माना जाता था।

विधवा स्त्री नि:सन्देह दु:खी प्राणी मानी जाती थी। परन्तु समाज द्वारा उसे तिरस्कृत नहीं किया जाता था। स्त्री वैधव्य जीवन पाकर स्वयं भाग्य को भले ही कोसे परन्तु समाज उसे सम्मानित स्थान ही प्रदान करता था। विधवा को अशुभ या पापिनी नहीं माना जाता था। इसका प्रमाण रामायण के इसी प्रसंग में मिलता है कि राजतिलक पर राम को विधवा माताश्री ने ही सजाया था। कुन्ती ने द्रोपदी विवाह पर आशीष दिया था। महाकाव्य समाज

में सती–प्रथा का प्रचलन नहीं था। राजा दशरथ, बलि, रावण आदि सभी की विधवा पत्नियाँ अंत तक जीवित रहीं।

धर्मशास्त्र काल में स्त्रियों की प्रस्थिति कैसी थी?

धर्मशास्त्र काल से हमारा आशय विशेषत: तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक के समय से है। तीसरी शताब्दी के बाद याज्ञवल्क्य संहिता विष्णु संहिता और पाराशर संहिता की रचना हुई जिनमें वेदों के नियमों की पूर्णतया तिलांजलि देकर मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मान लिया गया। यह काल सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का युग था। स्त्रियों की इस संकीर्ण विचारधारा का शिकार बनी इस काल में स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी से याचिका के रूप में दिखाई देने लगी। माता के रूप में सम्मानित और शक्ति प्रदायिनी देवी निर्बलता का प्रतीक बनी स्त्री जो किसी समय अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी अब परतंत्र पराधीन नि:सहाय और निर्बल बन चुकी थी। इस युग में यह विश्वास दिलाया गया कि पति ही स्त्री के लिए देवता है और विवाह ही उसके जीवन का एकमात्र संस्कार है। अनेक पौराणिक गाथाओं और उपाख्यानों को ईश्वर द्वारा रचित बताकर सतियों की कथाओं का प्रतिपादन किया गया। मनुस्मृति में यह कहा गया कि कोई भी स्त्री स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है। बचपन में वह पिता के अधिकार में, युवावस्था में वह पति के वश में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के नियंत्रण में रहे।

यह भी कहा गया है कि विवाह का विधान ही स्त्रियों का उपनयन है। पति की सेवा ही गुरुकुल का वास है और घर का काम ही अग्नि की सेवा है। इस काल में स्त्रियों का संपत्ति के अधिकारों से पूर्णतया वंचित कर दिया गया था और स्त्रियों को मानसिक रूप से अयोग्य तथा दुर्बल सिद्ध करने वाले अनेक श्रमपूर्ण विचार किये जाने लगे। कन्या विवाह 10 वर्ष व अधिक–से–अधिक 12 वर्ष तक की उम्र में कर देने का विधान बनाया गया। विवाह पूर्णतया पिता का दायित्व हो गया जिसमें लड़की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था। जैसाकि जातक कथाओं से स्पष्ट होता है। इस युग में कुलीनता को विवाह का आधार मानने के कारण बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन बढ़ा। वास्तविकता यह है कि स्त्रियों के पतन के

इस काल को आधार भूतकाल कहा जा सकता है जिसके बाद स्त्रियाँ एक वस्तु बन गई जिन्हें पुरुष अपनी इच्छानुसार किसी प्रकार उपयोग में ला सकते थे।

मध्यकाल भक्तिकाल काल (में स्त्रियों की प्रस्थिति कैसी थी?)

सोलहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी का समय मध्यकाल में रखा जा सकता है। इस काल में स्त्रियों की स्थिति में जितना पतन हुआ उतना कभी नहीं हुआ। यद्यपि पूर्व मध्ययुगीन समाज में स्त्रियों की स्थिति निम्न होने का उल्लेख अनेक स्थानों पर दिखाई देता है। पूर्वमध्ययुग में समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। पहले की अपेक्षा वे निरन्तर पतनोन्मुख थी। इस युग में स्मृतिकारों ने बार–बार इस बात पर जोर दिया है कि पत्नी के लिए सबसे बड़ा धर्म पति की सेवा है। स्मृतिकारों का यह कहना है कि पति को पत्नी के प्रति किसी प्रकार की द्वेष भावना नहीं रखनी चाहिए क्योंकि दोनों केवल शरीर से भिन्न हैं अन्यथा सभी कार्यों के लिए एक ही हैं। **मेघातिथि** का कहना है कि पति–पत्नी दोनों कानून के सम्मुख बराबर हैं। पति का यह परम कर्त्तव्य है कि अनेक दोषों के रहते हुए भी गुणवती पत्नी का परिपालन करे। गम्भीर दोषों को होने पर भी पत्नी को घर से नहीं निकाला जा सकता है। यदि पति दूर देशों की यात्रा करे तो पत्नी के भरण–पोषण का प्रबन्ध करना उसका कर्त्तव्य है। बार–बार अपराध करने पर ही पत्नी का परित्याग किया जा सकता है। पत्नी को सुधारने के लिए उसे रस्सी से अथवा बाँस की फराटी से पीटा भी जा सकता है किन्तु चोट सिर व पीठ पर नहीं होनी चाहिए। (मत्स्य पुराण)

विश्वरूप का कहना है कि पत्नी को पीटना उचित नहीं है बल्कि उसकी रखवाली करना चाहिए। यदि पति के मना करने पर भी पत्नी खेल तमाशा आदि देखने जाये अथवा मदिरा पीए तो उसे आर्थिक दण्ड देना चाहिए।

पति के विदेश जाने पर स्त्री के लिए आवश्यक था कि वह निश्चित अवधि तक उसके लौटने की प्रतीक्षा करे। यदि पति उस अवधि में नहीं लौटे तो पत्नी का क्या कर्त्तव्य है? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि पति के ना लौटने पर पत्नी को अपनी जीविका के लिए अनुचित पेशा स्वीकार नहीं करना चाहिए।

मेघातिथि का कहना है कि निश्चित अवधि समाप्त होने के बाद स्त्री अनुचित व्यापार स्वीकार कर सकती है। कुछ विद्वानों का कहना है कि स्त्री को पुनर्विवाह कर लेना

चाहिए। अन्य लोगों का कहना है कि वह किसी के यहाँ सेवा कर सकती है और पति के लौटने पर फिर उसकी सेवा कर सकती है।

विधवा स्त्री की स्थिति में यह परिवर्तन हुआ कि उसे परिवार की सम्पत्ति में हिस्सा मिलने लगा। इन सबके अलावा स्त्रियों की स्थिति लगातार खराब होती गई। स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार बंद हो गया। अत: धर्म की दृष्टि से वे शूद्रवत हो गई। स्त्रियों के विवाह की उम्र 8-10 वर्ष मान ली गई। फलस्वरूप वे पति के चुनाव के विषय में अपनी राय देने में असमर्थ हो गई और उनकी शिक्षा नहीं हो पाती थी। वे अपने पति के कार्यों में सहयोग देने में असमर्थ थी।

स्त्रियों की साधारण स्थिति खराब होने पर भी माँ का स्थान अच्छा ही था। **मत्स्य पुराण** में कहा गया है कि माता का परित्याग किसी भी स्थिति में संभव नहीं है। मेघातिथि ने कहा कि माता यदि अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करती तो भी उसे घर से बहिष्कृत नहीं करना चाहिए क्योंकि कोई माँ अपने पुत्र के लिए जाति-च्युत नहीं होती है।

मंगोल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति जितनी तीव्रगति से पतन की ओर अग्रसर हुई वह हमारे सामाजिक इतिहास में कलक के रूप में सदैव याद रहेगा। 11वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव पड़ने की वजह से हमारी संस्कृति की रक्षा करना जरूरी हो गया था इसलिए ब्राह्मणों ने संस्कृति की रक्षा, स्त्रियों के स्त्रीत्व तथा रक्त की शुद्धता बनाये रखने के लिए स्त्रियों के सम्बन्ध में नियमों को अधिक कठोर बना दिया। लेकिन वे इस बात को भूल गए कि स्त्री जिसका समाज एवं संस्कृति में अपना एक विशेष महत्त्व है उसके चेतना शून्य हो जाने पर समाज एवं संस्कृति आदि अपने आप स्वत: ही समाप्त हो जायेंगे। इस युग में रक्त की पवित्रता की संकीर्णता का इतना विकास हुआ कि 5-6 वर्ष की आयु में ही विवाह होने लगे जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की शिक्षा एवं उनके सामाजिक स्तर में तेजी से गिरावट आने लगी। पर्दा-प्रथा का विकास तो इस सीमा तक हुआ कि परिवार के अन्य सदस्य तो दूर पति स्वयं भी किसी अन्य व्यक्ति के सामने अपनी पत्नी का मुँह नहीं देख सकता था। पति की मृत्यु के बाद पत्नी का पति के साथ सती हो जाना पतिव्रत धर्म की सर्वोच्च परीक्षा मानी गई थी। इस प्रथा को धार्मिक आवरण प्रदान कर बढ़ावा दिया गया। सतियों की पूजा की जाने लगी।

पहली पत्नी के होते हुए भी विवाह कर लेना, एक से अधिक स्त्रियाँ रखना पुरुषों के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा बन गया। इस प्रकार स्त्रियाँ अपने अस्तित्व के लिए पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर हो गई। अज्ञान के वशीभूत भारतीय समाज में इन्हीं कुरीतियों और मिथ्यावाद को भारतीय संस्कृति का अंग समझा गया।

इस युग में स्त्रियों की सम्पत्ति के अधिकारों में थोड़ा-सा सुधार हुआ। जिन लड़कियों के भाई नहीं थे उन्हें अपने पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार मिलने लगा।

पिछले पृष्ठों में युगानुरूप नारी की स्थिति एवं जीवन स्तर का वर्णन किया। वास्तव में हर युग में नारी की स्थिति तराजू के पलड़ों की भाँति ऊपर-नीचे होती रही है।

नारी चिंतन में स्त्री पक्ष एवं स्त्री प्रश्न

जब हम नारी की स्थिति के बारे में चिंतन करते हैं तो बात आती है कि स्वयं स्त्री अपने आपको कहाँ महसूस करती है। कैसा उसका सामाजिक स्तर है? कैसा उसका आर्थिक स्तर है? परिवार में उसकी क्या स्थिति है? हमें स्त्री के पक्ष में ईमानदारी से सोचना होगा कि क्या वह पुरुष से ज्यादा मेहनत करती है या पुरुष स्त्री से ज्यादा मेहनत करता है। घर के चूल्हा-चक्की से लेकर पुरुष की कामेच्छा को पूर्ण करने में नारी का सहयोग रहता है। प्रकृति ने भी स्त्री को सभी गुण देकर एक अवगुण यह भी दिया है कि पुरुष से थोड़ी कम शारीरिक शक्ति रखती है। लेकिन इसका अर्थ ये तो नहीं कि नारी परिवार और समाज में पिसती रहे और हम उसे पीसते रहें। आज भी नारी अपनी महानता का परिचय देते हुए पहले पति को भोजन परोसती है, पश्चात् खुद भोजन करती है। जहाँ तक नारी के सर्वांगीण विकास का प्रश्न है उसमें दो बाधाएँ हैं—एक तो प्रतिक्रियावादी सामाजिक संस्थाएँ तथा दूसरा रूढ़िगत रिवाज, जैसाकि वर्तमान में कानून की दृष्टि से स्त्री की स्थिति पुरुष के समान है किन्तु दैनिक व्यवहार में जाति, पितृसत्तात्मक, परिवार संस्था, धार्मिक परम्पराएँ तथा सत्तावादी मूल्यों का प्रभाव अभी बहुत व्यापक है तथा सब ओर पुरुष का प्रभुत्व दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त अनेक संस्थाओं व रीति-रिवाजों की जो जड़े 19वीं शताब्दी के बाह्य और आंतरिक परिवर्तनों के आघात से हिल गई थी प्रतिक्रियावादी शक्तियों की मदद से पुनर्जीवित होने लगीं। उन्हें नई प्राणशक्ति मिली। संयुक्त परिवार प्रथा, जो 19वीं सदी के अंत तक आलोचना का विषय बन चुकी थी वही

अब नारी का सुरक्षात्मक रूप प्रदान कर सकती है। हर स्त्री के मन में यही प्रश्न होता है कि समाज में उसका पक्ष सकारात्मक है या नकारात्मक। जब हम नारी के विषय में चिन्तन करते हैं तो उसके सम्बन्ध में सकारात्मक रूप से, ईमानदारी से, उससे जुड़े मुद्दों पर, उसके पक्षों पर ध्यान दिया जाता है।

सोलह संस्कारों में विवाह आता है और जब विवाह का प्रश्न हो तो नारी के पक्ष को नकारा नहीं जा सकता। आज विवाह के नाम पर आयोजनों में अत्यधिक खर्च, बाह्याडम्बर, दहेज, दिखावा, ऐसी घटनाएँ हैं जो यह बताती है कि हमारे समाज ने विवाह को स्त्री–पुरुष के व्यक्तिगत पक्ष की बजाय सार्वजनिक पक्ष में परिवर्तित कर दिया है। जागृत नारियों का कर्त्तव्य है कि वे इन बन्धनों को तोड़ने का पूर्ण प्रयास करें। भारतीय नारी के भविष्य को आलोकित करने हेतु सुधारों की महती आवश्यकता है। इस सुधार में यदि जड़ से संशोधन किया जाय तो नारी का भविष्य अंधकार को चीर सकता है तथा स्त्री पक्ष को आलोकित कर सकता है। हर स्त्री से जुड़े प्रश्न का उत्तर स्वयं स्त्री अपनी कर्मठता, जिन्दादिली एवं शिक्षा के दम पर दे सकती है। उसमें कानून भी पिता की भाँति सहायता कर सकता है। इसके लिए किशोर बालिका के स्तर में सुधार करना परम आवश्यक है। भारत की जनसंख्या का 36 प्रतिशत 15 वर्ष से कम आयु वर्ग का होता है। इस अनुमान से किशोर व किशोरी में समान संख्या होती है। यदि इस 15 वर्ष से 18 वर्ष के वर्ग में उत्थान हेतु कार्य किया जाये तो नारी का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। मनोवैज्ञानिक तथ्य भी यह प्रकट करता है कि 15 वर्ष की आयु में परिवर्तन एवं सुधार सरल होता है।

स्त्री के पक्ष में शैक्षणिक, व्यावसायिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नीति का निर्माण परम आवश्यक है। यह विचारधारा हमारी राष्ट्रीय विचारधारा में परिवर्तित होनी चाहिए। इन कोशिशों से आगामी दशक की स्त्री स्वतंत्र देश की नागरिक होने के कारण अपने स्वत्व के लिए समाज से याचना करने की आवश्यकता नहीं समझेगी। युगों से दु:खी, पीड़ित रहने के कारण जो हीनता के संस्कार बन गए थे उन्हें आधुनिक भारतीय नारी ने अपने रक्त और मेहनत के पसीने से इस प्रकार धो दिया है कि आगामी युग की नारी को उस पर कोई रंग नहीं चढ़ाना पड़ेगा।

स्त्री के अधिकार

नारी के अधिकारों के चिंतन में विशेषकर महिला मानवाधिकारों के संदर्भ में नेहरू का चिंतन अग्रणी है। नेहरू स्त्री की स्थिति से ही देश और समाज की स्थिति का आकलन करते हैं।

फ्रांसीसी लेखक चार्ल्स फोरियर कहते हैं कि, "यदि आप किसी जाति की सभ्यता और संस्कृति की जाँच करना चाहते हैं तो उस देश की स्त्रियों की प्रतिष्ठा और परिस्थिति से उसका पता लगा सकते हैं। अगर हम यह जान लें कि उस देश की महिलाएँ सुसंस्कृत हैं और सभ्य हैं और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगतिशील है तो आपको यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि उस देश के पुरुष कैसे हैं। यदि स्त्रियाँ पिछड़ी हुई है तो देश भी पिछड़ा हुआ है।

यदि हम इन बातों पर ध्यान दें कि स्त्रियों के हालात क्या हैं, वे क्या कर रही हैं, कौन-से रास्ते और प्रगति के अवसर उन्हें मिले हुए हैं तथा किन कमियों या अभावों से जूझ रही है तथा उनका सामना भी कर रही है तो ना केवल स्त्रियों की स्थिति ऊपर उठेगी तथा उनका विकास होगा। बल्कि पुरुषों सहित सारा देश ऊपर उठेगा तथा सम्पूर्ण देश का विकास होगा।

यह असंतोषपूर्ण तथ्य है कि चाहे भारत हो या विश्व का कोई अन्य देश, सभी स्थानों पर अधिकांश लोग पुरुषों के सम्बन्ध में ही सोचना चाहते हैं तथा उन्हीं की उन्नति हेतु प्रयत्नशील रहते हैं जबकि पुरुष उन्नत स्थिति में पहले से ही हैं तथा व्यवस्था और समाज के प्रमुख पदों पर कार्यरत हैं। अत: वे महान हो सकते हैं। सभी लोगों द्वारा स्त्रियों को विस्मृत कर दिया जाता है तथा उनके कामों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है। अत: यह जरूरी है कि स्त्रियों की सर्वांगीण उन्नति के लिए ध्यान दिया जाय तथा स्त्री और पुरुष दोनों के लिए एक ही मापदण्डों का प्रयोग किया जाए।[2]

स्त्री और पुरुष के बीच भेद-भाव गलत एवं अन्यायपूर्ण है। स्त्री को मनुष्य होने के नाते वे सभी अधिकार तथा अवसर एवं सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए जो कि एक पुरुष को प्राप्त है। समानता का अर्थ यह होना चाहिए कि स्त्री को हरेक मौका दिया जाए, वे सब बात करने का जो पुरुष को प्राप्त होता है और उसका अधिकार होता है। स्त्रियों को

प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने की छूट होनी चाहिए तथा अवसर भी मिलने चाहिए किन्तु ऐसे कार्य जिनमें अधिक (शक्ति) ताकत की जरूरत हो वह स्त्री के लिए उपयुक्त नहीं है। लेकिन स्त्री अगर ताकतवर है तो कोई काम उसके लिए कठिन नहीं है। स्त्री और पुरुष में से जो कार्य जिसके द्वारा ज्यादा अच्छे ढंग से पूर्ण किया जा सके उसे वही कार्य करना चाहिए। हिन्दी साहित्य में कई स्थानों पर स्त्री को अबला कह दिया गया है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण चित्रण है। क्या स्त्री मनुष्य नहीं है? क्या उसमें बल नहीं है? क्या वह बिना बल के घरेलू कार्य निष्पादन करती है? क्या वह बिना बल के अपने पति की कामेच्छा पूर्ण करती है? स्त्री को अबला कहना उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाने जैसा है। ग्रामीण स्त्रियाँ तो कृषि कार्य में पुरुषों से भी ज्यादा मेहनत करती है। कर्णम मल्लेश्वरी जो भारोत्तोलन में ओलंपिक स्वर्णपदक विजेता है क्या वह अबला हो सकती है लेकिन स्त्री को 'अबला' भावपूर्ण ढंग से कह दिया गया है। यह सत्य है कि स्त्री में पुरुष से थोड़ी–सी कम ताकत होती है लेकिन निर्बल तो वह नहीं होती। निर्बल तो केंचुआ भी नहीं होता, वह भी छेड़े जाने पर छटपटाता है। इसलिए स्त्री को अबला की दृष्टि से देखना गलत है। स्त्री की क्षमताएँ पहचानी जानी चाहिए और स्त्री को भी परिस्थिति का सामना करना सीखना चाहिए। जब तक स्त्री–पुरुष का मुँह ताकती रहेगी तब तक वह अबला ही रहेगी।

हमारे रीति–रिवाज हमारे कानून एवं परम्पराओं को पुरुषों ने ही बनाया है तथा इस बात का हमेशा ध्यान रखा है कि स्वयं को उच्चस्थिति में बनाए रखे तथा स्त्रियों के साथ किसी खेल और वस्तु की तरह बर्ताव करे तथा अपने लाभ और सुख के लिए उसका शोषण करते रहें। इस लगातार दबाव के कारण स्त्रियाँ अपना विकास नहीं कर सकी है। ना ही स्वयं को आगे बढ़ा पाई हैं तथा इन सबके साथ ही पुरुषों ने स्त्रियों के पिछड़ेपन के लिए स्वयं उनको ही उत्तरदायी ठहराया है।

स्त्री और पुरुष के लिए प्रचलित दोहरे मापदण्डों की आलोचना होनी चाहिए। इस प्रकार के दोहरे मापदण्डों के लिए प्राचीनकाल से चले आ रहे रिवाज व नियम उत्तरदायी है, जिन्होंने स्त्री को कमजोर तथा हीन और पुरुष को सशक्त तथा उच्च स्थिति प्रदान करने के लिए दोनों के लिए अलग–अलग नैतिकता के मापदण्ड बनाये। हम भारतीय स्त्रियों के सामने तो सदैव सीता और सावित्री जैसी महान स्त्रियों के आदर्श रखते हैं किन्तु पुरुषों को राम और सत्यवान के समान क्यों नहीं होना चाहिए तथा आचरण करना चाहिए।

यह सत्य है कि इन महान आदर्श स्त्रियों की महानता की हम सब प्रशंसा करते हैं तथा इनके साथ ही अन्य महान स्त्रियों के नाम भी इसी सम्मान, भक्ति और स्नेह से लिए जाते हैं। सीता जैसे आचरण की अपेक्षा हर युग में की जाती रही है। लेकिन पुरुषों से समाज कम ही अपेक्षा करता है कि वे राम और सत्यवान के समान आचरण और जीवनयापन करें।

यह परिपाटी भी गलत है कि पुरुष का काम जीविकोपार्जन है तथा स्त्री की जगह घर में ही है। इसका अर्थ ये है कि स्त्री का केवल एक ही कार्य है और वह है विवाह और हमारा मुख्य कार्य उसे इसके लिए तैयार करना है। विडम्बना ये है कि इस कार्य में भी उसे गौण स्थिति प्राप्त होती है। इसमें भी पुरुष को प्रधान स्थान प्राप्त होता है तथा स्त्री को हमेशा निष्ठावान सहयोगी साथी और अपने पति और दूसरों के पीछे चलने वाली आज्ञाकारी दास की स्थिति प्राप्त होती है।

स्त्री को सजावटी गुड़िया नहीं समझना चाहिए। स्त्री एक निर्जीव खिलौना नहीं बल्कि जीता-जागता भावनाओं से युक्त मनुष्य है। यदि हम उसे गुड़िया या खिलौना समझते हैं तो भारत का भविष्य खिलौनों से नहीं बन सकता है और अगर हम देश की आधी आबादी को बाकी की, आधी आबादी के हाथ का खिलौना बना देंगे और दूसरों के ऊपर बोझ बना देंगे तो आप किस प्रकार प्रगति करेंगे।

स्त्री के आर्थिक अधिकार, लैंगिक समानता अधिकार, कानूनी सहायता संबंधी अधिकार, शिक्षा में समानता का अधिकार, सामाजिक गतिविधियों में समानता का अधिकार, स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकार आदि ऐसे तत्त्व हैं जिनकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते लेकिन ये ही अधिकार स्त्री को सम्पूर्ण रूप से अभी नहीं मिल पाये हैं जिनके लिए स्त्री युगों से संघर्ष कर रही है। भक्तिकालीन कवियों ने अपने चिन्तन में इन अधिकारों का वर्णन किया है जिसे हम अग्रिम अध्यायों में वर्णित करेंगे।

जन्मादि अधिकार

किसी देश या प्रान्त में प्रति हजार लड़कों के अनुपात में कितनी लड़कियाँ है, इसीको लिंगानुपात कहा जाता है। यह अनुपात लगभग समान होना चाहिए परन्तु प्रति हजार बालकों पर यदि बालिकाओं की संख्या ९०० या इससे कम हो जाये तो मामला

चिन्ताजनक स्तर पर पहुँच जाता है। हमारे देश में भी ऐसी ही चिन्ताजनक स्थिति बन गई है। हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान और देश के कई प्रान्तों में लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या चिन्ताजनक सीमा से भी काफी कम है। आखिर ऐसा क्या है कि बालिकाओं की तुलना में बालकों की संख्या अधिक है। इसके कारण स्पष्ट है, हमारे समाज में बालकों को श्रेष्ठ समझा जाता है। हम सोचते हैं कि लड़का होगा तो बुढ़ापे में सेवा करेगा। जीवन भर सुख देगा। हिन्दुओं की धारणा है कि पुत्र माता–पिता को संसार से तारता है, मोक्ष प्रदान करवाता है। दूसरी ओर बालिकाओं के बारे में यह धारणा है कि ये पराया धन होती हैं। बालिकाओं की शादी में दिया जाने वाला दहेज भी माता–पिता को लड़कियों को बोझ मानने पर विवश कर देता है। अभिभावकों के मन में बेटों की इतनी चाह होती है कि बेटियों को गर्भ में ही मार दिया जाता है। अल्ट्रासाउण्ड जैसी तकनीकों से गर्भ के लिंग का पता चल जाता है और लड़कियाँ गलत धारणाओं की भेंट चढ़ जाती हैं। आज का युग पहले जैसा नहीं रह गया। आज बालिकायें भी पढ़ लिखकर बूढ़े माँ–बाप का सहारा बन सकती है। ऐसा भी देखा गया है कि बेटों के द्वारा छोड़े गए माँ–बाप की सेवा सुश्रुषा बेटियाँ ही करती है। आज की शिक्षित नारियाँ धार्मिक सामाजिक उद्देश्यों को भलीभाँति पूरा कर सकती है।

लड़कियों का अनुपात घटना यह सिद्ध करता है कि शिक्षित समाज भी अपने संकीर्ण मानसिक दायरे से बाहर नहीं निकल पाया है। यह असंतुलन भविष्य के लिए खतरे की घण्टी है। इसका दुष्प्रभाव अभी से दिखाई पड़ रहा है। कई प्रान्तों के युवक इसलिए कुँवारे हैं कि उन्हें विवाह योग्य युवतियाँ नहीं मिल रही है। आज की लड़कियाँ ही तो कल बड़ी होकर माँ बनती है। क्या हम ऐसे समय की कल्पना कर सकते हैं? जिसमें केवल पुरुष हों, महिलाएँ नहीं!

बालक और बालिका में किसी तरह का भेद–भाव अमानवीय है। हमें दोनों को एक समझना चाहिए। इसीसे लिंगानुपात को सुधारा जा सकेगा। इस संसार में जन्म लेना स्त्री का जन्मादि अधिकार है। उसे जीवित रहने का पूर्ण अधिकार है। सरकार ने भी भ्रूण परीक्षण को अब दण्डनीय अपराध बना दिया है। इस कुकृत्य में शामिल डॉक्टर, क्लिनिक और इससे जुड़े हर व्यक्ति को दण्ड का प्रावधान है। अगर माता–पिता भी दोषी है तो दण्ड

के भागी है। खुद माता ही अगर भ्रूण परीक्षण करवाने क्लिनिक जाती है तो वही सबसे बड़ी दोषी है। स्त्री के जन्मादि अधिकारों को छीनने का किसी को कोई अधिकार नहीं है।

पोषण का अधिकार

भारतीय समाज में कन्या को पुरुष की अपेक्षाकृत कम पोषक आहार मिलता है। प्राकृतिक रूप से महिला को हर माह रक्त की हानि होती है। ऐसी स्थिति में उसे अगर पोषक तत्त्व ना मिले तो वह कमजोर हो जाती है। इससे उसका शारीरिक व मानसिक विकास रूक जाता है। अगर स्त्री कमजोर होगी तो वह स्वस्थ शिशु को कैसे जन्म देगी। कई स्त्रियाँ तो गर्भावस्था सम्बन्धी कमजोरियों की वजह से गर्भकाल में ही मर जाती हैं या फिर कमजोरी की वजह से बच्चा मर जाता है। बचपन से ही स्त्री को अगर श्रेष्ठ आहार मिले तो वह श्रेष्ठ व स्वस्थ बच्चे को जन्म दे सकती है।

नागरिक अधिकार

नागरिक शब्द नगर से बना है। नगर, शहर यानि जहाँ आवागमन, यातायात, शिक्षा, कानून, चिकित्सा, स्वास्थ्य सम्बन्धी हर तरीके की सुविधाएँ प्राप्त हों और इन्हें हम अपनी मर्जी से, इच्छा से भोग सके, या फायदा उठा सके तो ये नागरिक अधिकारों की श्रेणी में आ सकते हैं।

इसी संदर्भ में अगर स्त्री को देखें तो सबसे पहले बात है शिक्षा की। आज नारी को शिक्षा संबंधी अधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त है। उनके लिए अलग से महिला छात्रावास, बालिका विद्यालय, महिला महाविद्यालय उपलब्ध है तथा साथ ही सह शिक्षा के महाविद्यालय भी बहुत है। लेकिन क्या बात है कि आज भी महिला शिक्षा का स्तर पुरुष शिक्षा से निम्न है जबकि आज सफलता के हर अवसर उपलब्ध हैं। लेकिन आज भी सहशिक्षा के महाविद्यालयों में लड़कों की संख्या लड़कियों से ज्यादा होती है जबकि लड़के पढ़ने में औसत होते हैं और लड़कियाँ पढ़ाई में अच्छी होती हैं। माँ–बाप उन्हें कॉलेज इस डर से नहीं भेजते कि वे बुरी नजरों का शिकार हो जायेंगी लेकिन फिर उन्हें शिक्षा प्राप्त कैसे होगी। क्या पुरुष वर्ग अपनी बुरी और नकारात्मक सोच में बदलाव नहीं कर सकते। आज पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण से महिला की हालत ज्यादा खराब हुई है। पश्चिम की संस्कृति ने भारतीय महिला को तोड़ कर रख दिया है संचार के साधन जैसे

प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रोनिक मीडिया ने भी नारी के भोग्या रूप को दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ रखी है। स्वयं महिला अपने नागरिक अधिकारों का लाभ अपनी मर्जी से नहीं उठा पा रही है। वह अगर यातायात के साधनों में अकेली सफल करती है तो उसे यही डर होता है कि कुत्सित नज़रें उसका पीछा ना करे इसी डर के फलस्वरूप वह पुरुष के रूप में भाई या पिता का साथ चाहती है और कभी स्वतंत्र रूप से अपनी राह नहीं चुन पाती है। क्या यह नागरिक अधिकार आज भी पुलिस थानों में है जब महिला रिपोर्ट दर्ज करवाने जाती है तो ऐसे अनेक प्रकरण सामने आते हैं कि पुलिस द्वारा ही यौन शोषण हुआ है। आज भी शहरों में अकेली महिला थाने में जाने से डरती है। बेवजह उसी से पूछताछ की जाती है। आज की पुलिस की नौकरी महिलाओं के लिए अच्छी नहीं समझी जाती है। पुलिस के जवानों द्वारा ही कई बार महिला पुलिसकर्मी से ज्यादती की जाती है। यह उदाहरण कई बड़े शहरों में सामने आए हैं। भारतीय समाज में आज भी शहरों में महिलाओं की स्थिति दोयमदर्जे की है तथा उनको समाज, घर-परिवार व आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की यातनाएँ-प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती हैं। महिलाओं सम्बन्धी नागरिक अधिकारों की हमें निम्न बिन्दुओं में पहचान करनी होगी—

1. सामाजिक मुद्दों की पहचान
2. महिलाओं द्वारा की जाने वाली गतिविधियों का आयोजन
3. महिलाओं में परिवर्तित होते सामाजिक मूल्यों, मानसिक दृष्टिकोण एवं सद्व्यवहार
4. महिलाओं सम्बन्धी संगठनों से लाभ
5. महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कार्य के तरीके
6. महिलाओं के क्रिया-कलापों से परिवार व समाज पर प्रभाव
7. सामाजिक क्रियाकलापों की कार्य योजना बनाना
8. संचार के साधनों का उपयोग।

सामाजिक मुद्दों की पहचान

महिलाओं सम्बन्धी नागरिक अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में यह जानना जरूरी है कि ऐसे कौन-कौन-से कारण है जिनकी वजह से राष्ट्र, समाज और परिवार में उनको उचित

सम्मान तथा उचित पहचान नहीं मिल रही है तथा उनका उत्पीड़न एवं शोषण हो रहा है। कुछ मुख्य कारणों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है——

निरक्षरता——नारी के पिछड़ेपन की मुख्य वजह उसकी निरक्षरता है। साक्षर होने पर वह सम्बन्धित साहित्य पढ़ कर यह जान सकती है कि उसके क्या हक हैं तथा सरकार व सामाजिक संगठनों से क्या और किस प्रकार मदद मिल सकती है। कानून ने उसे क्या संरक्षण और अधिकार दिए हैं। व्यवसाय एवं कृषि में पढ़ी-लिखी महिलाए नवीन तकनीकी और संचार के साधनों का उपयोग करके अधिक लाभ कमा सकती है। पढ़ी-लिखी महिला परिवार को सीमित रखते हुए बच्चों को अच्छी शिक्षा, स्वच्छ वातावरण एवं उत्तम पोषण दे सकती है।

निरक्षर नारी रूढ़ियों में जकड़ी रहती है। अपने परिवार में बच्चों में भेद-भाव करती है। बच्चियों को शिक्षा दिलाने के पक्ष में नहीं रहती है। वह पति के घर में पुरुष प्रधान व्यवस्था में दबी सहमी रहती है। उत्पीड़न एवं यौन शोषण जैसी घटनाओं का भी विरोध नहीं करती है। संक्षेप में उसमें नारी सम्मान की चेतना नहीं होती है। सरकार ने सभी को साक्षर करने के लिए गाँव-गाँव में विद्यालय तथा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र खोले हैं। सभी निरक्षर और अशिक्षित महिलाओं को उनमें जाकर शिक्षित होना चाहिए। निरक्षरता उन्मूलन से ही महिलाओं में जागृति और आत्मविश्वास पैदा हो सकता है।

लिंगभेद——स्त्री के नागरिक अधिकारों में लिंग भेद का नकारात्मक स्थान है। एक ही माँ के जन्मे लड़के लड़कियों में भेद और वह भी स्वयं माँ द्वारा, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। नारी जाति का पशु भी अपने बच्चों को समान रूप से पालते हैं और स्नेह करते हैं। यदि समाज का कथन है कि 'औरत ही औरत की दुश्मन है, पतन का कारण है' तो गलत नहीं होगा। वास्तव में यह भावना ही औरत के पतन का एक मुख्य कारण है। वास्तव में यह भावना पुरुष प्रधान समाज की देन है जो नारी में संस्कार बन चुकी है। जन्म से ही माँ को पुत्र जन्म से खुशी और पुत्री जन्म से दु:ख होता है। वह पुत्री के स्वास्थ्य, शिक्षा और विकास पर ध्यान नहीं देती है। उसे कठोर अनुशासन में रखती है जबकि पुत्र को सभी सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाती है। कहीं-कहीं माता-पिता पुत्री के पैदा होते ही या बचपन में उसे मार देते हैं। जाहिर है कि माँ और पिता की यह सोच सामाजिक रूढ़ियों और संस्कारों से

उपजी है। इसलिए जब तक सामाजिक सोच में बदलाव नहीं आएगा तब तक स्थिति में बदलाव नहीं होगा। नारी को सामाजिक और पारिवारिक स्थिति में बदलाव लाने हेतु सचेष्ट प्रयत्न करना होगा।

नशाबन्दी—नारी के नागरिक अधिकारों का हनन पुरुषों द्वारा किया गया नशा भी करता है। नशा एक सामाजिक बुराई है। तम्बाकू, अफीम, गांजा, चरस एवं शराब आदि सब लम्बे समय से चले आ रहे हैं। समाज में सर्वाधिक नशे की लत पुरुषों को होती हैं। वे शराब आदि का नशा करके महिलाओं को पीड़ा पहुँचाते हैं। यह पीड़ा मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही प्रकार की होती है। पुरुषों द्वारा किए गये नशे का सबसे ज्यादा प्रभाव महिलाओं पर होता है। नारी अपने पति के भविष्य को लेकर हमेशा चिन्तित रहती है एवं आर्थिक रूप से परेशान रहती है। कई महिलाओं को भी शराब एवं स्मैक हेरोइन आदि मादक पदार्थों की लत होती है। परिणाम स्वरूप उनका शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक स्तर गिर जाता है। उनकी बच्चियाँ अपनी माताओं के नक्शेकदम पर चलकर बुरी सोहबत में पड़ जाती हैं तो वे वेश्यावृत्ति करने लगती हैं और कालगर्ल बन जाती हैं। जरूरी है कि महिलाएँ अपने नागरिक अधिकारों को पहचान कर इस विषय में संगठित होकर समाज में नशाखोरी के विरोध में आन्दोलन करे और इसे समाज से नष्ट करने के लिए सक्रिय हों।

सफाई एवं स्वच्छता—प्राय: ग्रामीण अशिक्षित महिला घरेलू कामकाज में इतना व्यस्त रहती है कि उन्हें घर-परिवार एवं बच्चों की सफाई का समय नहीं मिलता है। यहाँ तक कि स्वयं भी शारीरिक एवं वस्त्रों की सफाई नहीं कर पाती हैं परिणामस्वरूप घर में दूषित वातावरण एवं बीमारी, गंदगी पैदा कर देती है।

मूल बात यह है कि सफाई एवं स्वच्छता का महत्त्व महिलाएँ स्वास्थ्य की दृष्टि से नहीं समझती, साज-सज्जा ही उनका दृष्टिकोण होता है। घर में पुताई फर्नीचर पर रंग रोगन, फर्शों की धुलाई, बच्चों की साफ-सफाई का वैज्ञानिक महत्त्व है। गाँव से गंदे पानी की निकासी की व्यवस्था होनी चाहिए। कूड़ा-करकट गोबर के लिए गाँव से दूर व्यवस्था हो। गलियाँ पक्की हों तथा आधुनिक शौचालयों की व्यवस्था हो। इन कार्यों के लिए ग्राम एवं सहकारी संस्थाएँ सहयोग करती हैं परन्तु उन तक पहुँच जरूरी है। यदि ग्रामीण पुरुष इसमें कोताही करें तो महिलाओं को व्यक्तिगत या संगठनात्मक तरीके से कोशिश करनी

चाहिए। अब ग्राम पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ गई है। वे पंच सरपंच हो गई हैं। वे पंचायतों के द्वारा या अन्य संगठन बना कर इस दिशा में काम कर सकती है।

दहेज तथा बाल-विवाह—दहेज आज के युग की सबसे बड़ी कुरीति है और शायद ही कोई परिवार इस बुराई से अछूता हो।

बच्चों की शादी में कन्या पक्ष द्वारा वर पक्ष के दबाव में आकर दी जाने वाली वस्तुएँ या धन देना दहेज है जिससे लड़की वाला और मुख्यत: लड़की स्वयं पीड़ित होती है। दहेज के कारण आए दिन वधूओं की हत्या होती है।

कीमती वस्तुओं और धन की वरपक्ष द्वारा माँग दहेज के रूप में समाज पर एक कलंक है। अच्छी योग्य व पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इसी कारण अच्छे लड़कों को नहीं पा सकती है। यदि वधू पक्ष वर पक्ष की माँग पूरा नहीं करता तो वधू का ससुराल में उत्पीड़न होता है। यहाँ तक कि कुछ नराधम बहुओं को जला कर मार तक डालते हैं। दहेज की इसी बुराई से बचने के लिए बहुत-से माता-पिता अपनी बच्चियों का विवाह बचपन में ही कर देते हैं, जिससे बच्चे और बच्चियों के अविकसित शरीर प्रजनन व पारिवारिक जिम्मेदारियों को नहीं सह पाते। अधिक संतान उत्पत्ति, कमजोर देह, अल्प आमदनी, पारिवारिक उत्पीड़न एवं उचित पोषण के अभाव में नव दम्पति जल्द टूट जाते हैं। सरकार ने बाल-विवाह, दहेज-प्रथा को गैर कानूनी माना है। बाल-विवाह निरोधक कानून, 1929 और 1978 के अन्तर्गत शादी के समय लड़के की उम्र 21 वर्ष और लड़की की उम्र 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। इसलिए युवतियों को चाहिए कि वे दहेज लोभी युवकों से विवाह न करें और सामूहिक रूप से इसका विरोध करें।

महिला उत्पीड़न एवं यौन शोषण—हर परिवार एवं विशेष रूप से ग्रामीण परिवारों में नारी का भयंकर उत्पीड़न हो रहा है। वह प्रात: उठने से लेकर देर रात्रि सोने तक घर का, बच्चों का, पशुओं का तथा खेत-खलिहान का काम करती रहती है और अन्त में पुरुष के साथ सहवास के बाद अल्प आराम कर पाती है। जन्म से ही माँ द्वारा पक्षपातपूर्ण पालन, पिता द्वारा घर की चार-दीवारी में कड़ा अनुशासन, शिक्षण संस्थाओं में जाने से रोकना, उपेक्षापूर्ण व्यवहार एवं ससुराल में पति, सास एवं ननद का कठोर एवं कर्कश अनुशासन उसको दबाए रखता है। इस प्रकार बचपन में पिता के, जवानी में पति के और

बुढ़ापे में पुत्रों के अधीन रहकर जीना पड़ता है। जो नारी पुरुष को जन्म देती है, वही पुरुष की दासी बनकर रह जाती है। महिला उत्पीड़न में पुरुष की प्रधानता स्वीकार करना एवं पुरुष के लिए समर्पण भी एक कारण है। पिता या पति की उचित या अनुचित आज्ञा का उल्लंघन महिला के जीवन में भूचाल ला सकता है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सरकार ने कई महिला आयोग गठित कर रखे हैं। महिलाएँ एकल या सामूहिक रूप से इन आयोगों से मदद ले सकती है। उन्हें उत्पीड़न और अपमान का विरोध करना चाहिए। इसके लिए संघर्ष करना चाहिए। उन्हें इसमें कानूनी मदद भी मिल सकती है।[3]

बलात्कार के बारे में कानूनी व्यवस्था इस प्रकार है——

1. स्त्री की इच्छा विरुद्ध संभोग करना,

2. स्त्री को डरा धमका कर संभोग करना,

3. स्त्री को धोखा देकर संभोग करना,

4. पागल या मानसिक विकृति की महिला के साथ संभोग करना,

5. 16 साल से कम उम्र की महिला के साथ संभोग करना,

कानून के तहत धारा 376 के अनुसार 7 से 10 वर्ष की सजा की व्यवस्था है।[4]

सामाजिक बुराइयाँ——भक्ति काल में ये सामाजिक बुराइयाँ अपनी चरम सीमा पर थीं। जांत-पाँत में भेद-भाव मानकर सभी को समान नहीं मानते थे। निम्न वर्ग के लोगों को विद्यालयों में शिक्षा का अवसर भी कम था। धनिक लोग गरीबों को बन्धुआ मजदूर मानकर रखते थे। उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार होता था। समाज के कुछ वर्ग को अच्छा नहीं माना जाता था तथा उन्हें मंदिरों में कुओं पर चढ़ना मना था।

बदलते हालात में यह बुराई दूर हो रही है। पढ़े-लिखे लोग अब समझने लगे हैं कि सभी ईश्वर के बनाए हुए हैं। जन्म से कोई छोटा-बड़ा या छूत-अछूत नहीं होता है। परन्तु महिलाओं में यह बुराई अभी भी व्याप्त है। वे अब भी जाति-भेद और छुआछूत मानती हैं। इस सामाजिक बुराई से आज जाति भेद उत्पन्न हो गया है जिसका दुष्परिणाम दूषित राजनीति एवं आरक्षण की बढ़ती माँग सामने है। इसे यदि अभी न रोका गया तो भविष्य में जाति संघर्ष शुरू हो सकता है। संविधान निर्माताओं ने इस ओर गंभीरता से

विचार किया और इस विषय पर कठोर नियम बनाए। आज किसी को जातिसूचक शब्दों से सम्बोधित करना धारा 3–बी के अन्तर्गत आता है जिसमें सजा भी दी जा सकती है। प्रश्न कानूनी प्रावधान का नहीं बल्कि महिलाओं के मानसिक दृष्टिकोण का है। उनमें जागृति पैदा करने की आवश्यकता है।

तलाक—महिला जब अपने ससुराल में जाती है तो उसे पति एवं सास ननद के अधिक कठोर अनुशासन में रहना पड़ता है। उनके उचित–अनुचित आदेशों का पालन करना वधू का कर्त्तव्य माना जाता है। व्यवहारिक रूप में पत्नी का विरोध करने पर उसका परित्याग कर दिया जाता है। पिता द्वारा पति पक्ष की अनुचित दहेज माँग को पूरा ना करने पर भी वधू को पीड़ित किया जाता है। यहाँ तक कि दुत्कारना, फटकारना, पीटना, भूखा रखना और जलाकर मारने की घटनाएँ अमूमन होती रहती है।

मुसलिम धर्म में तो छोटी–सी बात पर भी पति के द्वारा पत्नी से केवल तीन बार तलाक शब्द कहने मात्र से उसका पति या ससुराल का आश्रय छूट जाता है। इस प्रकार पति के द्वारा त्यागी महिला जीवन पर्यन्त माता–पिता के यहाँ दबी घुटी रहती है या असहाय दर–दर की ठोकरे खाती हुई देह व्यापार में फँस जाती है। सरकार ने हिन्दू परिवारों के लिए इस सम्बन्ध में कठोर नियम बनाए परन्तु मुसलिम धर्म में ऐसा नियम बनाना आज तक सम्भव नहीं हो पाया है। महिलाओं में कानूनी जानकारी पैदा कर इस बुराई का निवारण किया जा सकता है क्योंकि जो कुछ हो रहा है वह कानून के खिलाफ हो रहा है।

इस विवेचन में नारी के नागरिक अधिकारों का वर्णन किया गया है लेकिन जब तक स्वयं नारी जाति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं होगी तब तक उसे कोई लाभ नहीं होगा और स्त्री की हीन स्थिति जैसे की तैसे रहेगी। स्त्री का रहन–सहन और जीवन जीने का ढंग उसे खुद ही सीखना पड़ेगा। पुरुष वर्ग तो उसे मात्र बाह्य सहायता दे सकता है लेकिन जब तक स्त्री जाति मन से अपने नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं होगी तब तक वह हर क्षेत्र में पिछड़ती रहेगी।

मानवाधिकार

हर व्यक्ति जन्म से ही कुछ अधिकार लेकर आता है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। चाहे वह शिक्षा का अवसर प्राप्त करने का अधिकार हो या विकास के अवसर प्राप्त करने

का मगर इस वातावरण में महिलाओं के साथ लैंगिक आधार पर किए जा रहे भेद-भाव से नारी अपने अधिकारों से वंचित रह जाती है। इसी वजह से महिलाओं के मानवाधिकार सुरक्षित करने के लिए हमारे संविधान में अलग से कानून बनाए गए हैं। महिलाओं को अपनी जिन्दगी जीने में ये कानून भरपूर मदद करते हैं। साथ ही समय-समय पर इनमें संशोधन भी किए गए हैं।

सामाजिक तौर पर महिलाओं को त्याग, सहनशीलता एवं ममता की प्रतिमूर्ति बताया गया है। इन उपमाओं के भार से दबी हुई महिलाएँ चाहते हुए भी इन स्त्री हित के कानूनों का उपयोग नहीं कर पाती हैं। बहुत सारे मामलों में महिलाएँ चुप रह जाती है उनके साथ जो घटनाएँ हो रही हैं उनके बचाव के लिए वे कुछ भी नहीं कर पाती है। आमतौर पर महिलाओं के साथ शारीरिक प्रताड़ना यानी मार-पीट, जान से मारने की कोशिश की जाती है। आमतौर पर आज भी महिलाओं को नहीं पता कि मनपसंद कपड़े न पहनने देना, अपनी पसंद से खाना न खाने देना, अपनी पसंद से विवाह न करने देना, मनहूस की उपाधि देना, मायके ना जाने देना, किसी खास व्यक्ति से मिलने पर रोकना, काम छोड़ने का दबाव डालना, कहीं आने-जाने पर रोक——ये सभी घरेलू हिंसा के उदाहरण है तथा मानसिक प्रताड़ना की श्रेणी में आता है।

यहाँ तक कि घरेलू हिंसा अधिनियम के बारे में भी बहुत-सी महिलाओं को नहीं पता कि घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 में निर्माण किया गया तथा इसे अक्टूबर,2006 से लागू किया गया। यह अधिनियम कानून द्वारा ही संचालित किया जाता है। यह कानून ऐसी महिलाओं से सम्बन्धित है जो कुटुम्ब के भीतर होने वाली किसी किस्म की हिंसा से पीड़ित होती हैं। उनसे अपशब्द कहने, किसी प्रकार की रोक-टोक करने और मार-पीट करना शामिल है। इस अधिनियम के अन्तर्गत महिलाओं के हर रूप माँ, भाभी, बहन एवं किशोरियों से सम्बन्धित प्रकरणों को शामिल किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रताड़ित महिला किसी भी वयस्क पुरुष या स्त्री के विरुद्ध प्रकरण थाने में दर्ज करा सकती है। दण्ड संहिता की धारा 498 के तहत ससुराल पक्ष के लोगों द्वारा क्रूरता, जिसके अन्तर्गत मार-पीट से लेकर, कैद में रखना, दहेज के लिए प्रताड़ित करना आदि आता है। घरेलू हिंसा अधिनियम में अपराधियों को दोष सिद्ध हो जाने पर 3 वर्ष तक की सजा दी जा सकती है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं के साथ मानसिक प्रताड़ना के मामले बहुत

अधिक है। यहाँ कुछ ऐसे अपराध और कानूनी धाराओं का जिक्र करना जरूरी है जिसकी जानकारी रहने पर महिलाएँ अपने खिलाफ होने वाली हिंसा और प्रताड़ना के खिलाफ अपनी आवाज उठा सकती है।[5]

— अपहरण, भगाना या महिला को शादी के लिए मजबूर करना ऐसी स्थिति में अभियुक्त के खिलाफ धारा 366 लगाई जाती है, जिसमें 10 वर्ष की सजा का प्रावधान है।

— पहली पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह धारा 494 के तहत जुर्म है और अभियुक्त को 7 वर्ष की सजा हो सकती है।

— पति और उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता बरतने पर अभियुक्तों को 3 साल की सजा दी जा सकती है।

— अगर कोई व्यक्ति किसी महिला का अपमान करता है तो धारा 499 के तहत 2 साल की सजा का भागी होता है।

— दहेज माँगना और उसके लिए प्रताड़ित करना बेहद जघन्य अपराध है। ऐसे अपराध में आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान है। दहेज मृत्यु के लिए भी अभियुक्त पर विभिन्न धाराएँ लगाई जाती है जो तत्कालीन कुकृत्य से सम्बन्धित होती है।

— किसी लड़की या महिला को आत्महत्या के लिए उकसाना भी संगीन अपराध की श्रेणी में आता है।

— सार्वजनिक स्थान पर अश्लील कार्य करने, गाने गाने के लिए धारा 294 और 3 माह की कैद या जुर्माना या दोनों लगता है।

— महिला की शालीनता भंग करने की मंशा से अश्लीलता करने के लिए धारा 354 ओर दो वर्ष की सजा, महिला को अपशब्द कहने पर धारा 509 और एक वर्ष की सजा।

— बलात्कार करने पर धारा 376 और 10 वर्ष की सजा का प्रावधान है।

— महिला की असहमति से गर्भपात कराना भी उतना ही संगीन अपराध है जिसके लिए अभियुक्त को धारा 313 के तहत आजीवन कारावास और जुर्माने की कड़ी सजा का प्रावधान है।

सरकार ने महिलाओं को पुरुषों के अत्याचार, हिंसा और प्रताड़ना से बचाने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन तो किया पर वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पा रहा है। आज भी आयोग में सिर्फ शिक्षित और पढ़ी-लिखी महिलाओं की शिकायत पहुँचती है। कम पढ़ी-लिखी और दबी कुचली महिलाओं को आज भी राष्ट्रीय महिला आयोग के बारे में जानकारी नहीं है। इसका एक ही इलाज है कि हर महिला को जागरूक होने की जरूरत है। अपने अधिकार को पहचानने की जरूरत है।

महिलाओं को अपने मानवाधिकारों के प्रति निम्न आधारों पर सजग रहना चाहिए[6]—

— **जन्म से पूर्व**—जबरदस्ती गर्भ धारण, गर्भपात, गर्भावस्था के दौरान मार-पीट, मानसिक उत्पीड़न, कन्या भ्रूण हत्या।

— **शैशवावस्था के दौरान**—शिशु कन्या हत्या, माता-पिता द्वारा खान-पान में भेद-भाव, मार-पीट, व्यक्तित्व विकास की ओर ध्यान न देना।

— **किशोरावस्था के दौरान**—शीघ्र विवाह, परिवार व अपरिचितों द्वारा यौन शोषण, बाल वेश्यावृत्ति, मूलभूत सुविधाओं का अभाव व भेद-भाव।

— **युवावस्था के दौरान**—कार्यस्थलों पर छेड़छाड़ या शोषण, यौन उत्पीड़न, अवैध व्यापार, बलात्कार, अपहरण।

— **नारीत्व के दौरान**—विवाह हेतु दहेज की माँग, विवाह उपरान्त दहेज के लिए मार-पीट व हत्या अथवा आत्म हत्या के लिए मजबूर करना, मानसिक व शारीरिक शोषण, घरेलू हिंसा आदि।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि जीवन के प्रत्येक स्तर पर उनके अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है अर्थात् जीवन का प्रत्येक स्तर किसी-न-किसी प्रकार के उत्पीड़न, शोषण व हिंसा से परिपूर्ण है। इसका अन्दाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है

कि वर्ष 1990 में महिलाओं की उत्पीड़न की संख्या 68317 थी जो वर्ष 1999 में बढ़कर 135548 हो गई। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर कागजी घोषणाओं के द्वारा बढ़ाया जा रहा है वहीं व्यावहारिक धरातल पर महिला अधिकारों का हनन निरन्तर बढ़ रहा है अर्थात् महिला अधिकारों व स्वतंत्रताओं के कानूनी दस्तावेज खोखले दावे मात्र बन गये हैं। जब अधिकार सार्वभौमिक रूप से क्रियान्वित नहीं किए जाते तो महिला वर्ग द्वारा प्रतिक्रिया संघर्ष या आन्दोलन का किया जाना स्वाभाविक है जो इन अधिकारों से वंचित है। इसी कारण महिलायें वर्तमान में घर की चार दीवारी से बाहर विभिन्न समूहों में संगठित होकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने हेतु संघर्षरत है। इस संघर्ष का क्षेत्र स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक फैला हुआ है। यह संघर्ष नारीवादी या महिला आन्दोलन के रूप में जाना जाता है।

भारत में महिला आन्दोलन की शुरुआत 19वीं शताब्दी के समाज सुधार आन्दोलन के साथ मानी जा सकती है जिसके अग्रदूत राजा राममोहन राय थे। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप ही 1829 में सती-प्रथा के विरुद्ध कानून पारित हुआ तत्पश्चात् ईश्वर चंद्र विद्यासागर, रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती आदि अनेक समाज सुधारकों ने नारी की स्थिति में सुधार व अधिकारों के क्रियान्वयन तथा प्राप्ति हेतु प्रयास किए। इन्हीं के प्रयासों के परिणामस्वरूप देश में नारी अधिकारों के प्रति चेतना का अंकुर प्रस्फुटित हुआ।[7]

स्त्री स्वतंत्रता और समानता

स्त्री और पुरुष दोनों यदि पारस्परिक सम्बन्ध में अपने को आधे अंग की भाँति समझें तो वह संसार में सुख शांति का प्रधान कारण बन जाता है क्योंकि ऐसा होने पर उनके दो प्राण, दो हृदय मिलकर एक हो जाते हैं। किसी प्रकार की भेद बुद्धि नहीं रहती है। अलगाव रहने पर शरीर भिन्न होने पर भी वस्तुत: वे अभिन्न हो जाते हैं। यही समझ कर विवाह के समय वर कन्या से कहता है, "यह जो तुम्हारा हृदय है सो मेरा हो जाये और यह जो मेरा हृदय है सो तुम्हारा हृदय हो जाय।" (यदेतद्ध दयं तव तदस्तु हृदयं ममायदेत-हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव। —सामविधान ब्राह्मण, 1/3/9)

यह भाव यदि हृदय में जाग्रत रहे तो क्या स्त्री की स्वतंत्रता का हनन हो सकता है? कदापि नहीं। यदि ये भाव मन में आ जाय तो कभी भी पति अपनी पत्नी को दासी नहीं समझ सकता है। हिन्दु परिवार में 'सह धर्म चरतम' अर्थात् तुम दोनों एक साथ मिलकर धर्म का आचरण करो। इसी उपदेश को लेकर नर-नारी गृहस्थ जीवन का आरम्भ करते हैं। धर्माचरण करने के लिए ही वे अपने इस जीवन को ग्रहण करते हैं। ऐसा करना ही उनका व्रत है। जब जैसा भी दुःख-सुख आवे उसको भोगकर इस व्रत का पालन करते हुए भी उन्हें चलना होगा फिर चाहे जैसे भी हो यह कर्त्तव्य जैसा पति के लिए है वैसा पत्नी के लिए है।

विवाह करने पर स्त्री दासी बन जाती है। यह भाव या कल्पना ही अभारतीय है। दरिद्रता की वजह से किसी स्त्री को श्रमसाध्य कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यह सत्य है परन्तु इसका कारण विवाह नहीं है। इसका कारण उस परिवार की दरिद्रता होती है।

आजकल पति-पत्नी के समान अधिकार (Equal Rights) का प्रश्न भी उठ रहा है। निश्चय ही यह क्रमशः बढ़ेगा। भारत के समाज विज्ञान का आदर्श दूसरा है। उसके मत में सम्पत्ति का न पृथक् अधिकार है और न समान अधिकार है बल्कि सहाधिकार (Joint Rights) है। दूसरे शब्दों में भारतीय समाज कहता है कि स्वतंत्र स्त्री या स्वतंत्र स्वामी का अधिकार नहीं है बल्कि दोनों का मिलित अधिकार है।[8]

कुछ लोगों के मत में स्त्री स्वत्वों की माँग ही नारी जागरण है। जब नारी जागेगी तभी स्त्री स्वतंत्रता और समानता का भाव उसके हृदय में आएगा। सामाजिक हलचल में पुरुषों की समानता में स्त्रियों को भी अग्रसर होने का पूरा अधिकार है। इसे ही स्त्री क्रांति का पर्याय समझा जाता है। जब स्त्री अपने अस्तित्व को समझेगी तब वह परदे से निकलेगी। पढ़ने-लिखने का सीधा रास्ता स्वीकार करेगी और समानता के स्वाधिकारों की रक्षा कर सकेगी।

एकई धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा।।

(गोस्वामी तुलसीदास)

पुरुष और स्त्री जिस समाज के अभिन्न अंग हैं उस समाज के आदर्श को दृष्टिकोण से बाहर नहीं रखा जा सकता है। वैसी स्थिति में नारी जागरण का अभिप्राय भी सामाजिक उत्थान और उसके द्वारा समाज के आदर्शों का पालन होना ही श्रेयस्कर है।[9]

स्त्री स्वायत्तता और स्त्री सत्ता

सम्पूर्ण विश्व में स्त्रियाँ पुरुषों के समान अधिकार तथा पद चाहती हैं। सदियों से इनका शोषण हो रहा है। नारीवाद की उत्पत्ति ने महिला आन्दोलन और नारी मुक्ति संगठनों को जन्म दिया है। आज घर के अन्दर पत्नी पति के समान, बहिन भाई के, पुत्री पुत्र के, बहू बेटी के समान अधिकार, सम्मान तथा समानता की माँग कर रही है। दूसरी ओर घर के बाहर समाज में नारी पुलिस, डॉक्टर, इंजीनियर, पायलट और ऐसी ही अन्य सेवाओं में अपने हिस्से की माँग कर रही हैं। नारी घर और उसके बाहर समानता चाहती है। जो सुख सुविधाएँ पुरुषों को प्राप्त हैं नारी भी वैसी सुख सुविधाएँ और वस्तुएँ चाहती हैं। अब नारी चार-दीवारी में नहीं रहना चाहती है। मूल्यों में वृद्धि का विरोध नारियाँ करने लगी हैं। अपने अस्तित्व को पहचानने की क्षमता स्त्री स्वायत्ता ओर स्त्री सत्ता के अन्तर्गत आती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने से पता चलता है कि वहाँ भी इनका जीवन घर की चार-दीवारी में व्यतीत हो रहा है। समाजशास्त्री आन्द्रे बेत्तेई ने पाया है कि उच्च जातियों की देखा देखी मध्यम एवं निम्न जातियों के ठीक आर्थिकी वाले परिवारों ने अपने घर की महिलाओं को घर के बाहर खेतों पर काम करने से रोक लिया है। समाज में ऐसे परिवारों की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।

सदियों से नारी को कभी भी स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में समाज में स्थान नहीं दिया गया। भारतीय समाज में नारी को परिवार में भूमिकाओं के आधार पर पहचाना जाता है, जैसे पुत्री, बहू, माता, सास, पत्नी आदि। एक सम्प्रदाय ने नारी शोषण एवं नारी की प्रस्थिति की समानता पूँजीवादी समाज में शोषित श्रमिकों से की है। गाँवों में वह खेतों पर भी काम करती है और घर में भी पूरा काम करती है। पितृसत्तात्मक परिवार में स्त्रियाँ पराधीन होती हैं। पुरुषों के अत्याचार सहन करती है। कामकाजी महिलाएँ भी पुरुषों के अधीन जीवनयापन करती है।

भारतीय नारी के अपने व्यक्तिगत मित्र नहीं होते हैं। उसके परिवार के बाहर उन्हीं लोगों से सम्बन्ध होते हैं जो परिवार के अन्य सदस्य स्थापित करते हैं। अगर नारी स्वयं स्वतन्त्र रूप से मित्र बना लेती है तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अन्य पुरुष से सम्बन्धों को समाज हमेशा शक की नजर से देखता है। पर्दाप्रथा एक अभिशाप है। दहेज हत्या, दुल्हन दाह स्त्रियों की स्थिति को स्पष्ट करता है कि उसकी अलग से पहचान तो दूर, वह एक जीव प्राणी के रूप में आत्मरक्षा भी नहीं कर सकती है।

अनुलोम विवाह ने नारी की स्थिति निम्न कर दी। संविधान ने यौन भेद और जातिभेद समाप्त कर दिया है। विवाह, तलाक, दहेज, बलात्कार, विधवा, पुनर्विवाह संपत्ति पर अधिकार आदि कानून बनाये हैं परन्तु व्यवहार में नारी इनका लाभ नहीं उठा पा रही है। स्त्रियों की दयनीय प्रस्थिति को धनी–निर्धन शिक्षित, अशिक्षित, ग्रामीण–नगरीय संदर्भ में समझना होगा। समाजशास्त्री लेओन ट्राटस्की का कथन है, "पुरुषोचित अहंवाद की कोई सीमा नहीं है। संसार को समझने के लिए हमें इसको नारियों के नेत्रों से देखना पड़ेगा।"[10]

स्त्री प्रश्न

नर की शक्ति है नारी। नारी के द्वारा ही नर शक्तिमान होता है। नारी अक्षय शक्ति का स्रोत है। नारी के बिना नर का अस्तित्व नहीं है। नारी के जीवन विकास पर नर के जीवन का उत्कर्ष अवलम्बित है, नर नारी जीवन का आधार है। दोनों एक ही अस्तित्व के ऐसे परस्पर सम्बद्ध पहलू है जिनमें एक की उपेक्षा करने से दूसरे की हानि अवश्यंभावी है। दोनों के समुचित और संतुलित विकास पर ही समाज की स्वस्थता निर्भर करती है। अतएव नर के प्रश्न के समान ही नारी का प्रश्न समाज का एक प्रमुख प्रश्न है।

जिस प्रकार महामाया अपने चिद्विलास में विश्व ब्रह्माण्ड को व्यक्त करती है उसी प्रकार नारी अपने शिशु को चित् में व्यक्त जगत् की छाया डालती है। जीवन के अरुणोदय में नारी ही जननी के रूप में सात्त्विक, राजसिक और तामसिक संस्कारों का जो बीज बालक के जीवन क्षेत्र में वपन करती है। बड़ा होने पर वही बीज पुष्पित और पल्लवित होकर जगत–जीवन का कारण बनता है। नारी सृष्टि करती है, उसका पालन करती है और अन्ततः प्रलय के कारणों का संकलन भी उसी के द्वारा होता है। अत:

समाज में सुव्यवस्था, दुर्व्यवस्था, शांति–अशांति धर्माधर्म आदि द्वन्द्वों के निर्माण में मूलत: नारी की सहज लीला ही काम करती है।

नर और नारी का नित्य सम्बन्ध है। नर–नारी की सृष्टि के साथ माया की क्रीड़ा प्रारम्भ होती है। नर और नारी का कार्य–कारण भाव बीज और वृक्ष के समान अनादि है। बीज और वृक्ष जिस प्रकार एक ही तत्त्व के दो अंग हैं उनमें परस्पर विरोध नहीं उसी प्रकार समाज जीवन में नर–नारी विरोध अप्राकृतिक है। अतएव नर के विरुद्ध किसी प्रकार का भी नारी आन्दोलन अप्राकृतिक होने के कारण समाज के सहज विकास में बाधक है। समाज जीवन में नर और नारी का पारस्परिक सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। नारी को संप्रदाय के रूप में नर की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ा करने का आन्दोलन पागलपन के सिवा और कुछ भी नहीं है। परन्तु उसका ये अर्थ नहीं है कि नारी को दासत्व में रखा जाय और ताड़ना का अधिकारी बनाया जाय। नारी पूज्या है, वह जननी है। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। भगवान् से भी बढ़कर है। नारी जब अपने इस पद की मर्यादा का पालन करने के लिए सतत् सन्नद्ध रहती है तब वह समाज में देवी के समान पूजी जाती है। जहाँ नारी पूजा होती है, वहाँ देवत्व का वास होता है। अतएव नारी आंदोलन को नर समाज के सहयोग से उद्देश्य में परिणत करने की जितनी आवश्यकता है, पुरुष के लिए भी पुरुष के लिए भी तना ही जरूरी है कि नारी समाज, जननी के सम्माननीय भावना पर प्रतिष्ठित हो जाए। नारी बन्धन से मुक्त होनी चाहिए। अखिल विश्व उसकी क्रीड़ा स्थली है परन्तु मातृत्व की मर्यादा के भीतर रहने में ही उसकी शोभा है और विश्व का कल्याण है। मर्यादा का उल्लंघन करने से समाज की स्थिति ठीक न रहेगी। उसमें अशांति और वैषम्य आ जायेगा और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।[11] यह देखकर पीड़ा होती है कि सभ्य समाज में भी स्त्री भीषण कष्ट में है। आदिवासी समाज में विपरीत स्थिति है। आदिवासी समाज स्त्री के मामले में ज्यादा सभ्य है। आदिवासी दहेज में विश्वास नहीं करते। वे लड़कियों के जन्म का स्वागत करते हैं। आदिवासी समाज में लड़कियाँ अपना विवाह स्वयं तय करती है। वहाँ लिंग सम्बन्धी विषमता नहीं है—पुरुष व स्त्री समान है। लड़कियों को भी तलाक और पुनर्विवाह का अधिकार है। सभ्य समाज में व्यवहार स्त्री–पुरुष समानता नहीं है। स्त्री को अक्सर बाहर भीतर की जंग से जूझना पड़ता है। मानवीय गरिमा के परिप्रेक्ष्य में उसे कठोर प्रतिकूलताओं

और भयावह यथार्थ का सामना करना पड़ता है। आजादी के 59 वर्ष बाद भी सुरक्षा का सवाल स्त्री के लिए सबसे दहकता सवाल है। घर से निकलते ही छेड़खानी, जबरदस्ती का खतरा उनके साये के साथ चलता है। रोज सुबह अनगिनत स्त्रियाँ विभिन्न कार्यवश घर से बाहर निकलती है। किसी के हाथ दफ्तर की फाइल, किसी के सर पर टोकरी, किसी की गोद में बच्चा पर हर रोज स्त्री कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में जबर्दस्ती का शिकार होती है। इस पितृसत्तात्मक समाज में सबसे आसान है स्त्री के चरित्र पर सवाल उठा दो, बदचलन करार दे दो और तब उसे वश में करो।[12]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि स्त्री के व्यक्तिगत और सार्वजनिक अधिकारों के प्रति मन में जिज्ञासा और स्त्री द्वारा उन अधिकारों को पाने की इच्छा के संदर्भ में स्त्री प्रश्न की समझा जा सकता है।

स्त्री की सामाजिक स्थिति

समाजशास्त्रियों और इतिहासवेत्ताओं के अनुसार स्त्रियों की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन अग्रकालों के अनुसार किया जाता है।

वैदिक काल—इस काल में उपलब्ध साहित्य से पता चलता है कि स्त्रियों की स्थिति सभी प्रकार से अच्छी थी। स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं था तथा दोनों की सामाजिक प्रस्थिति समान थी। लड़कियाँ ब्रह्मचर्य का पालन करती थी, आश्रम में शिक्षा प्राप्त करती थी। सह शिक्षा का प्रचलन था।[13] यजुर्वेद के अनुसार इसकाल में कन्या का उपनयन संस्कार होता था। उसे सन्ध्या करने का भी अधिकार था। समाजशास्त्री पी.एच. प्रभु ने लिखा है कि जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध था स्त्री-पुरुष की स्थिति सामान्यत: सामान्य थी।[14] स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती थी तथा शास्त्रों का अध्ययन करती थी। इस काल में अनेक विदुषी स्त्रियाँ हुई थी। लड़कियों का विवाह युवावस्था में होता था। स्त्रियाँ चाहती तो वे बिना विवाह अपना जीवन व्यतीत कर सकती थी। लड़कियाँ अपना जीवन साथी चुनने के लिए स्वतंत्र थी। पत्नी का अपने परिवार में सम्मान था। महाभारत के अनुसार, "वह घर, घर नहीं अगर उस घर में पत्नी नहीं।" अथर्ववेद में लिखा है "नववधू तू जिस घर में जा रही है वहाँ की तू साम्राज्ञी है। तेरे श्वसुर सास देवर और अन्य व्यक्ति तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनन्दित हों।[15] स्त्री संतान उत्पन्न नहीं होने पर या

उत्तम संतान के लिए नियोग द्वारा संतान प्राप्त कर सकती थी। बहुपत्नी विवाहों को मान्यता प्राप्त थी। विधवा पुनर्विवाह कर सकती थी। देवर या अन्य व्यक्ति से वह इच्छानुसार विवाह कर सकती थी। पर्दा–प्रथा नहीं थी। स्त्रियाँ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु स्वतंत्र थी। पुरुषों द्वारा स्त्रियों की रक्षा करना परम कर्त्तव्य माना जाता था। उनका अपमान करना लोग पाप समझते थे।

स्त्री–पुरुष समान रूप से धार्मिक कार्य करते थे। किसी भी यज्ञ आदि में पति–पत्नी दोनों का होना आवश्यक था। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रंथ में स्त्री को जाया कहा गया है जिसका अर्थ है स्त्री अपने पति को दुबारा जन्म देती है। (जायति पुन:) वाल्मीकि के अनुसार स्त्रियों को अकेले यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त था। पी.एच. प्रभु के अनुसार सीता भी संध्या करती थी। पुत्र के जन्म को अधिक महत्त्व दिया जाता था। पुत्र का महत्त्व वंश विस्तार तर्पण पिण्डदान आदि के कारण अधिक था। ऋग्वेद में वीर पुत्रों की कामना के लिए बार–बार प्रार्थना का उल्लेख है लेकिन पुत्रियों के साथ पक्षपात का व्यवहार नहीं किया जाता था। पुरुष स्त्रियों की रक्षा करना अपना धर्म समझते थे। उपर्युक्त तथ्यों से यही निष्कर्ष निकालता है कि वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान अच्छी थी। उसे सभी क्षेत्रों—सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे।

उत्तर वैदिक काल—ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 300 वर्ष बाद तक का काल उत्तर वैदिक काल कहलाता है। महाभारत की रचना उस काल में हुई थी जो एक संस्कृति का काल था तथा उसमें स्त्रियों की स्थिति के बारे में भिन्न–भिन्न तथा विरोधी विचार मिलते हैं। वैदिक काल में तो स्त्रियों की स्थिति अच्छी परन्तु बाद में उसकी स्थिति में परिवर्तन होने लगा। अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह के अनुसार स्त्री को सदैव आदरणीय मानकर उससे स्नेह का व्यवहार करना चाहिए। यह भी लिखा है कि स्त्री की अनुपस्थिति में सारे कामकाज पुण्यरहित हो जाते हैं। भीष्म पितामह ने नारी के दो प्रकारों का उल्लेख किया है। साध्वी और असाध्वी—साध्वी नारी धरती की माँ और संरक्षिका है तथा असाध्वी नारियाँ वे हैं जिन्हें उनके पापपूर्ण व्यवहार के कारण कहीं भी पहचाना जा सकता है।[16] उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भिक वर्षों अर्थात् ईसा के करीब 300 वर्ष पूर्व तक स्थिति ठीक थी। सम्पन्न परिवारों की लड़कियों को शिक्षा दी जाती थी। उनके धार्मिक

और सामाजिक संस्कार यथावत् थे। बाद में नारी की स्थिति में जो परिवर्तन आये वे निम्न हैं—

जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव इस काल में प्रबल हो गए थे। ये धर्म स्त्री को सम्मान देते थे, अनेक स्त्रियों ने इन धर्मों का प्रचार का कार्य किया, बाद में जब इन धर्मों का पतन हुआ तो उसके साथ-साथ स्त्रियों की स्थिति भी बिगड़ती चली गई। ए. एस. एल्तेकर के अनुसार आर्यगृह में अनार्य नारियों का प्रवेश नारियों की सामान्य स्थिति का मुख्य कारण है। यह अवनति ईसा के करीब 1000 वर्ष पूर्व धीरे-धीरे अति सूक्ष्म रूप में प्रारम्भ हुई और करीब 500 वर्ष पश्चात् काफी स्पष्ट रूप से दिखने लगी। बाद में मनु परंपरा आ गई। इस काल में नारी की स्वतंत्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए गए। यज्ञ करना, वेदाध्ययन प्रतिबन्धित हो गए, विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गई, शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया, इससे उनकी स्थिति धीरे-धीरे बिगड़ने लगी।

स्मृति युग में स्त्रियों के समस्त अधिकारों को समाप्त कर दिया गया। स्मृतिकारों ने स्त्री की प्रत्येक अवस्था में परतंत्र बना दिया। उसे बचपन में पिता के संरक्षण में युवावस्था में पति के संरक्षण में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहने के आदेश दे दिए गए तथा सती-प्रथा का प्रावधान कर दिया गया। इस प्रकार स्त्रियों की स्थिति सिद्धान्त रूप में पूर्ण रूप से खराब कर दी गई जो आगे चल कर व्यावहारिक रूप में विकसित हो गई।

धर्मशास्त्र काल—यह काल ईसा के पश्चात् तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक का है। जो कुछ मनुस्मृति में स्त्रियों के प्रतिबन्धों के बारे में लिखा था उसे धर्मशास्त्र काल में व्यवहारिक रूप दिया गया। इस काल में पाराशर, विष्णु और याज्ञवल्क्य संहिताओं की रचना मनुस्मृति को आधार मानकर की गई। समाज तथा स्त्रियों पर इतने अधिक प्रतिबन्ध लगाये कि इसे सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का काल कह सकते हैं। स्त्रियों को परतन्त्र, पराधीन निस्सहाय और निर्बल बना दिया।[17] स्त्री शिक्षा पर पाबन्दी लग गई। स्त्री के लिए एकमात्र विवाह संस्कार रह गया। कन्या के विवाह की आयु घटकर 10-12 वर्ष रह गई तथा बाल-विवाह का प्रचलन बढ़ गया। बाल-विवाह के कारण वह शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थी। वर के चुनाव में कन्या की भूमिका समाप्त हो गई थी। कुलीन विवाह तथा अनुलोम विवाह का महत्त्व बढ़ने से बहुपत्नी विवाह होने लगे।

रखैल रखने का रिवाज़ शुरू हो गया। विधुर 8-10 वर्ष की कन्या से विवाह करने लगा। विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी। इस धर्मशास्त्र काल में संकीर्णता के कारण स्त्रियाँ माता से सेविका तथा गृहलक्ष्मी से याचिका बन गई। स्त्री के लिए पति ही देवता और विवाह ही एकमात्र उसके लिए धार्मिक संस्कार रह गया। पति की मृत्यु के बाद सती होना सर्वश्रेष्ठ आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया गया। स्त्रियों के पतन का सबसे अधिक जिम्मेदार धर्मशास्त्र काल रहा है। मनुस्मृति में लिखा है "स्त्री कभी भी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है। ('पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रो न स्त्री स्वातन्त्र्यर्हति')[18] इस काल में नारी को उपभोग की वस्तु बना दिया। इस काल में स्त्रियों का स्थान सभी क्षेत्रों में पुरुष से निम्न हो गया।

मध्यकाल—11वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक का समय मध्यकाल कहलाता है। 11वीं शताब्दी के प्रारंभ से मुसलमानों का प्रभाव भारत पर बढ़ने लगा। हिन्दु धर्म और संस्कृति को मुस्लिम धर्म और संस्कृति से सुरक्षित करने के अनेक प्रयास किए गए। सर्वप्रथम स्त्रियों की सुरक्षा के लिए अनेक कदम उठाए गए। स्त्रियों की सतीत्व की रक्षा तथा रक्त की शुद्धता के लिए अब 5 या 6 वर्ष की आयु में ही कन्याओं का विवाह किया जाने लगा। बाल विवाहों को प्राथमिकता दी जाने लगी। स्त्री को घर की चारदीवारी में रखा जाने लगा। पर्दे की प्रथा प्रारम्भ हुई इसका कुप्रभाव स्त्री शिक्षा पर भी पड़ा। बाल-विवाह पर्दाप्रथा, रोक-टोक के कारण स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थी। स्त्री शिक्षा पर बाद में सम्पूर्ण रोक लगा दी गई। सती-प्रथा को प्रोत्साहित किया जाने लगा। संपत्ति में स्त्रियों के अधिकार को समाप्त कर दिया गया। आर्थिक दृष्टिकोण से स्त्री परतंत्र हो गई। पति या परिवार की सेवा करना एकमात्र उसके जीवन का लक्ष्य रह गया।

मुसलमानों की इस प्रवृत्ति 'जेहि की कन्या सुन्दर देखी तेहि पर जाई धरे हथियार' ने बाल-विवाह को अत्यधिक प्रोत्साहित किया।

मध्यकाल में जहाँ अनेक कारकों एवं परिस्थितियों ने स्त्रियों की दयनीय स्थिति और शोषण में वृद्धि की थी वहीं उनकी धार्मिक और सामाजिक स्थिति को सुधार के लिए भक्ति आन्दोलन एवं संतों के प्रयास भी देखे जा सकते हैं। प्रथम प्रयास रामानुजाचार्य ने भक्ति आन्दोलन के माध्यम से स्त्रियों के धार्मिक और सामाजिक जीवन को सुधारने का

प्रयास किया। स्त्रियों को धार्मिक पूजापाठ, धार्मिक स्वतंत्रता, पर्दा-प्रथा की समाप्ति आदि के लिए चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसी, मीरा, तुकाराम आदि संतों ने प्रयास किए। इनके प्रयासों के परिणामस्वरूप स्त्रियाँ भजन-कीर्तन, प्रवचन कथा आदि में जाने लगीं। इन साधु सन्तों के प्रयासों से स्त्रियाँ स्वयं को शिक्षित एवं धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ने के लिए प्रयास करने लगीं। सारांश में यही तथ्य सामने आते हैं कि मध्यकाल में धर्म के नाम पर तथा मुसलमानों से हिन्दू धर्म और संस्कृति की सुरक्षा की आड़ में भारतीय हिन्दु नारी पर प्रतिबन्ध लगाकर उसका घोर शोषण किया गया, वहीं इनके सुधार के लिए सन्तों के प्रयास भी देखे गये।[19]

ब्रिटिश काल—18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से लेकर 1947 तक के समय को ब्रिटिश काल मानते हैं। अंग्रेजी सरकार ने भारत के मुसलमानों से राजनैतिक सत्ता प्राप्त की थी। मुसलमान उनके विरुद्ध ही थे। वे हिन्दुओं को अपने विरुद्ध नहीं करना चाहते थे इसलिए अंग्रेजों ने हिन्दुओं के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में कई सुधार करने की नीति अपनाई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश शासनकाल में हिन्दू स्त्रियों के सुधार के लिए अंग्रेजी सरकार ने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। इस काल में भी स्त्रियों की स्थिति निम्न प्रकार से दयनीय रही—

पारिवारिक क्षेत्र—पारिवारिक क्षेत्र में उन्हें कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। परिवार का मुखिया पुरुष होता था। सारी शक्तियाँ व निर्णय आदि का अधिकार उसी के पास होते थे। स्त्रियों को परिवार के बाहर जाने का अधिकार नहीं था। वह तो केवल सन्तानें पैदा किया करती थी तथा घर गृहस्थी के कार्य करती थी। बाल-विवाह होता था और कन्या को वर चुनने के विषय में सलाह नहीं ली जाती थी। पति चाहे कैसा भी हो उसे विवाह विच्छेद करने का अधिकार नहीं था। विधवा होने पर उसकी स्थिति बड़ी करुणामय हो जाती थी। मनोरंजन के साधन नहीं थे। बस स्त्रियों के भाग्य में काम करना लिखा था। स्त्री तो स्वयं ही पुरुषों के मनोरंजन का साधन थी।

सामाजिक क्षेत्र—सामाजिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। बाल-विवाह तथा पर्दा-प्रथा के फलस्वरूप वह घर के बाहर जाकर कोई अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं रखती थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले स्त्रियों में

साक्षरता का प्रतिशत मात्र 6 था। समाज में उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था। बहुपत्नी विवाह सम्पन्न परिवारों में प्रचलित थे। स्त्री को उसके साथ सामंजस्य या व्यवस्थापन करना पड़ता था। धार्मिक और पारम्परिक दृष्टि से स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी था।

आर्थिक क्षेत्र—सन् 1937 से पहले स्त्री को आर्थिक क्षेत्र में कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। समाजशास्त्री पणिक्कर के अनुसार हिन्दू समाज में पुत्री के अधिकार को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया। पत्नी पति के परिवार का एक अंग बन गई और विधवाओं को मृत समान मान लिया गया। स्त्रियों को केवल स्त्री धन संबंधी अधिकार प्राप्त थे। वे घर के बाहर जाकर कोई आर्थिक कार्य नहीं कर सकती थी। कुलीन परिवार में काम करना हीन माना जाता था। संयुक्त परिवार भी इन्हें कोई सम्पत्ति संबंधी अधिकार नहीं देते थे। आर्थिक रूप से पराश्रित होने के कारण पुरुष इनका सभी तरह से शोषण करते थे। नारी पुरुष के अत्याचारों को सहती थी। अविवाहित लड़की का संयुक्त परिवार में संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं था। कुल मिलाकर नारी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी।

राजनैतिक क्षेत्र—राजनैतिक क्षेत्र में सन् 1919 तक स्त्रियों को वोट देने का अधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं था। सन् 1935 में स्त्रियों को मताधिकार उनकी शिक्षा, पति की स्थिति, सम्पत्ति आदि के अनुसार दिया गया। किसी भी राजनैतिक कार्य में स्त्रियों को भाग नहीं लेने दिया जाता था। उनका जीवन घर की दीवारों तक ही सीमित था। महात्मा गाँधी ने स्त्रियों को घर के बाहर लाने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप स्त्रियों ने स्वतंत्रता आन्दोलन आदि में भाग लेना प्रारम्भ किया। कुल मिलाकर भारत में स्त्रियों की राजनैतिक स्थिति अच्छी नहीं थी।[20]

उपर्युक्त विवेचन से यह पता चलता है कि कैसे नारी अर्श से फर्श तक आई अर्थात् कैसे उन्नति के चरम बिंदु पर पहुँच कर अवनति की अन्तिम सीमा तक आई फिर भी मध्यकाल (भक्तिकाल) के कुछ कवियों को धन्यवाद दिया जाना चाहिए कि उन्होंने स्त्री पक्ष में काफी सारी बातें लिख कर स्त्री चेतना को बनाए रखा तथा स्त्री के मन में जीवित होने का भाव जगाए रखा।

स्त्री की आर्थिक परनिर्भरता

हिन्दू समाज में स्त्री और पुरुष एक प्राण दो देह मानी जाती है। उनका स्वार्थ, उनका स्वत्व और उनका अधिकार एक ही होता है लेकिन हिन्दू समाज में यह बात हर जगह नहीं मिलती। वास्तविक रूप से स्त्री आर्थिक क्षेत्र में पुरुष पर ही आश्रित रहती आई है। प्राचीनकाल से ही जब यह बात कह दी गई कि स्त्री बचपन में पिता के, युवावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पुत्रों के अधिकार में रहती है, यही मूल धारणा स्त्री के भावी जीवन में आर्थिक परनिर्भरता का कारण बनी। प्राचीनकाल से आज तक स्त्री को धन माना गया है, धन तो बेजान होता है। धन को धन की क्या जरूरत? पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को देवी कहकर तो सम्मानित करते हैं लेकिन आर्थिक अधिकार अपने हाथ में रखना चाहते हैं।

विवाहिता कन्या या वधू को जो गहने या आभूषणादि मायके तथा ससुराल से मिलते हैं उस पर वह स्वतंत्र अधिकार रखती है। लेकिन पुरुष उन पर गिद्ध दृष्टि जमाये रखता है तथा अपने नाम से खुलाए हुए बैंक लॉकर में सुरक्षा के नाम पर नारी से गहनों को छीन कर जमा करा देता है। इस प्रकार स्त्री धन पर पुरुष का अधिकार हो जाता है। प्राचीनकाल में कई समाजों में कन्या का शुल्क लेकर विवाह का प्रावधान था। ऐसे विवाह प्राय: क्षत्रियों में ही होते थे।

निजी संपत्ति की अवधारणा ने ऐतिहासिक विकास क्रम में सामाजिक स्तर पर स्त्री को निरन्तर हीन अवस्था में पहुँचाया है। पितृसत्तात्मक समाज की संरचना में निजी संपत्ति का मालिक अपनी संपत्ति को प्रेम करता है। स्त्री को उसका भागीदार नहीं बनाना चाहता है। संपत्ति का स्वामी यह चाहता है कि उसकी संपत्ति, उसकी मृत्यु के बाद उसकी ही आत्मा के अंश, उसकी संतान के पास सुरक्षित रहे। वह अपनी सत्ता और संपत्ति में वृद्धि के लिए अपने पूर्वजों की पूजा करता है। सच्चाई ये है कि पितृसत्तात्मक ताकत से पुरुष ने औरत का हर अधिकार छीन लिया है।[21]

बच्चों के जन्म का श्रेय माता से अधिक पुरुष के शुक्राणुओं को दिए जाने के साथ ही परिवार और कबीले पर स्त्री का सहज अधिकार समाप्त हो गया। स्त्री के जीवन में उसकी साझेदारी के कारण मिलने वाली समानता पुरुष ने व्यवहारत: समाप्त कर दी और

उसके साथ अब एक अधीनस्थ प्राणी जैसा व्यवहार करने लगा। स्त्री अब पुरुष की वस्तु हो गई। उसका महत्त्व अब एक जमीन के टुकड़े और गाय बैल से अधिक नहीं रह गया था। पुरुष ने स्त्री पर अपनी सत्ता आरोपित कर दी। संतान को पिता का नाम मिलने लगा। संपत्ति का अधिकर और आर्थिक अधिकार भी स्त्री के हाथ से निकलने लगे। यदि स्त्री को पिता विरासत से कुछ मिलता भी था तो पूरी संपत्ति संतान के माध्यम से पति के ही परिवार में शामिल होने लगी। पुरुष ने बड़ी चालाकी से नारी को संपत्ति और सत्ता के अधिकार से वंचित कर दिया। अब चूँकि औरत का अपना कुछ भी नहीं था अत: वह व्यक्ति की गरिमा से भी वंचित हो गई। अब वह पुरुष की विरासत का हिस्सा भर रह गई। पहले पिता के अधीन और बाद में पति के अधीनस्थ। रूढ़ियाँ इस कदर बढ़ीं कि कन्या जन्म बोझ लगने लगा। जन्म के साथ ही हत्या का प्रचलन शुरू हो गया। उससे जीने तक का अधिकार छीन लिया गया। अरब के लोगों में लड़की को जन्मते ही गड्ढे में फेंक दिया जाता था और यदि पिता कन्या को स्वीकारता था तो उसकी यह महान उदारता कही जाती थी। स्त्री को समाज में आधिकारिक तौर पर सम्मान नहीं मिलता था। उसका अस्तित्व तक पुरुष की कृपा पर निर्भर हो गया।

पिता को पूरा अधिकार था कि वह चाहे जहाँ और चाहे जिससे भी बेटी का विवाह करें। चूँकि गाय बछड़ों और गुलामों की तरह स्त्री थी, पुरुष की संपत्ति थी अत: पुरुष के लिए बहुविवाह की छूट थी। विवाहों पर प्रतिबंध स्त्री की भावना के कारण नहीं बल्कि आर्थिक कारणों से लगे, समाज ने स्त्री को कोई सुरक्षा नहीं दी, पुरुष उससे मनचाहा व्यवहार करने को स्वतंत्र था। दूसरी ओर पतिव्रत उसका पहला धर्म था। मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री को आचरण की सुविधा थी तथा स्त्री से शुद्धता और शुचिता की अपेक्षा कम की जाती थी। व्यभिचार के विरुद्ध नियम इतने कड़े नहीं थे। अब पितृ समाज में चूँकि औरत पुरुष की संपत्ति थी इसलिए विवाह के पहले कौमार्य भंग न होना तथा आजीवन पतिव्रत निभाना उसका परम धर्म बन गया। व्यभिचारिणी स्त्री के लिए मृत्युदण्ड निश्चित किया गया।[22]

स्थिति धीरे-धीरे बदलती गई। परिवार की संस्था और पारिवारिक संपदा का परिवार में केन्द्रीकरण राज्य के स्वार्थों के खिलाफ था। राज्य सारी ताकत अपने हाथों में केन्द्रित रखना चाहता था। सम्राट् के कानून के अनुसार अभिभावकत्व का अधिकार पूर्ण

रूप से उठा लिया। वही नाना प्रकार से उसने स्त्री को भी अक्षम बनाना शुरू कर दिया। राज्य यह समझ रहा था कि स्त्री यदि स्वाधीन और धनी रहेगी तो राज्य को उससे खतरा रहेगा। हर संविधान वास्तव में औरत के स्वार्थ के खिलाफ था। औरत के सारे कानूनी अधिकार छीन लिए गए। जब स्त्री को पुत्री, पत्नी या बहन का पूर्ण अधिकार मिला तब पुरुष से उसकी बराबरी का हक छीन लिया गया। उस पर चरित्र की कमजोरी, चंचलता और छिछोरेपन के आरोप लगाए गए। उसमें संयम का अभाव बताया गया। उसकी आर्थिक स्वतंत्रता अमूर्त हो गई क्योंकि उसको कोई राजनैतिक अधिकार नहीं मिले। हालाँकि स्त्रियों ने इसका प्रचण्ड विरोध किया। रोमन इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है। किन्तु राज्य स्त्रियों के खिलाफ रहा क्योंकि वह अपने से अधिक प्रभुत्व परिवार को नहीं देना चाह रहा था।

अब तक का साहित्य औरत के बारे में सम्मान से लिखता रहा किन्तु अब रोमन साहित्य ने स्त्रियों पर खुले व्यंग्य प्रहार शुरू किए। चूँकि स्त्रियाँ पुरुषों के साथ शिकार में जाती थी, रथ दौड़ाती थी, कानूनी मामलों में दखल देती थी अत: वे पुरुषों की प्रतिद्वन्द्वी और दुश्मन भी होती थी। पुराने गणतंत्रीय रोम की स्त्रियाँ परिवार में एक विशिष्ट स्थान रखती थी किन्तु उनके पास वैध अधिकार नहीं होते थे और न ही किसी प्रकार की आर्थिक स्वतंत्रता थी। परवर्ती काल की रोमन स्त्रियाँ झूठी स्वतंत्रता का जीता–जागता उदाहरण थी। उनकी दी गई तथा कथित स्वतंत्रता खोखली थी। वस्तुत वे स्वतंत्र कहलाकर भी कुछ नहीं थी।

यह भी सच है कि पुरुष की तुलना में औरत को कम वेतन और पारिश्रमिक मिलता है। अत: बराबर काम करते हुए वह शोषण की हकदार है। चूँकि पुरुष के कार्यक्षेत्र में वह दखल देती है अत: वह ईर्ष्या के योग्य मानी जाती है। पुरुष प्रधान समाज ने इस कारण उसे कम मेहनत करने वाली का आरोप लगाकर कम वेतन देना निश्चित किया। उसके लिए सफलता के संयोग बहुत कम होते हैं। आज भी आर्थिक जगत स्त्री और पुरुष को अलग–अलग वेतन देकर उनकी मेहनत को आंकता है। औरत इस आधुनिक युग में भी सड़ी–गली परम्परा का शिकार है। सच्चाई तो ये है कि उसकी स्थिति असंतुलित है। इसलिए वह परिस्थितियों से सौदा करने में अक्षम है। स्त्रियों के लिए उनका शरीर ही सबसे बड़ी पूँजी है। आज भी हमारा समाज वेश्यावृत्ति को बर्दाश्त करता है तथा यथासंभव उसमें

योगदान भी देता है। कुछ मुट्ठी भर वेश्या स्त्रियों की वजह से समस्त नारी जाति गलत शौक के खतरे में आ जाती है।[23]

आत्मनिर्णय

आजकल सर्वत्र ही नारी जागरण की बात सुनी जाती है। नारी पर सदा से ही अत्याचार होता आया है। आत्मनिर्णय के परिप्रेक्ष्य में वह सदा ही शंकायुक्त रही है। वह सोच समझ तो सकती है लेकिन आत्मनिर्णय नहीं ले सकती। उसके महत्त्वपूर्ण निर्णय भौतिक रूप से दूसरों के द्वारा लिए जाते हैं। हालाँकि अब वे शिक्षिता होकर अपना न्यायोचित अधिकार पाना चाहती है। पुरुषों की भाँति सभी काम करने का, विशेषत: धनोपार्जन करने का अधिकार उन्हें चाहिए। धनोपार्जन न कर सकने के कारण ही पुरुषों की गुलाम बनने को मजबूर हो गई। पुरुष मनमाने ढंग से इन्द्रियों को चलायमान करता है और अगर स्त्री वैसा करती है तो वह दोषी मानी जाती है। नारी को इस लोक में कितने ही कष्ट भोगने पड़ते हैं और ऊपर से उन्हें परलोक का भय दिखाया जाता है। खुद पसंद करके विवाह करने का आत्मनिर्णय स्त्री के पास नहीं है। पति द्वारा पीड़ित करने पर तलाक लेने का आत्मनिर्णय भी नारी के पास नहीं है। विधवा-विवाह का आत्मनिर्णय वे स्वयं नहीं कर पाती।

अपनी आजादी एवं स्वेच्छा से लिया गया इच्छानुरूप निर्णय आत्मनिर्णय की कोटि में आता है। इस कसौटी पर स्त्री किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं है। उसकी आत्मा को तो बचपन से ही भेद-भाव करके दबा दिया जाता है। आत्म निर्णय के क्षेत्र में वह स्वतंत्र नहीं है। लड़कियों का कम उम्र में विवाह करके, उनकी आगे पढ़ने की इच्छा को दबाना आत्मनिर्णय का हनन ही तो है। इस प्रकार उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति के विकास को रोक दिया जाता है। अत: समाज में स्त्री के आत्मनिर्णय के मामले में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

पाश्चात्य देशों की व्यक्तिगत समाज रचना के दोष से सबको अपने पर ही निर्भर करना पड़ता है। वहाँ अपनी संतान के लिए वर-कन्या खोजने का भार प्राय: माता-पिता या अभिभावक पर नहीं होता इसलिए अधिकांश मनुष्य बहुत काल तक विवाह नहीं कर पाते। बहुतों की तो जवानी बीत जाती है। अतएव बहुत-सी स्त्रियाँ भी बहुत बड़ी उम्र

तक, कोई-कोई जीवन पर्यन्त तक अविवाहिता रह जाती है। इस कारण से उन्हें पुरुषों के साथ विषम प्रतियोगिता में अर्थोपार्जन के कार्य में कष्ट भोगना पड़ता है। वे पेट के लिए धन कमाना तथा अन्य कर्मों में पुरुषों के साथ प्रतियोगिता करना चाहती हैं।

बहुत-सी अविवाहिता स्त्रियाँ जब इस प्रकार अर्थोपार्जन के कर्मक्षेत्र में उतर जाती है तब स्वाभाविक ही आवश्यकता और पूर्ति के नियमानुसार (Law of Demand and Supply) वेतन की रेट घट जाती है। बेकारी के डर से नारी को अर्थोपार्जन के लिए नौकरी करनी पड़ती है। अत: जितनी अधिक स्त्रियाँ नौकरी के क्षेत्र में बढ़ती हैं उतनी ही विवाहों की संख्या घटती है। जब बेकार आदमी पेट नहीं पाल सकता तो विवाह कहाँ से करे। इस प्रकार बहुत-सी स्त्रियाँ बहुत काल तक अविवाहित रहने से और अर्थोपार्जन के क्षेत्र में पुरुषों के साथ प्रतियोगिता करने से स्वाभाविक ही पुरुष और स्त्रियों में एक द्वन्द्व और विद्वेष भाव उत्पन्न हो जाता है और पुरुषों की सहानुभूति की भावना नारी के प्रति कम हो जाती है जो लम्बे समय के लिए अभ्यास के अभाव से उनको मातृत्व के, विवाहित जीवन के और गृहस्थी के कर्म के लिए अनुपयुक्त बना देती है। मातृत्व के और गृहस्थी के कर्म में फिर उन्हें वैसा सुख नहीं मिलता बल्कि कष्ट होता है।[24]

जैविक इकाई बनाम मानविक इकाई

स्त्री और पुरुष दो प्रकार के प्राणी हैं जो मानव जाति में प्रजनन की प्रक्रिया के आधार पर विभाजित होते हैं। उन्हें एक-दूसरे संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है। किन्तु पहले समझना होगा कि जीव विज्ञान में नर और मादा का जो वर्गीकरण मिलता है वह उन्हें स्थूल रूप से अलग-अलग कर देता है। स्त्री अपने आप में जैविक इकाई है लेकिन भावनात्मक स्तर पर वह मानविक इकाई है।

स्त्री-पुरुष के रज और वीर्य के मिलने की प्रक्रियाओं के बारे में सभ्यता के आदिकाल से ही मनुष्य ने नाना प्रकार के खयालों और विश्वासों को सामने रखा है। प्रारम्भ में इन विचारों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। आदिम मातृसत्तात्मक समाज में गर्भधारण में पिता की कोई विशिष्ट भूमिका नहीं मानी जाती थी बल्कि यह सोचा जाता था कि पूर्वजों की आत्मा, जीवित बीज के रूप में मातृगर्भ में प्रवेश कर जाती है।

पितृसत्तात्मक संस्थाओं के विकास के साथ-साथ पुरुष अपनी संतति के लिए अपने अधिकार का दावा करने को आतुर हो उठा।

अरस्तू ने स्त्री को एक निष्क्रिय पदार्थ माना और पुरुष को शक्ति, गति और जीवन का। उसने यह कहा कि भ्रूण की उत्पत्ति मासिक स्त्राव और शुक्राणु के संयोग से होती है और प्रत्येक जीव की प्रत्येक प्रक्रिया अपना विशेष महत्त्व रखती है। प्रजनन प्रक्रिया स्त्री और पुरुष के संयोग से होती है। जीव-जगत के विकास की दिशा में उत्तरोत्तर आगे बढ़ने पर हम पाते हैं कि जीव का अपना व्यक्तित्व क्रमश: अधिकाधिक विकसित होता जाता है। मादा को प्रजनन के अलावा संतति की रक्षा करनी पड़ती है। स्तनधारियों में जीवन का रूप और जटिल होता है। संतान की रक्षा के लिए माँ की भूमिका अपरिहार्य है जबकि पुरुष को अपनी संतानों में कोई खास रुचि नहीं रहती है। जहाँ मादा संतति के प्रति प्रजनन से लेकर भरण-पोषण तक की पूरी प्रक्रिया के प्रति समर्पित रहती है। वहाँ पुरुष अपने जीवंत अंश को अपने से सिर्फ परे रखता है। जैविक रूप से नर के स्वभाव में अतिक्रमण की ऐसी क्षमता होती है जिससे उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

जिस जाति का वैयक्तिक विकास अधिक उच्चतर होता है उसमें पुरुष की इच्छा स्वायत्तता हासिल करने की अधिक होती है। वह औरत से ज्यादा चपल, मजबूत और साहसी होता है। वह ज्यादा दक्ष भी होता है और धृष्ट भी। स्तनपायी जानवरों में भी पुरुष ही आदेश देता है। विकास क्रम में जहाँ भी जीव को वैयक्तिकता की जरूरत पड़ी वहाँ इसे श्रेष्ठ स्थिति में रखा गया। पुरुष को ऐसे रास्ते मिलते चले गये जिन पर चलकर उसे अपना आधिपत्य हासिल करना था। इसके विपरीत स्त्री गुलामी की अवस्था दिन-प्रतिदिन स्वीकार करती चली आई।

मादा जीवों में मनुष्य जाति की मादा ही औरत होने की अपनी नियति सबसे अधिक नारकीय तरीके से झेलती है। अत: औरत के ऊपर प्रजनन का अतिरिक्त दायित्व ही उसे पुरुष के विकास से अलग करता है। जन्म से लेकर किशोरावस्था तक पुरुष का शारीरिक विकास नियमित रहता है। पन्द्रह सोलह वर्ष की उम्र तक पहुँचकर उसमें शुक्राणु बनने लगते हैं, जो उसकी वृद्धावस्था तक बने रहते हैं। इसलिए उसके शरीर में उत्पन्न हारमोन वास्तव में पौरूषीय गुणों को स्थापित करते हैं। औरत की स्थिति ज्यादा जटिल है।

जन्म के समय औरत के गर्भ में अण्डाशय की संख्या अधिक होती है। अचानक विकास के साथ–साथ गर्भाशय सिकुड़ कर छोटा हो जाता है। इसके बाद औरत का शरीर तो बढ़ता है किन्तु उसकी योनि में कोई परिवर्तन नहीं होता। किशोरावस्था में मासिक स्त्राव शुरू हो जाता है तथा शरीर सुडौल और कमनीय हो जाता है।

इन सारी जैविक घटनाओं के क्रम में औरत के जीवन में एक संक्रांति घटित होती है। उसके शरीर में एक आंतरिक संघर्ष जारी रहता है। औरत का शरीर पहले विरोध करता है और यह संघर्ष उसे कमजोर बनाता है। 14 से 18 साल तक की लड़कियों की मृत्यु संख्या लड़कों से अधिक होती है। औरतों में अनेक प्रकार के मानसिक विकार इसी उम्र में उत्पन्न होते हैं। चूँकि औरतों की सारी शक्ति उनके गर्भ में निहित है अत: गर्भाशय की अस्वस्थ स्थिति में सारा संतुलन बिगड़ जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि औरत स्वयं को अपने शरीर की सीमा के अनुसार ही ढाल सकती है। किशोरावस्था से लेकर रजोनिवृत्ति (मेनॉपॉज) तक औरत के शरीर में घटनाएँ घटती हैं। एक नाटक जारी रहता है। कई औरतों को मासिकस्राव एक बीमारी की तरह लगता है। एक प्रकार का बोझ लगता है। मासिकस्राव के समय हारमोन की ग्रंथियों के अधिक सक्रिय होने के कारण अधिकतर स्त्रियों में इस पूरे दौरे में काफी परेशानी के लक्षण प्रकट होते हैं। समय से पहले और बाद में उनका रक्तचाप बहुत बार बढ़ जाता है। स्त्री की जैविक इकाई मानव मादा के रूप में है और भावना प्रधान चिंतनयुक्त मानव इकाई मानविक इकाई में आती है।[25]

औरत पुरुष की तरह एक शरीर जरूरी है किन्तु उसका अपना शरीर कुछ ऐसा है जिस पर उसका नियंत्रण नहीं रहता। वह उसके स्व से अन्य रहता है। औरत अपने शरीर से अलगाव को गर्भावस्था में और अधिक गहराई से महसूस करती है। यह ठीक है कि गर्भधारण एक सामान्य प्रक्रिया है। यदि स्वास्थ्य और पौष्टिकता की सामान्य परिस्थितियों में यह किया जाय तो माँ के लिए नुकसानदायक नहीं होता। स्त्री और भ्रूण की अन्योन्याश्रितता क्रिया उसके लिए लाभदायक भी होती है। इसके बावजूद गर्भधारण एक थकावट का काम है जिसका औरत को विशेष लाभ नहीं मिलता बल्कि उसे भारी कीमत चुकानी पड़ती है। गर्भावस्था के बाद एक पूरी तरह स्वस्थ औरत अपनी शारीरिक ताकत फिर वापस पा जायेगी किंतु यदि वह स्वास्थ्य के नियमों का उसने ठीक से पालन नहीं किया तो लगातार प्रसव उसको समय से पहले बूढ़ी बना देता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि स्त्री जैविक इकाई होने के साथ-साथ मानविक इकाई भी है क्योंकि वह शरीर धारण करने के साथ-साथ सुख-दु:ख, प्रेम, दर्द के एहसास को समझती है तथा उसका उसी प्रकार प्रत्युत्तर भी देती है।

देह का स्वामित्व

लगभग हर युग में स्त्री को अपनी ही देह का स्वामित्व प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। प्राचीनकाल से ही नारी की देह और उसके प्रजनन अंगों के प्रति पुरुष वर्गीय समाज ने अलग-अलग धारणाएँ बनाई तथा उसको शारीरिक प्रताड़ना देकर स्वयं को सिद्ध किया। एक कन्या से किसी को भय नहीं होता, न उसके चरित्र की पवित्रता पर प्रश्नचिह्न लगता है, न ही उस पर बंधन है। उसे अबोध माना जाता है। वह बचपन में लड़कों के साथ बेरोकटोक खेलती है किन्तु ज्यों ही कन्या में रजोधर्म की उत्पत्ति होती है उस पर कड़े नियम कानून लगने लग जाते हैं। उस पर कड़े निषेध लगा दिए जाते हैं। वह अपवित्र हो जाती है। रजस्वला के तीन दिनों में वह ना तो किसी वस्तु का स्पर्श करती है और न ही उसे कोई धार्मिक कार्य करने की अनुमति होती है। ऐसी स्थिति में नारी अपनी देह की स्वामिनी कैसे हो सकती है, कदापि नहीं। वह तो कड़े नियम और सामाजिक विधानों से चलायमान होती है और उसी में वह धीरे-धीरे ढल जाती है, उसे ही अपनी नियति मान लेती है। पूर्व कालों से ही पुरुष प्रधान समाजों ने नारी को अलग रखने और उसकी पवित्रता के बारे में अनेक नियम बनाए। रजस्वला स्त्री में अनेक नकारात्मक शक्तियों का वास बताया गया।

मतलब यह है कि उसकी देह से सम्बन्धित स्वामित्व के निर्णय को दूसरों ने ही निर्धारित किया और उस पर नियम थोपे।

यह मान्यता रही कि रजस्वला स्त्री का दखल सामाजिक कार्यों में उथल-पुथल ला सकता है। अनाज को नष्ट कर सकता है और साथ ही इसका प्रयोग औषधीय रूप में भी होता है। आज भी कुछ भारतीय नाविक अपनी नौका के अगले भाग में प्रयुक्त होने वाली लकड़ी का अंश नारी के मासिक धर्म के 'रज' में डुबो लेते हैं ताकि उनकी नाव में नदी के दैत्यों से संघर्ष करने की ताकत आ जाये किन्तु पुरुष प्रधान समाज ने नारी के इस रज में केवल बुराई पैदा करने की शक्तियाँ बताई है।

पाश्चात्य विचारक प्लिनी का कथन है कि जिस नारी को रजोधर्म हुआ है यदि वह अनाज को स्पर्श कर दे तो अनाज नष्ट हो जाता है, बगीचे उजड़ जाते हैं, मधुमक्खियां मर जाती हैं, शराब खराब हो जाती है और दूध फट जाता है। कुछ वर्ष पूर्व तक भी ऐसे विचारों को मान्यता प्रदान थी। 1878 में ब्रिटेन के एक मेडिकल जर्नल ने लिखा कि इसमें जरा भी शक की गुंजाइश नहीं है कि रजोधर्म के समय यदि नारी मांस का स्पर्श कर ले तो वह नष्ट हो जाता है। वर्तमान शताब्दी में अब तक भी भारतीय रसोई घरों में रजस्वला समय में प्रवेश पर स्पष्ट रोक है। पाश्चात्य देशों में भी ऐसा ही विश्वास है कि रसोई घर में प्रवेश से चीनी काली पड़ जायेगी। ग्रामीण स्थानों पर आज भी यह विश्वास है। प्रत्येक रसाइया जानता है कि रजोधर्म वाली स्त्री आस-पास रहेगी तो सलाद वगैरह ठीक तरह से नहीं बना पायेगी। सेव का रस ठीक तरह से नहीं उफनेगा और स्वादिष्ट नहीं बनेगा। कई आदिवासी समुदायों में लड़कियों को आदेश दे दिया जाता है कि वे रजस्वला हो तो उस रज का चिह्न भी किसी को नहीं दिखना चाहिए। रक्त लगे कपड़े को जलादे नहीं तो खतरा हो सकता है। लेविटिकस ने गानोटिया जैसी खराब बीमारी को रजोधर्म का रूप बताया। विनी का कथन है कि अस अपवित्रता से बीमारी सम्बद्ध रहती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि नारी की देह का स्वामित्व अधिकार दूसरों के हाथों में चला गया। स्त्री स्वयं अपने बारे में निर्णय कर पाने में असफल रही और इसी असफलता का सहारा लेकर उस पर प्रतिबन्ध लादे गये तथा विभिन्न नियम और कानूनों से सीमित किया गया। इन अलिखित सामाजिक स्त्री विरोधी कानूनों से नारी जाति आज तक हतप्रभ है तथा वह इन विरोधी प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए आज तक लालायित है। पता नहीं देह का स्वामित्व स्त्री जाति को कब तक प्राप्त होगा। वस्तुत: देह के साथ-साथ नारी के मन पर अतिक्रमण कर लिया गया है। उसके दिमाग में यह बात कूट-कूट कर बिठा दी गई है कि ये सारे सामाजिक नियम उसके लिए सही है।

यौन शुचिता का प्रश्न

यौन शुचिता के क्षेत्र में भी नारी को दोयम दर्जे पर रखा जाता है। हर माह स्त्री के मासिक धर्म स्त्राव होता है। यह उसकी शुचिता के लिए सबसे बड़ा प्रश्न चिह्न है। शुचिता शब्द 'शुचि' शब्द में 'ता' प्रत्यय लग कर बना है। इसका अर्थ निकलता है—शुचि होने

की अवस्था, धर्म या भाव। दूसरे शब्दों में स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से खान-पान, रहन-सहन भद्रता और सफाई रखने की अवस्था या भाव शुचिता कहलाता है।[26] शुचिता का दूसरा अर्थ हम पवित्रता से ले सकते हैं। अंग्रेजी भाषा में इसे सैनिटेशन कहा जायेगा।

जब यौन शुचिता का प्रश्न हमारे समक्ष आता है तो शुचिता की चाह नारी से ही क्यों? महिलाओं को बराबरी का दर्जा देने वाले समाज में आज तक अक्षत योनि को लेकर हो-हल्ला किया जाता है। जब पुरुष को यौन शुचिता सिद्ध करने के लिए बाध्यता नहीं है तो फिर क्यों सती सावित्री होने की आशा स्त्री से ही की जाती है?

सदियों से भारतीय समाज में नारी की अक्षत योनि की अवधारणा को लेकर बहुत-से अत्याचार होते आए हैं। कई देशों में तो आज भी कौमार्य परीक्षण करवाया जाता है। इस परीक्षण में असफल होने पर उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है जबकि यह सभी जानते हैं कि खेलते-कूदते समय, साइकिल चलाते समय, वजन उठाते समय कौमार्य झिल्ली फट जाती है। यह एक साधारण प्रक्रिया है जो कभी भी घट सकती है। इसे चरित्र से जोड़कर देखना उचित नहीं है। विडम्बना तो यह है कि अक्षत योनि की महत्ता परिवार एवं समाज द्वारा बचपन से ही नारी के मनमस्तिष्क में अच्छी तरह बैठा दी जाती है। किसी नारी की योनि भंग हुई या जिसने अपनी मर्यादा विवाह पूर्व तोड़ी इसकी समाज में, परिवार में कतई जगह नहीं होती है। मगर पुरुष के अक्षत लिंग को लेकर कोई प्रश्न खड़ा नहीं कियाजाता है। उसे विवाह पूर्व या विवाह पश्चात् किसी भी नारी से यौन सम्बन्ध की मौन स्वीकृति होती है। दुनिया भर के कुकर्म करने का अधिकार लेकर पुरुष समाज में सर ऊँचा किए रहता है और नारी द्वारा किए गए छोटे-से अपराध के लिए भी उसे दण्डित किया जाता है तथा उससे जीने तक का अधिकार भी छीन लिया जाता है।

बृहत्पाराशर स्मृति के अनुसार नारी में काम वासना पुरुष से 8 गुना अधिक होती है। इसके बावजूद वह कितना संयमित जीवन व्यतीत करती है, यह सभी को पता है। यौन सम्बन्ध जहाँ एक प्राकृतिक भूख है, वहीं शारीरिक और मानसिक संतुष्टि का सशक्त माध्यम भी है और इन सम्बन्धों को केवल इसी नजरिये से देखा जाना चाहिए ना कि चारित्रिक नजरिये से, साथ ही इस मानसिकता को भी अपनाना होगा कि अगर कुछ लड़कियाँ प्रेम या विवशतावश विवाहपूर्व शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर भी लेती है तो

उनका व्यक्तित्व मैला नहीं होता, सैक्स को प्रेम की चरम सीमा भी कहा जाता है उसको छू लेना कोई अनैतिक कृत्य नहीं जिसके लिए अविवाहित लड़की को पुरुष प्रेमी से धोखा खा कर मरना पड़े या मुँह छिपाकर अँधेरे को अपना जीवन साथी बनाना पड़े। जो बीत गया सो बीत गया, जीवन में आगे बढ़े, नई मंजिल नई खुशियाँ आपकी राह ताक रही हैं। नारी को यह समझना होगा कि जब पुरुष अपनी शारीरिक शुचिता को सिद्ध करने हेतु बाध्य नहीं है तो फिर सारी नैतिकता का जिम्मा उसी पर क्यूँ? पुरुष के कंधों पर क्यूँ नहीं? नारी को स्वयं अपनी देह से ऊपर उठकर सोचना होगा, यौन सम्बन्धों को व्यापक अर्थ में लेना होगा। प्रेम में धोखा खाने या बलात्कार की शिकार होने पर स्वयं को दूषित समझने और मौत को गले लगाने के बजाय, विपरीत परिस्थितियों को सामान्य हालात में बदलना होगा, खुल कर जीने की पहल करनी होगी।

समाज में नारी पुरुष के बीच कोई भेद–भाव न हो, सभी क्षेत्रों में दोनों सामूहिक रूप से स्वतंत्र एवं सहज रूप से अपनेपन से कार्य करें। किसी भी लिंग के लिए किसी विशेष सुविधा का प्रावधान ना हो केवल भावनाओं और दोस्ती का महत्त्व हो तब ऐसे उन्मुक्त वातावरण में अक्षत योनि का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

यह पुरुष वर्ग की विक्षिप्त मानसिकता का ही परिचायक है कि वह विवाह पूर्व जिस नारी से प्रेम करता है, जिसके साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाता है उस प्रेमिका से विवाह करना स्वीकार नहीं करता है। उल्टे यह उम्मीद करता है कि उसे अक्षत योनि वाली पत्नी ही मिले। ऐसी मानसिकता वाले पुरुष यह भूल जाते हैं कि हम जैसा बोते हैं, वैसा ही काटते हैं।

इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं कि विवाह पूर्व के यौन सम्बन्ध भविष्य के लिए सदैव चिंता का विषय रहते हैं। लड़कियाँ भावुक और अति संवेदनशील होती है, जिसका फायदा प्राय: अवसरवादी पुरुष प्रेम की आड़ में अपनी काम पिपासा को शांत करने के लिए उठाते हैं। इसलिए लड़कियों को चाहिए कि अपनी आँखें खुली रखकर सही पुरुष प्रेमी का चुनाव करें, भावना में बह कर किये गये निर्णय भविष्य के लिए खतरनाक हो सकते हैं।

नारी जीवन में बहुत-से समझौते सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक रूप से भी कर लेती है जिसका खामियाजा उसे ताउम्र आँसू बहा कर उठाना पड़ता है क्योंकि उसमें पुरुष राजी नहीं होते हैं। हमारे समाज में ऐसे पुरुषों की कमी नहीं है जो अपनी यौन लिप्सा के लिए पर स्त्री, वेश्या आदि के पास जाकर अपनी इच्छा शांत करते हैं जबकि पत्नी रूपी नारी घर पर बैठी है। वह अपनी यौनेच्छा की संतुष्टि कैसे करे, यह सोचने वाली बात है। ऐसे में मौन रूप से असंतुष्ट नारी पर पुरुष संसर्ग कर लेती है तो क्या उसे चरित्रहीन कहना चाहिए, शायद बिलकुल नहीं। जिम्मेदारी केवल नारी की ही तो नहीं, पुरुष का भी दायित्व है कि वह अपनी पत्नी को तन-मन और धन से संतुष्ट रखे। केवल नारी से ही सती सावित्री होने की अपेक्षा करना उचित नहीं है।[27]

औरत के चरित्र को दैहिकता से जोड़े रखने की परम्परा काफी पुरानी, गहरी और जटिल रही है। उसको समझे बगैर स्त्री के पक्ष में कोई भी नकारात्मक निर्णय नहीं दिया जाना चाहिए। दरअसल दुनिया भर में औरतों की वर्जिनिटी को यौन शुचिता से जोड़ कर देखा जा रहा है। स्त्री की यौनाकांक्षाओं को कुचलने के भी हर संस्कृति के अपने-अपने बहाने रहे हैं। किसी ने वंश की शुद्धता का बहाना बनाया तो किसी ने व्यभिचार रोकने का पर फल वही निकला, स्त्री की अग्नि परीक्षा अलग-अलग तरीकों से।

आज भी मिस्र के समाज में विवाह की रात तक लड़की की यौन झिल्ली का साबुत होना एक अति आवश्यक गुण माना जाता है। या यूँ कहे कि ऐसा होना जरूरी ही माना जाता है। यह झिल्ली लड़की के लिए चरित्र का प्रतीक व लड़की के भाई-पिता इत्यादि मर्दों के लिए घराने की पवित्रता की प्रतीक मानी जाती है ताकि यह प्रमाण रहे कि स्त्री को विवाह पूर्व किसी ने छुआ नहीं है। यौन शुचिता के इस सामाजिक हठ ने स्त्री पर वहाँ कई तरह के प्रतिबंध लगा रखे हैं जिसमें साईकिल चलाना, खेलना, कूदना, नाचना, उछलना भी मना है ताकि योनि की झिल्ली साबुत और सुरक्षित रहे और सिद्ध किया जा सके कि लड़की का चरित्र अच्छा है। मिस्र के कुछ गाँवों में सुहागरात को दूल्हा और दुल्हन के कुछ रिश्तेदार विवाहित जोड़े के कमरे के बाहर बैठते हैं ताकि सुबह यह देखकर प्रमाणित कर सकें कि चद्दर पर रक्त का निशान है। यदि चादर पर रक्त न मिला तो लड़की का कत्ल लड़की के रिश्तेदारों द्वारा ही किया जा सकता है—'आनर किलिंग' का नाम देकर।

ताजा सर्वेक्षणों की रिपोर्टस के अनुसार कम-से-कम एक हजार स्त्रियाँ ऑनर किलिंग के नाम पर मार दी जाती है। कुछ अफ्रीकी देशों में सामाजिक व धार्मिक आदेशों के तहत स्त्री योनी का अंग भंग किया जाता है पर उनका समुदाय इसे अंग भंग मानने के पक्ष में नहीं है। वे इसे महिला खतना भी कहते हैं। परन्तु यह पुरुष खतना से बिल्कुल अलग है। स्त्री के अंग भंग के पश्चात् यौन उत्तेजना, यौन सुख प्राप्ति की क्षमता बिलकुल समाप्त हो जाती है। इन समाजों में खुले आम कहा जाता है कि चूँकि इससे स्त्री की यौन आकांक्षा पर प्रतिबंध लग जाता है। अत: समाज में व्यभिचार रोकने में मदद मिलती है। यह बहाना कितना बददिमाग, पक्षपाती और दोहरे मापदण्ड वाला है, यह इससे पता चलता है कि अफ्रीकी समाज यौन बीमारियों और एड्स का घर है। इसके बावजूद सेनेगल से लेकर सोमालिया और तंजानिया तक अधिकांश देशों में 90 प्रतिशत लड़कियों का पारम्परिक खतना होता है। नए जमाने के खिलाफ अपनी तथाकथित सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा में लगे लोगों को इस बारे में समझाना मुश्किल है। इसे वे अपनी संस्कृति पर बाहरी सभ्यताओं का प्रहार मानते हैं। कुप्रथाओं के समर्थन में भी समाजों के अपने तर्क होते हैं। यह सब हम भारतीय समाजों में भी देखे जा सकते हैं। मगर इतना तय है कि ये सब बातें स्त्री को सिर्फ उपयोग की वस्तु मानती है इसलिए उसकी उपस्थिति का देह और उसके चरित्र को यौन शुचिता से ऊपर नहीं मानती।[28]

नारी चिंतन का अवधारणात्मक स्वरूप

नारी चिंतन की बातें प्राय: सुनी और पढ़ी जाती है। सुधार मार्ग पर अग्रसर नारियाँ भी स्त्री जागरण की आवश्यकता अनिवार्य समझती हैं और नारी समाज के उत्थान के लिए प्रत्येक स्त्री के हृदय में जागरण का भाव पैदा होना जरूरी है किन्तु स्त्री चिंतन के बारे में हमें और भी गौर करना पड़ेगा।

स्त्री के विषय में चिंतन, विचार-विमर्श, सोचना उसका ईमानदारी से पक्ष लेना, उसके स्वत्वों के बारे में न्यायपूर्ण ढंग से सोच ही नारी चिंतन के अवधारणात्मक स्वरूप की परिधि में आता है। कुछ लोगों के मत में स्त्री स्वत्वों की माँग ही नारी चिंतन है। कुछ लोग इसके द्वारा यह प्रगट करना चाहते हैं कि सामाजिक हलचल में पुरुषों की समानता में स्त्रियों को अग्रसर होने का पूर्ण अधिकार है। नारी चिंतन को स्त्री समाज की क्रांति का

पर्याय समझते हैं और कुछ इसे परदे से बाहर निकली कुछ पढ़ी–लिखी महिलाओं में चहल–पहल पैदा करने का एक सीधा रास्ता स्वीकार करना चाहते हैं। नारी जागरण के लक्षण में प्रस्तुत किये गये प्रमाणों से यही पता चलता है कि आज नारी समाज जागने की प्रक्रिया में है और वह पुरुषों की समानता के स्वाधिकारों की रक्षा में पूर्ण रूपेण समर्थ है किन्तु यही नारी चिंतन का अभिप्राय या आदर्श नहीं कहा जा सकता है।

भारत में आज भी सामाजिक ताना–बाना ऐसा है कि जिसमें अधिकांश महिलाएँ पिता या पति पर ही आर्थिक रूप से निर्भर रहती है तथा निर्णय लेने के लिए भी परिवार में पुरुषों पर निर्भर रहती है। महिलाओं को न तो घर के मामलों की निर्णय प्रक्रिया में शामिल किया जाता है और न ही बाहर के मामलों में। विवाह से पूर्व पिता व विवाह पश्चात् पति के अधीन रहते हुए जीवन यापन करना पड़ता है। इसलिए नारी के विषय में सकारात्मक रूप से चिंतन किया जाना चाहिए। हालाँकि देश के संविधान में महिलाओं को पुरानी दासता एवं गुलामी की जंजीरों से मुक्ति दिलाने के प्रावधान किए गए हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21, 23, 24, 37, 39(बी) स्त्री को पुरुषों के समान अधिकारों की पुष्टि करते हैं।

नारी चिंतन की अवधारणा को सामाजिक हितों के आधार पर यह मूल रूप से सामाजिक सम्बन्धों से अनुप्रेरित होता है लेकिन स्त्रीवादी विद्वान् लैंगिक असमानता इत्यादि पर ज्यादा बल देते हैं।

नारी चिंतन का उद्देश्य लैंगिक असमानता की प्रकृति एवं कारणों को समझना तथा नारी के होने वाले लैंगिक भेद–भाव की राजनीति और शक्ति संतुलन के सिद्धान्तों पर इसके असर की व्याख्या करना है। स्त्रीवादी चिंतन का मूल कथ्य यही रहता है कि कानूनन लिंग सम्बन्धी अधिकारों का हनन नहीं होना चाहिए।[29]

औरत जन्म से नहीं होती बल्कि उसे औरत बनाया जाता है। कोई भी जैविक मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती।

उपर्युक्त विवेचन से ये सिद्ध होता है कि औरत जन्म से नहीं होती बल्कि उसे बाद में बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक नारी बनने का सुनियोजित प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण उसके सोचने समझने की क्षमता आने पर शुरू हो जाता है और वह जब तक

पूर्ण नारी नहीं बन जाती तब तक निर्बाध चलता रहता है। नारी को कभी यह नहीं भूलने दिया जाता है कि वह नारी है। लगातार सामाजिक रीति-रिवाज उसे बरगलाने में लगे रहते हैं। स्वयं माँ भी अपनी बेटी को मानसिक रूप से श्रेष्ठ नारी बनाने का हर संभव प्रयास करती है कि वह सफल पत्नी साबित हो। बार-बार कहा जाता है कि तुझे पराये घर जाना पड़ेगा।

हम नारी के पक्ष में चाहे कितनी भी बातें करें जब तक समाज नारी का स्वत्व ईमानदारी से नहीं समझेगा तब तक नारी विकास का सपना अधूरा ही रहेगा। यही नारी चिंतन का अवधारणात्मक स्वरूप है।

सन्दर्भ

1. डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा — भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति, पृ. 3
2. डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा — नेहरू की दृष्टि में महिलाओं के मानवाधिकार, पृ. 94-95
3. डॉ. एम. के. मिश्रा — भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा और उत्पीड़न, पृ. 80, 81
4. डॉ. एम. के. मिश्रा — भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा और उत्पीड़न, पृ. 85
5. चौथी दुनिया (हिन्दी का साप्ताहिक अखबर) Google : Internet
6. चौथी दुनिया (हिन्दी का साप्ताहिक अखबर) Google : Internet
7. डॉ. एम. के मिश्रा — भारत में महिला मानवाधिकार आन्दोलन, पृ. 117-118
8. महामहोपाध्याय पं. विधुशेखर भट्टाचार्य — 'कल्याण' (नर-नारी का आदर्श और अधिकार) नारी अंक, पृ53
9. निरूपमा शर्मा — 'कल्याण' नारी अंक, (नारी जागरण का अभिप्राय), पृ. 200
10. डॉ. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा — भारत में स्त्रियों की समस्याएँ : समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएँ, पृ. 255
11. नारी का प्रश्न - अलख निरंजन, 'कल्याण' 22वां वर्ष का विशेषांक, पृ. 259
12. डॉ. नगेन्द्र कुमार शर्मा — भारत में जाति और आरक्षण की राजनीति, पृ. 179
13. यजुर्वेद, 8/1
14. पी. एच. प्रभु — हिन्दु सोशियल ऑर्गनाइजेशन, पृ. 262
15. अथर्ववेद, 14/14
16. महाभारत, 43/19-21
17. चन्द्रावती लखनपाल —स्त्रियों की स्थिति, पृ. 25
18. डॉ. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा —भारत में सामाजिक समस्याएँ, पृ. 237

19. वही, पृ. 238
20. वही, पृ. 238
21. डॉ. प्रभा खेतान — स्त्री उपेक्षिता (सीमोन द वाउवार - रूपांतरण), पृ. 58-59
22. वही, पृ. 61
23. वही, पृ. 71
24. नारी पाश्चात्य समाज में तथा हिन्दु समाज में 'कल्याण' नारी अंक, पृ. 146
25. स्त्री उपेक्षिता (स्त्री की जैविक स्थिति) वही, पृ. 35
26. Shabdakssh raftar.in >Shabdkosh>English Hindi Dictionary - Internet
27. गृहशोभा, 15 मई, 2015 अंक (डॉ. फौजिया नसीमशाद — शुचिता की चाह नारी से ही क्यों), पृ. 35
28. यौन शुचिता — इज्जत का अर्थ यौन शुचिता ही क्यों Google : Internet Web Duniya, Sunday 9.8.2015
29. Google : Internet Naarivaad — wikipedia.

❑

द्वितीय अध्याय

नारी चिंतन की चारित्रिकता

स्वातंत्र्य बोध

नारी के स्वातंत्र्य बोध से जुड़ा यह ज्वलन्त प्रश्न है कि नारी को अभी तक अपनी स्वतंत्रता का बोध नहीं है। यह शायद आधी आबादी से जुड़ा एक कड़वा सच है। कहने को हम आधुनिक तो हुए लेकिन महिलाओं के लिए हमने अभी तक हदें तय कर रखीं हैं। कुछ गलती खुद महिलाओं की है, हम 100 में से 2-4 अपवादों के बूते पर समूचे नारी वर्ग को स्वतंत्र कैसे परिभाषित कर सकते हैं? भले ही पिछले दशकों में नारी शिक्षा और स्वाधीनता ने जोर पकड़ा है उसके क्रांतिकारी परिणाम सामने आये हैं और घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर महिलाओं ने उच्च शिक्षा प्राप्त करना और विभिन्न पदों पर आसीन होना प्रारम्भ कर दिया है। अब महिलाओं ने देश के सामाजिक आर्थिक विकास में भी अपनी महती भूमिका का निर्वाह करना प्रारंभ कर दिया है। फलस्वरूप उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता में भी बदलाव आया है। नारी चेतना के स्वर मुखरित हुए और नारी स्वातंत्र्य आंदोलनों ने जोर पकड़ा है किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या इस आन्दोलन तथा नारी स्वतंत्रता के मायने पूर्ण रूप से सफल हुए?

यदि हम इस प्रश्न पर गौर करें तो एक तथ्य सामने आता है कि पुरुष प्रधान समाज में अब भी नारी को दोयम दर्जे का स्थान प्राप्त है। इतना अवश्य है कि शिक्षा एवं नारी जागृति के फलस्वरूप नारी की स्थिति में सुधार हुआ है किन्तु यह सुधार आंशिक ही है। इसे नारी स्वाधीनता का पूर्णरूपेण प्रतीक नहीं माना जा सकता इसलिए नारी उच्च शिक्षित होने के बावजूद आज भी घर-परिवार और यहाँ तक कि स्वयं अपने मामलों में निर्णय लेने में असमर्थ है। उसकी मानसिक क्षमता आज भी संदिग्ध बनी हुई है। निर्णय

केवल पुरुष लेता है। नारी उसे मानने के लिए प्रतिबन्धित होती है, भले ही उसकी सहमति उस निर्णय में हो या न हो।

देश की आधी आबादी का हिस्सा महिलाओं का है और उसमें मात्र गिनी चुनी महिलाएँ ही हैं जिन्होंने अपनी दृढ़ निर्णय क्षमता का परिचय दिया है लेकिन आनुपातिक तौर पर तो नारी की निर्णय क्षमता पुरुष से कमतर ही है। अपनी निर्णय अक्षमता के कारण ही दुनिया भर में कितनी ही महिलाएँ रोज ही अत्याचार एवं शोषण व अन्याय का शिकार बन रही है। जब भी निर्णय लेने का वक्त आता है नारी स्वयं ही पुरुष पर निर्भर हो जाती है। सिर्फ इसीलिए क्योंकि वह स्वयं को मानसिक रूप से पुरुष से अधिक सक्षम नहीं मानती है। यह बात बचपन से उसके अन्दर डाली जाती है। यही कारण है कि नारी के साथ स्वतंत्रता नहीं होती है। अपने साथ हो रहे अन्याय को नारी चुपचाप यह सोचकर विरोध नहीं कर पाती कि प्रतिकार करने पर उसके साथ और ज्यादती होगी। कई बार उसे बहिष्कृत कर दिया जाता है। ये सब बातें उसकी निर्णय अक्षमता को दर्शाती है। वह स्वयं अपने भविष्य के विषय में निर्णय लेने में अक्षमता को दर्शाती है। नारी स्वयं के भविष्य में कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं होती है। नारी के साथ शोषण और अत्याचार सदियों पहले होते थे आज भी हो रहे हैं। ये सिद्ध करते हैं कि शिक्षित होने के बावजूद नारी की मानसिक रूप से अब तक निर्णय लेने में सक्षम नहीं हो पाई है।

यह सच है कि महिलाएँ ठान लें तो उनमें इतना आत्मविश्वास और दृढ़ मानसिक क्षमता के बलबूते पर वे आत्मसम्मान और स्वाभिमान की रक्षा कर सकें। इसके उदाहरण हमारे समाज में भी है। चूँकि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का मानसिक विकास करना भी होता है। इस दृष्टि से देखें तो आज जबकि महिलाएँ पढ़ी-लिखी और उच्च शिक्षित हैं तो उन्हें इस शिक्षा का लाभ उठा कर अपनी निर्णय क्षमता और मानसिक क्षमता का विकास करना होगा ताकि निर्णय लेने के मामलों में उन्हें पुरुष पर निर्भर न रहना पड़े और सही अर्थों में उन्हें पुरुषों के समकक्ष रखा जा सके। वे अपनी लड़ाई खुद जीत सके।[1]

पर क्या ये स्वतंत्रता सही मायने में नारी स्वातंत्र्य है? क्या वेशभूषा, भाषा में क्रांतिकारी बदलाव घूमना फिरना, मनमानी आजादी, यही नारी स्वतंत्रता है? क्या हासिल हुआ इस स्वतंत्रता से समाज को और नारी को भी? यहाँ हम मानसिक सोच में स्वतंत्रता

की बात कर सकते हैं। कितनी लड़कियाँ हैं जो दहेज के खिलाफ आवाज उठाती हैं, कितनी महिलाएँ हैं जो भ्रूण हत्या रोक पाती है। नारी बहू बन कर सास ससुर की सेवा तो करती है, पर क्या भाई ना होने की स्थिति में वह अपने मायके जाकर माँ-बाप की सेवा वृद्धावस्था में कर सकती है। सबसे बड़ी बात क्या वो पढ़ाई करने, नौकरी करने, विवाह करने जैसे निर्णय स्वयं ले सकती है? नहीं ना ...? फिर हम किस मायने में कह सकते हैं कि नारी स्वतंत्र है।

हम नारी के स्तर में सुधार की बात तो करते हैं। शुरुआत कन्याओं से करते हैं, जिन्हें हम देवी का अवतार कहते हैं। सबसे पहले तो उन्हें जन्म लेने और जीने का अधिकार चाहिए। यह स्वातंत्र्य बोध एक माता में आना चाहिए तब वह अपनी कोख में बेटी की रक्षा कर पाएगी। एक माता को अपनी बेटी का लालन-पालन स्वतंत्रता से करना होगा। उसे जीने का अधिकार देना होगा। समाज में अपने बल बूते खड़े होने और समाज को सही दिशा देने की हैसियत उनमें पैदा कीजिए। नर और नारी किसी मायने में अलग नहीं, बस एक ही सिक्के के दो पहलू है। हमें अपना नजरिया बदलने की देर है। नजारा अपने आप बदल जायेगा।

समानता का अधिकार

स्त्री-पुरुष के बीच समानता का मुद्दा उठते ही ऐसा लगने लगता है कि जैसे समाज के दोनों पक्ष तलवार लेकर एक-दूसरे पर आक्रमण के लिए तैयार हो गए हैं। घर-परिवार, व्यवसाय और समाज के अनेक क्षेत्रों में एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हुए चलने वाले ये दोनों पक्ष इस मुद्दे के उभरते ही सहसा एक-दूसरे के दुश्मन नजर आने लगते हैं।

जहाँ पुरुष अपनी बातों के बाणों से महिलाओं के आत्मसम्मान को घायल करते नजर आते हैं एवं उनके स्वाभिमान को चुनौती देते हैं जैसे महिलाएँ कभी पुरुष जैसी हो ही नहीं सकती, जो काम पुरुष कर सकते हैं, वे महिलाएँ कर ही नहीं सकती, उन्हें तो पुरुषों से सुरक्षा मिलती है। जबकि पुरुष को उनसे किसी तरह की सुरक्षा की जरूरत नहीं होती है। इस मतभेद का आधार ही गलत है। यहाँ समानता शब्द का अर्थ थोड़े गलत ढंग से लिया गया है। वास्तव में देखा जाए तो समानता का यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि महिला

और पुरुष एक समान हैं। वे तो एक–दूसरे से बिल्कुल अलग–अलग हैं। प्रकृति में, स्वभाव में और शरीर रचना में भी। समानता से तात्पर्य है, समान अधिकारों का, समान अवसरों का और समान व्यवहार एवं सम्मान का। किसी कथन के तात्पर्य को ठीक से नहीं समझा जाये तो बेवजह तकरार की स्थिति पैदा हो सकती है। पहले स्त्री–पुरुष के स्वरूप और समाज में उनकी उपयोगिता को समझने की कोशिश करते हैं। हमारे समाज में सदियों पहले ही नारी की अवधारणा पेश की गई थी जिसके द्वारा स्त्री–पुरुष के बीच समानता दर्शायी गई है। जब हम स्त्री–पुरुष के समानता रूपी झगड़े में पड़ते हैं तो ऐसे में बहुत जरूरी है कि हम समानता का अर्थ समझें।

इसके लिए अर्धनारीश्वर की अवधारणा को समझना जरूरी है। ईश्वर के अर्द्धनारीश्वर रूप में उनके आधे शरीर को पुरुष रूप में तथा आधे को स्त्री रूप में प्रदर्शित किया गया है। इस अवधारणा के अनुसार दोनों में से कोई भी एक–दूसरे न श्रेष्ठ है और न हीन, हालाँकि दोनों स्वरूप एक–दूसरे से भिन्न हैं, एक मृदु है, कोमल है, तो दूसरा कठोर, परन्तु शक्ति दोनों में अप्रतिम है, कोमल है। स्त्री–पुरुष समानता का उदाहरण तो शायद ही हमें कहीं और मिलेगा यदि इस स्वरूप का आधा भाग निकाल दिया जाये तो बचा हुआ दूसरा भाग अधूरा रह जायेगा। एक के बिना दूसरा अधूरा है। इसका सीधा सा अर्थ है स्त्री और पुरुष एक–दूसरे के पूरक हैं। जैसे खण्डित मूर्ति पूजनीय नहीं होती वैसे ही इन दोनों में से कोई भी अकेला पूजनीय नहीं होता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने स्त्री समानता के स्वरूप को जन्म दिया वे स्त्री के ज्वलन्त सवालों के लिए धर्म एवं जाति को जिम्मेदार मानते हैं। जाति, धर्म व लिंग निरपेक्ष संविधान में उन्होंने सामाजिक न्याय की परिकल्पना की है। हिन्दू कोड बिल के जरिये उन्होंने संवैधानिक स्तर से महिला हितों की रक्षा का प्रयास किया। संविधान सम्मत सामाजिक न्याय के सूत्र और हिन्दू कोड बिल में ही महिला सशक्तिकरण की विशद व्याख्या विद्यमान है। संविधान शिल्पी डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों का ही प्रतिफल है कि भारतीय समाज में महिलाओं को सुनहरे मौके मिले लगे हैं। फिर भी समाज में व्याप्त रूढ़ियां और पूँजीवाद आधारित उपभोक्तावादी संस्कृति महिला सशक्तिकरण के मार्ग में रूकावट पैदा कर रही है। दरअसल यह समाज सदियों से मनुवादी विचारों से आक्रान्त रहा है। स्त्री शिक्षा और उनकी सामाजिक हैसियत को लेकर डॉ. बी.आर.अम्बेडकर चिंतित

रहा करते थे। 1913 में पिता के मित्र को लिखे पत्र में उन्होंने कहा लड़के के साथ-साथ लड़कियों की शिक्षा पर भी जोर देना आवश्यक है। वे देश-विदेश में भ्रमण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लड़का शिक्षित होगा तो सिर्फ एक व्यक्ति शिक्षित होगा जबकि लड़की शिक्षित होगी तो पूरा परिवार शिक्षित होगा। उच्च शिक्षा ग्रहण करने के दौरान अम्बेडकर ने 'भारत में जातियाँ, उनकी व्यवस्था, उत्पत्ति और विकास' नामक शोध आलेख प्रस्तुत किया। उन्होंने भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि सती-प्रथा के तहत हिन्दू महिलाओं के साथ क्रूरतापूर्वक व्यवहार किया जाता है। जबरन जीने का अधिकार छीन लिया जाता है। सगोत्र विवाह के लिए दबाव डाला जाता है। वहीं इस्लाम धर्म आधारित मुस्लिम समुदाय में पर्दाप्रथा के जरिये महिलाओं के मानसिक और नैतिक जरूरतों का दमन किया जाता है। स्त्रियों और शूद्रों की मुक्ति और सशक्तिकरण का सवाल उनकी प्राथमिकता में था।[2]

तुलसीदास कृत रामचरित मानस में अहिल्या उद्धार प्रकरण के अन्तर्गत राम द्वारा अहिल्या की पुन: स्वरूप प्रतिष्ठा स्त्री समानता का उदाहरण माना जा सकता है। राम ने शापग्रस्त अहिल्या को अपने चरण स्पर्श से पुन: स्त्री बना दिया था।

गौतम नारी श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरण कमल रज चाहति कृपा करहु रघुवीर।[3]

गौतम मुनि की स्त्री अहिल्या शाप वश पत्थर की देह धारण किये बड़े धीरज से आपके चरण कमलों की धूलि चाहती है।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रकट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होई कर जोरि रही।।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा, मुख नहि आवइ बचन कही
अति सय बडभागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार।।

इस प्रकार तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में कई स्थानों पर नारी समानता को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है।

विवाह ,तलाक एवं पुनर्विवाह में आत्मनिर्णय की स्वतन्त्रता

विवाह जैसे संवेदनशील विषय में नारी को आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता होनी चाहिए लेकिन आज समाज में 90 प्रतिशत लड़कियों से मध्यमवर्गीय परिवारों में उनकी इच्छा नहीं पूछी जाती। पिता, भाई जहाँ भी रिश्ता तय कर देते हैं लड़की सिर झुका कर अपनी मौन सहमति दे देती है। कई मामलों में लड़की अगर मना करती है तो उसे 'ऑनर किलिंग' का सामना करना पड़ता है।

भक्तिकाल में तुलसीदास ने अपनी कृति रामचरित मानस में विवाह के प्रति आत्मनिर्णय की स्वतन्त्रता के प्रति अपना सकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। सीताजी अपनी स्वयं की मरजी स्वयंवर में राम का चुनाव कर उनको वरमाला पहनाती है।

सखिन्ह मध्यसिय सोहति कैसे। छविगन मध्य महाछवि जैसे।।
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व विजय सोभा जेहि जाई।।
× × ×
तन संकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परई न काहू।।
जाई समीप राम छवि देखी। रहि जनु कुंअरि चित्र अवरेखी।।[4]
× × ×
चतुरसखी लखिकह बुझाई। पहिरावदु जयमाल सुहाई।।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेमविवस पहराई न जाई।।[5]
× × ×
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि समीत देत जयमाला।
गावहि छवि अवलोकि सहेली। सियं जयमाल राम उर मेली।।[6]

तुलसीदास के पूर्वकाल में भी स्त्री की विवाह के आत्मनिर्णय के बारे में स्वतंत्रता थी। जैसे आदिकाल में पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता का पृथ्वीराज रासो में विवाह स्वयंवर प्रकरण मिलता है। संयोगिता की विवाह हेतु पूर्व सहमति का वर्णन भी मिलता है।

मनुष्य की प्रबल इन्द्रिय लालसा का संकोच करके उसे एक सीमा में आबद्ध करने के लिए दूसरे शब्दों में भोग से संयम की ओर, प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर तथा संसार से भगवान् की ओर बढ़ने के लिए विवाह नामक संस्था आवश्यक है। यही हिन्दू विवाह का

उद्देश्य एवं लक्ष्य है। हिन्दू विवाह भोग लिप्सा का साधन नहीं, एक धार्मिक संस्कार है, संस्कार से आत्मशुद्धि होती है और शुद्ध अंत:करण में तत्त्वज्ञान एवं भगवत्प्रेम का प्रादुर्भाव होता है जो जीवन का परम पुरुषार्थ होता है।

भक्तिकाल के सूफी काव्य धारा के मलिक मुहम्मद जायसी ने भी रत्नसेन और पद्मावती के विवाह प्रसंग में पद्मावती के विवाह रूपी आत्म निर्णय को प्रमुख रखा है। राजकुमारी पद्मावती के विवाह का वर्णन निम्न है—

भई जेवनार फिरा खंडवानी। फिरा अरगजा कुंहू कुंहू पानी।।
फिरा पान बहुरा सब कोई। राग वियाह चार सब कोई।
मांडों सोन क गगन संवारा। वंदन वार लाग सब वारा।।
साजा पाता छत्र के छांहो। रतन चौक पूरा तेहि माहां।।
कंचन कलस नीर भरि धरा। इन्द्र पास आनी अपछरा।।
गांठि दुलह दुलहिन के जोरी। दुऔ जगत जो जाई न छोरी।।
वेद पढ़ै पंडित तेहि ठाऊ। कन्या तुला राशि लेई नाऊ।।
चाँद सुरूज दुऔ निरमल दुऔ संजोग अनूप।
सुरुज चाँद सौ भूला चाँद सुरूज के रूप।।[7]

दोनों का संयोग अनूप है, अवर्णनीय है। सूरज (रतनसेन) चन्द्रमा (पद्मावती) को देखकर सब कुछ भूल गया और चन्द्रमा (पद्मावती) सूरज (रतनसेन) के रूप को देखकर सब कुछ भूल गई अर्थात् मोहित हो गई।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल के प्रमुख कवियों ने नारी के विवाह सम्बन्धी आत्मनिर्णय का पूर्ण रूपेण समर्थन किया है।

अब प्रश्न आता है तलाक के आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता का, जो स्त्री के परिप्रेक्ष्य में कम ही पाया जाता है। आज भारत में स्त्रियों द्वारा तलाक लेने की संख्या कम है और पुरुषों द्वारा तलाक लेने की बहुत अधिक है। तलाक को विवाह विच्छेद भी कहा जाता है। तलाक उर्दू शब्द है। विवाह विच्छेद वह स्थिति है जिसमें पति-पत्नी का वैवाहिक सम्बन्ध अन्तिम रूप से समाप्त हो जाता है। दोनों ही पक्ष वैवाहिक सम्बन्ध से मुक्त होकर विवाह की पूर्व स्थिति में आ जाते हैं। दोनों ही पक्षों को एक-दूसरे के साथ रहने, सहवास अथवा

यौन सम्बन्ध रखने का अधिकार भी पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। तलाक को हम यथार्थ विवाह की अन्तिम समाप्ति भी कह सकते हैं। तलाक एक दु:खद स्थिति है। यह स्थिति नारी को अपमानित, तिरस्कृत व पीड़ित अनुभव करने वाली होती है। स्त्री को इसके लिए अधिक कष्टदायक परिणाम भोगने पड़ते हैं। स्त्री को सामाजिक, आर्थिक व भावात्मक आघातों का सामना करना पड़ता है। जो पुरुष अपनी पत्नी के साथ वैवाहिक सम्बन्धों को तोड़ देता है पत्नी को भी भावात्मक आधार पर यह अनुभव होता है कि उसका तिरस्कार हुआ है।

नारी को तलाक के सम्बन्ध में वैधानिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता दी गई है। यदि पति नपुंसक हो, विक्षिप्त हो, सात वर्षों से पति के बारे में कोई जानकारी नहीं हो, पति को संक्रामक रोग हो, पति बलात्कार करता हो, पति समलैंगिक हो या पति पशु गमन या मैथुन का आदि हो तो स्त्री को पूर्ण अधिकार है कि वह उपर्युक्त आधारों पर तलाक ले सकती है। इनके साथ व्यभिचार और निर्दयता को भी तलाक का आधार बनाया गया है। विवाह के एक वर्ष बाद विवाह विच्छेद हो सकता है।

हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 (3) में की गई व्यवस्था में स्त्री निम्न आधारों पर भी अपने पति से तलाक ले सकती है—(1) जब पति प्रथम विवाह के अस्तित्व में रहते दूसरा विवाह कर लेता है, (2) जब पति बलात्कार या अप्राकृतिक मैथुन का दोषी पाया जाता है, (3) जब हिन्दु दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 13 या दण्ड संहिता की धारा 125 के अधीन पत्नी के पक्ष में पारित भरणपोषण की डिक्री के बावजूद भी एक वर्ष के अन्तर दोनों पक्षों में सहवास पुन: आरंभ नहीं होता है।

विवाह के समय पत्नी की आयु 15 वर्ष से कम होने पर पत्नी द्वारा 18 वर्ष की उम्र पूर्ण होने से पूर्व विवाह विच्छेद के लिए याचिका प्रस्तुत कर सकती है।[8]

भक्तिकाल में भी पुरुष स्त्री के सम्बन्ध टूटते होंगे लेकिन उन्हें तलाक नाम नहीं दिया जाता था। तब तो औरत को पैर की जूती ही समझा जाता था, जब चाहे बदल ली जाती थी। औरत तब विरोध करने लायक थी ही नहीं, विरोधी करती भी कैसे पुरुष वर्ग बड़ा प्रबल था।

उन्हीं की अदालतें उन्हीं के मुन्सिफ उन्हीं के वकील
हमें मालूम था कसूर हमारा ही निकलेगा।

श्रीराम ने भी अपनी निर्दोष पत्नी सीता को लोक निन्दा के भय से त्याग दिया तथा उसे पुन: अरण्य निवास मिला। उस समय वह गर्भवती थी। मुनि वशिष्ठ के आश्रम पर उनके दोनों पुत्रों का जन्म हुआ। (यह तलाक ही था, इसे और क्या कहेंगे?) दोनों पुत्रों का नाम लव और कुश था। बाद में पुत्रों को श्री राम ने स्वीकारा।

अहनिसि विधिहिमनावत रहहीं। श्री रघुवीर चरन रति रहही।
दुई सुत सुंदर सीता जाए। लव कुस वेद पुराणन गाए।।[9]

(वे रात-दिन ब्रह्माजी को मनाते रहते हैं और उनसे रघुवीर जी के चरणों में प्रीति चाहते हैं। सीताजी के लव और कुश—ये दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका वर्णन वेद पुराणों ने किया है।)

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहुं अति सुन्दर।।[10]

तुलसीदास जी राम चरित मानस में बड़ी चतुराई से सीता त्याग का वर्णन छिपा गए हैं जबकि वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख मिलता है। अपने प्रभु श्रीराम की महानता को बनाए रखने के लिए उनका ऐसा करना जरूरी था, लेकिन सीता के कष्ट, विरह ओर मानसिक संताप का उन्होंने मन से चित्रण नहीं किया क्योंकि उपर्युक्त चौपाइयों के अलावा सीता परित्याग का कोई वर्णन हमें रामचरित मानस में नहीं मिलता है। तुलसीदास ने अपने नायक राम का चित्रण उनके सकारात्मक पक्ष को लेकर किया है, नकारात्मक पक्ष उन्होंने जानबूझ कर छोड़ दिया।

अब स्त्री के पुनर्विवाह के प्रश्न पर चर्चा की जानी चाहिए। पुनर्विवाह एक ऐसा मुद्दा है जो सभी के साथ संपूर्ण, शारीरिक व मानसिक रूप से जुड़ा है। पहले विधवा हो जाना या विवाह विच्छेद (तलाक) के बाद उसे पर-पुरुष के साथ एकाकार होने में एड़ी चोटी का जोर लगाना पड़ता है। पूर्व पुरुष की यादों को सीने में ही दफन कर उस कब्र पर वर्तमान पुरुष के एहसास की गर्मी जगानी पड़ती है। ऐसी स्थिति में नारी को ही पूरे तौर पर सामंजस्य बैठाना पड़ता है। पूर्व पति की यादें ताउम्र उसके दिलो दिमाग से नहीं जाती हैं।

उन्हीं यादों की नींव पर नवीन पति का घर संसार सजाना होता है। ये स्थिति मानसिक रूप से झकझोर देने वाली होती है।

विधवा–विवाह के सम्बन्ध में मध्यकाल में धर्म के ठेकेदारों ने मिथ्या मान्यता के महत्त्व को प्रतिपादित कर दिया कि लड़की पर दूसरी बार तेल नहीं चढ़ता है अर्थात् पुनर्विवाह नहीं किया जा सकता है। जब पुरुष कई–कई बार विवाह कर सकता है तो महिला विवाह क्यों नहीं कर सकती, परित्यक्ताओं और विधवाओं को विवाह के मामले में आत्मनिर्णय करना परम आवश्यक है। बाल विधवाओं और उन विधवाओं को जो विवाह के इच्छुक हैं उन्हें विवाह करने की स्वीकृति मिलनी चाहिए, यह स्वाभाविक न्याय है। इसको शास्त्रों एवं ऋषियों ने भी मान्यता प्रदान की है।

पुनर्विवाह हमेशा से एक जरूरी लेकिन आज के लाइफ स्टाइल में यह सहजता से स्वीकार किया जाने लगा है। एक निजी चैनल पर पुनर्विवाह नाम से प्रसारित हो रहे धारावाहिक ने भी इसे बल दिया है।

जैसे पोलियो मुक्त भारत, टी.बी. (बीमारी) मुक्त भारत जैसी समाज और देश के लिए योजनाएँ चलाई जा रही हैं वैसे ही विधवाविहीन समाज के लिए आज भी एक आन्दोलन की जरूरत है। खास कर युवा विधवाओं को पहल करने की जरूरत है। इसमें कुछ गलत भी नहीं है। कारण यह है कि हमारे यहाँ वैदिक काल से ही विधवाओं के पुनर्विवाह की परम्परा रही है।

तेजी से बदलते समाज में विधवाओं ने भी अपनी सीमाएँ तोड़ने, वैधव्य के बंधन से आजाद होने की शुरुआत कर दी है। अच्छी बात यह है कि समाज दबे मन से ही सही विधवा महिलाओं, खासकर युवा विधवाओं की ऐसी पहल को स्वीकारने लगा है। यह बात और है कि कुछ दकियानूसी समाज इसका विरोध पुरुष प्रभाव को बनाये रखने के लिए आज भी करता है और तर्क भारतीय समाज की परम्परा और धर्म का देता है। लेकिन सच तो यह है कि भारत में अति प्राचीनकाल से ही पुनर्विवाह होते रहे हैं। वैदिक समाज में भी पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं था। ऋग्वेद में भी ऐसी कोई चर्चा नहीं मिलती है। यह साफ तौर पर कहा जा सकता है कि उस समय भी विधवा हो चुकी स्त्री को किसी

भी पुरुष के साथ विवाह करने का या अपने–अपने तरीके से जीवन जीने का अधिकार प्राप्त था।

"वे महिलाएँ जो अपनी संतान के साथ रहती हों या जिसके पति यात्रा पर गये हों और पाँच वर्षों तक वापस नहीं लौटे अथवा वह अपने पति के पास जाने की इच्छुक नहीं हो तो उसे पुनर्विवाह की अनुमति है।"[11]

159 साल पहले भारत में पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता मिली थी। अंग्रेज सरकार से इसे लागू करवाने में समाज सेवी ईश्वर चंद विद्यासागर का बड़ा योगदान था। उन्होंने अक्षय कुमार दत्ता के सहयोग से विधवा–विवाह को हिन्दू समाज में स्थान दिलवाने का काम शुरू किया। विद्यासागर ने अपने बेटे का विवाह भी एक विधवा से किया था। इस अधिनियम से पहले हिन्दू समाज में महिलाओं को विधवा होने के बाद दोबारा शादी करने की इजाजत नहीं थी। अभी कुछ दिन पहले ही एक भाजपा सांसद ने अपनी ही बहू का पुनर्विवाह बेटी मानकर किया और उसे 100 करोड़ की सम्पत्ति दान कर दी। धन्य है ऐसे लोग जो बहू को बेटी मानते हैं।

स्वयं शोधार्थी की बहन का पुनर्विवाह हुआ है। 1992 में उसके पति की मृत्यु हो गई थी लेकिन शोधार्थी के पिता ने समाज के विरोध को दरकिनार हुए उसका पुनर्विवाह किया। अब वह पूर्णरूपेण सुखी है। शोधार्थी के पिता को समाज से बहिष्कृत करने की धमकियाँ मिलती रहीं लेकिन उन्होंने एक न सुनी और अपनी बेटी के सुखी जीवन हेतु उसका पुनर्विवाह किया। आज समाज में इस पुनर्विवाह की दलीलें देकर अन्य पुनर्विवाह भी हो रहे हैं, जो कि सुखद संकेत है।

वाल्मीकि कृत रामायण में बालिवध के पश्चात् राम ने बालि की विधवा तारा का विवाह उसके देवर सुग्रीव से करवाया था तथा उसे पटरानी घोषित कर उसके पुत्र अंगद को युवराज घोषित किया था।[12]

राम ने रावण वध के पश्चात् रावण की विधवा मन्दोदरी का विवाह उसके देवर विभीषण से करवा दिया। सम्पूर्ण लंका का राज्य विभीषण को दे दिया।

उपर्युक्त विवेचन से ये सिद्ध होता है कि प्राचीनकाल से ही पुनर्विवाह की आज्ञा थी लेकिन कालगत परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होते रहे। मध्यकाल में यह परम्परा क्षीण हो गई लेकिन अब विकास की ओर अग्रसर है।

विवाह तथा परिवार संस्था से मुक्ति

जब स्त्री बहुत ज्यादा दु:खी हो जाती है तो वह विवाह और परिवार संस्था से मुक्ति चाहती है। मार-पीट, शोषण, अत्याचार, भेद-भाव आदि कारक उसे विवाह और परिवार से दूर ले जाते हैं।

विवाह में नारी से ज्यादा पुरुष की नैतिक जिम्मेदारी बनती है क्योंकि कई बार देखा गया है कि पुरुष ही अधिकतर स्त्री को कष्ट देते हैं, जिससे उनका मन ऊब जाता है और वे स्वतंत्र होना चाहती है। नारी बचपन से ही पिता के अधिकार में रहकर पति के घर आती है लेकिन पति भी अगर उससे मार-पीट करे, यातना दे तो वह कहाँ जायेगी। दुनिया के सभी धर्म नारी को पुरुष की दासी बताते हैं। उसे दूसरे स्थान पर रखा जाता है। कई बार समाचार पत्रों में भी पढ़ने में आता है कि अमुक नारी ने अपने ही पति की हत्या कर दी या विष खिला दिया। ऐसा काम तब ही किया जाता है जब नारी के जीवन में बहुत कड़वापन आ जाये। अगर वर्तमान पति अपनी पत्नी को प्रेम नहीं देगा तो वह अपनी शारीरिक और भावनात्मक खुशी के लिए पर-पुरुष की ओर आकर्षित होगी तो उसे व्यभिचारिणी और कुलटा कहा जायेगा।

विवाह और परिवार संस्था से मुक्ति के चिंतन के समर्थन में भक्तिकाल की प्रसिद्ध कृष्ण भक्त मीरांबाई का नाम लिया जा सकता है। मीरां ने लौकिक सुहाग अधिक दिनों नहीं देखा था। विवाह के लगभग 10 वर्ष बाद संवत् 1583 में राणा सांगा के जीवनकाल में ही उसके पति भोजराज की मृत्यु हो गई थी। इससे मीरां के जीवन में एक नया मोड़ आ गया। मीरां की लौकिक रति जिसे पति के असामयिक निधन के कारण विकसित एवं पल्लवित होने का अवसर नहीं मिला था। अब भक्ति के प्रबल जन्मजात संस्कारों से उदात्तीकृत होकर कृष्ण प्रेम में डूब गई। मीरां का ऐहिक सौभाग्य सिंदूर लुट गया परन्तु गिरधर के अखण्ड सौभाग्य का रंग अब सदा के लिए उस पर छा गया। इसके पश्चात्

उसके राजपरिवार की भक्ति में टोका-टाकी की वजह से परिवार से ही पृथक् होने की ठान ली। देखिए मीरा का पद—

राणाजी! थे क्यां नै राखो म्हासूं बैर (टेक)
थे तो राणाजी म्हाने इसडा लागो ज्यू विरछन में कैर।
महल अटारी हम सब त्यागा, भगवी चादर पहर।
काजल टीको हम सब त्यागा, त्यागो थांको सहर।
थारै रूस्या राणा! कुछ नहि बिगड़ै अब हरि कीन्हीं महर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर। इमरत कर दियो जहर।।[13]

इस पद से सिद्ध होता है कि मीरां को उसके देवर ने जहर देने की चेष्टा की थी पर कृष्ण कृपा से वह बच गई और फिर अपने परिवार से दूर जाकर कृष्ण भक्ति में रत हो गई।

वर्तमान में 'लिव इन रिलेशनशिप' भी अपनी जगह बना रही है। जब स्त्री और पुरुष लम्बे समय तक बिना विवाह के साथ-साथ रहते हैं और उन्मुक्त यौन सम्बन्ध होता है वह 'लिव इन रिलेशनशिप' की श्रेणी में आता है। आज महिला भागदौड़ भरी जिन्दगी से गुजर रही है। नौकरी करे कि बच्चे पाले? इसलिए बिना विवाह के भी बहुत सारी स्त्रियाँ अपने पुरुष साथी से यौन सम्बन्ध बनाकर साथ ही रहती है तथा विवाह और परिवार संस्था से मुक्ति की कामना रखती है। जब मर्जी चाहे यह सम्बन्ध टूट सकता है।

यौन प्रतीक के रूप में अस्वीकृति और स्त्री सत्ता की अधिमान्यता

नारी को भोग की वस्तु कहने पर नारी को आपत्ति है और होनी चाहिए। वह स्वयं में एक मानव सत्ता है और उसकी कद्र होनी चाहिए। कोई भी सुंदर लड़की दिखी तो उसके लिए हलके स्तर के पुरुषों के मन में तुरन्त एक ही बात आती है कि 'वाह क्या चीज है, क्या बढ़िया माल है, क्या ये पटाया नहीं जा सकता?' स्त्री के लिए बहुत सारे ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है कि उन्हें लिखना कलम की बेइज्जती करना होगा। सोचने की बात ये है कि जब ऐसे शब्द लिखने में शर्म महसूस होती है तो निम्न कोटि के पुरुष उसे बोल कैसे लेते हैं।

फिल्म 'मोहरा' आई थी। उसमें अक्षय कुमार ने अभिनय किया। उसमें एक गीत था 'तू चीज़ बड़ी है मस्त-मस्त, तू चीज़ बड़ी है मस्त'। जो वस्तु गोपनीय है, महिला के

शरीर का हिस्सा है, जिससे वह माँ कहलाने के योग्य बनती है। वे स्तन हैं, उनसे ही वह अपने बच्चे को दुग्धपान कराती है जबकि फिल्में (खलनायक) उससे पूछती है 'चोली के पीछे क्या है?' कैसा बदतर सवाल है? लाखों करोड़ों रुपये खर्च करके फिल्म का निर्माण क्या इसलिए होता है कि स्त्री से पूछा जाए कि चोली के पीछे क्या है? ऐसे गीत परिवार के साथ माँ–बहन के साथ बैठकर देखने में शर्म महसूस होती है। बहुत बुरा लगता है। सम्पूर्ण स्त्री जाति नहीं चाहती कि उसे चीज़ या माल कहा जाए। हम वेश्याओं की बात नहीं कर रहे, वे तो आजीविका हेतु अपने शरीर को बेचती है **लेकिन लाखों–करोड़ों में खेलने वाली अभिनेत्रियाँ क्यों नारी जाति को यौन प्रतीक बनाने पर तुली हुई है।**

वर्तमान में पाश्चात्य नग्न फिल्मों (Porn) की अभिनेत्री सन्नी लिओनी का पदार्पण बम्बई फिल्म जगत में हो चुका है। वह तो स्वयं नग्न फिल्मों से आई है तो उसने चारों ओर नग्नता का हाहाकार मचाना शुरू कर दिया है। फिल्म इण्डस्ट्री के कुछ काम–पिपासु फिल्म निर्माता उसे फिल्मों के लिए साइन कर रहे हैं। कहाँ जायेगा हमारा समाज? कहाँ रहेगी स्त्री सत्ता की अधिमान्यता? हमारे बच्चे टी.वी. के सामने सनी लिओनी के गीतों पर नृत्य करते हैं। मेरी 8 वर्ष की भोली बच्ची मुझसे पूछती है—'पापा ये दीदी कौन है। मैं भी इसी तरह की बनूंगी'। तभी दिल सिहर उठता है उसकी बातों को सुनकर। बड़ी उम्र की महिलाएँ तो टी.वी. बन्द कर देती है।

अगर कोई महिला सुन्दर है तो क्या उसका मतलब सेक्सी है? सेक्स तो सीधा–सीधा गोपनीय विषय है फिर महिला को खुले आम सेक्सी क्यूँ कहा जाये। स्त्री सृष्टि की अद्वितीय कृति है। वह सौन्दर्य का पर्याय है। हमारे मत से दुनिया में कोई असुन्दर स्त्री नहीं है। अंतर मात्र इतना है कि कोई कम सुन्दर, कोई अधिक सुन्दर। कहा जाता है कि सुन्दरता तो देखने वालों की आँखों में होती है। आँखों से ही वह किसी को सुन्दर या असुन्दर मानता है। भारतीय समाज में स्त्री के चित्र सदैव सुरूप दिखाए गए हैं। उसे जब–जब नग्न करने की कोशिश हुई है समाज ने अपना तीव्र विरोध जताया है। महाभारत के मूल में द्रौपदी का चीरहरण है। महान चित्रकार एम.एफ. हुसैन स्त्री को नग्न दिखाने की विकृत मानसिकता के चलते ही देश छोड़ने पर मजबूर हुए। हुसैन अपनी गलती स्वीकारने को तैयार नहीं थे और देश उन्हें झेलने को तैयार नहीं था। भारत में स्त्री को सौन्दर्य की प्रतिमा माना गया है। उसे देवी कहा गया है, रूपमति कहा गया है, मृगनयनी कहा गया है, उसकी

दैहिक नाजुकता और कोमलता का निरूपण फूलों से तुलना कर किया गया है। उसे पद्मिनी भी कहा गया है। भारतीय मनीषियों ने उसे दिव्य प्रकाश के समकक्ष रखकर उज्ज्वला कहा, अच्छी देह की स्वामिनी को सुघड़ा कहा गया।

ये सब उत्तम कोटि के शब्द है। कोई शब्द ओछा नहीं जो स्त्री के सम्मान में गुस्ताखी की जुर्रत कर सके। कोई भी शब्द उसके शरीर को नहीं उघाड़ता। एक भी शब्द स्त्री को यौन प्रतीक नहीं बनाता। भारत में सुन्दरता के संदर्भ कभी भी नारी को सेक्सी कहकर संबोधित नहीं किया गया। सेक्सी शब्द का यौनिक अभिव्यक्ति के लिए जरूर उपयोग किया जाता है। अंग्रेजी शब्दकोष में में भी सेक्सी का अर्थ काम भावना से सम्बन्धित लिखा है।[14] वहीं सुन्दरता के लिए तमाम शब्द हैं—लवली, ब्यूटीफुल, प्रेटी, स्वीट, डिवाइन, फेयरी, ग्रेसफुल, फाइन इत्यादि। अतः सुन्दरता का पर्याय सेक्सी कदापि नहीं हो सकता।

स्त्री को भोग वस्तु मानने वालों को स्त्री को वासना की दृष्टि से देखने वालों को और उससे अशोभनीय भाषा में बात करने वालों को समाज लंपट कहता है। भारत में सेक्सी शब्द सुन्दरता का पर्याय नहीं लेकिन राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्षा ममता शर्मा ने लड़कियों को सलाह दी कि वे लड़कों द्वारा बोले जाने वाले सेक्सी शब्द को नकारात्मक ढंग से नहीं लें और बुरा न मानें। इसका मतलब सुन्दरता होता है। उन्होंने यह बात महिला सशक्तिकरण और महिलाओं के सुनहरे भविष्य को लेकर आयोजित एक सेमिनार में कही। सुन्दरता की इस परिभाषा पर काफी हंगामा बरपा। पुरुषवादी और महिलावादी दोनों ही संगठनों ने महिला आयोग की अध्यक्षा का तीव्र विरोध जताया। इस बयान को स्त्रियों से छेड़छाड़ को बढ़ावा देने वाला माना गया। आंशिक तौर पर यह सच भी है। मनचले, सड़कछाप मजनूं और आवारगी करते लड़के 'हाय सेक्सी' कहकर लड़कियों को सरे राह छेड़ेंगे। लड़की आँख तरेरेगी तो लड़के ही कहेंगे कि भारत की महिला आयोग की अध्यक्षा ने ये शब्द तुम्हें दिया है।

सेक्सी यौनांग से जुड़ा शब्द है। इसलिए सेक्सी यौन अभिव्यक्ति ही है। यौनांग से जुड़े शब्दों से भारत में कभी भी स्त्री को सम्मान नहीं दिया गया बल्कि उसे अपमानित जरूर किया गया है।

यही कारण है कि भारत में आम स्त्री आज भी सार्वजनिक स्थल पर सेक्सी संबोधन को अपमान और गाली या छेड़छाड़ के रूप में ही लेती है।

क्या हम अपनी बहन या बेटी से कह सकते हैं कि तू बहुत सेक्सी है। ये प्रश्न हम और आप सबके लिए है। मुझे इसका उत्तर पता है। आप कहेंगे बिल्कुल नहीं। भारत अभी उतना विकृत नहीं हुआ है। बाजारवाद के तमाम षडयंत्रों के बाद भी भारत में आज भी स्त्री महज सेक्स सिंबल नहीं है। वह अपने आप में एक स्पष्ट सत्ता है। वह अपने बारे में सोच सकती है। उसके पास निर्णय क्षमता है। स्त्री त्याग का प्रतीक है, शक्ति का पुँज है। इस प्रकार हमें स्त्री सत्ता को अधिमान्य करना चाहिए।

सन्दर्भ

1. बिन्दु त्रिपाठी — नारी की निर्णय क्षमता पुरुष से कम नहीं। Google : Internet Web Duniya
2. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14,15 व 16.
3. तुलसीदास — रामचरित मानस, बालकाण्ड, दोहा 210 छन्द 209
4. तुलसीदास — रामचरित मानस, बालकाण्ड, चौपाई 1, 2, पृष्ठ 209
5. तुलसीदास — रामचरित मानस, बालकाण्ड, चौपाई 3 पृष्ठ 209
6. तुलसीदास — रामचरित मानस, बालकाण्ड, चौपाई 4 पृष्ठ 209
7. मलिक मुहम्मद जायसी — पदमावत, रत्नसेन पदमावती विवाह खण्ड, सं. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 119
8. डॉ. सुरेश चन्द्र राजौरा — समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएँ, पृ. 286-287
9. तुलसीदास — रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, चौपाई 3, पृष्ठ 810
10. तुलसीदास — रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, चौपाई 4, पृष्ठ 810
11. वशिष्ठ धर्मसूत्र, पृ. 16-17
12. वाल्मीकि रामायण — किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग 22 (तारा का विवाह)
13. डॉ. शंभूसिंह मनोहर — मीरां पदावली, पद 20, पृ. 119
14. डॉ. हरदेव बाहरी — हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोष, पृ. 678

❑

तृतीय अध्याय

हिन्दी भक्तिकाव्य में चित्रित नारी का स्वरूप

सामाजिक स्तर पर दोयम दर्जा

भक्तिकाल में सामान्य नारी को दोयम दर्ज़ा था। नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता था। मलिक मुहम्मद जायसी के पद्‌मावत की बात करे तो हमें पता चलता है कि राजा रतनसेन पद्‌मावती को पाने के लिए अपनी ब्याहता पत्नीका त्याग कर देता है और पद्‌मावती के रूप गुण सुनकर उसे पाने के लिए चल देता है।

कहा जाता है कि नागमति का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है लेकिन इस निधि के पीछे स्त्री के प्रति बेपरहवाह होना है। जिस प्रकार राजा रतनसेन हुआ था। देखिए नागमती का विलाप—

नागमती चितउर पथ होरा। पिउ सो गए पुनि कीन्ह न फेरा।।
नागर काहु नारी बस परा। तेई मोर पिउ मो सौ हरा।।

नागमति की और भी तीव्र पीड़ा देखिए—

जेहि पंखी के नियर होई कहै विरह की बात।
सोई पंखी जाई जरि, तरूवर होइ निपात।।[1]

सांस्कृतिक परिवेश के साथ भारत में इस्लाम के आक्रमण ने पहले संघर्ष फिर सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए जमीन तैयार की, स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन आया। मुसलमानों के वर्चस्व का जितना असर पुरुषों की स्थिति पर दिखाई देता है, स्त्रियों की अधीनस्थ भूमिका ने उसे क्रमशः अवनति की ओर अग्रसर किया। हालाँकि भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्गयुग कहा जाता है पर इस युग में स्त्रियों के गुण भी धीरे–धीरे उसके अवगुण बनने लगे। साम्राज्ञी से वह आश्रित बन गई। चिंतन का प्रश्न है कि जब नागमती

को रानी होते हुए भी राजा रतनसेन त्याग कर नई स्त्री को पाने के लिए चल देता है तो सामान्य जनता की तो बात ही क्या। सामान्य नारी पद दलित थी। जो स्त्रियाँ वैदिक युग में धर्म और समाज की प्राण थी उन्हें श्रुति का पाठ करने के अयोग्य घोषित किया गया। यह युग तो जैसे नारी की गिरावट का युग था। उसे मानसिक तथा आत्मिक विकास के द्वारों पर ताले लगा दिए गए। उनकी साहित्यिक उन्नति के मार्ग पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए। स्त्री को विवाह संस्कार के अतिरिक्त और सभी संस्कारों से वंचित कर दिया। सनातन, वैदिककाल के उच्च, सुदृढ़ आदर्शों की इमारत ढह चुकी थी। फिर पुरुष ने स्त्री को अपनी भोग की वस्तु बना लिया था। वह पशु के तुल्य पराधीन हो चुकी थी। इस काल में धीरे-धीरे बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, महिलाओं की अशिक्षा—नारी समाज के लिए अभिशाप बनने लगे। स्वेच्छाचारिता एवं अमानुषिकता की पराकाष्ठा हो गई क्योंकि कबीर जैसे आत्मज्ञानी पुरुषों ने उसे मोक्ष मार्ग की मुख्य बाधा माना। सभ्य पुरुषों ने स्त्री की चर्चा करना विषयभोग का लक्षण माना और विरक्त संतों ने उसका मुखावलोकन भी निषिद्ध माना। विलासियों और कवियों ने उसे विलास की वस्तु समझा, गृहस्थों ने माता, भगिनी तथा कन्या के रूप में उसे देवता व धरोहर माना परन्तु किसी ने भी उसे तुल्य, स्वत्व और पराक्रम मानव नहीं माना।

भक्तिकालीन काव्य में मीरां को छोड़कर अन्य भक्त एवं सन्त कवियों ने नारी की सार्थकता पुरुष वर्चस्ववादी ढाँचे में ही सुरक्षित की है। हिन्दी साहित्य में नारी की अस्मिता की पहली आवाज मीरा के काव्य में सुनाई पड़ती है। मीरा के काव्य में एक ओर तो स्त्री की पराधीनता और यातना की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निषेध और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है। अन्तर्द्वन्द्व, नारी उत्पीड़न, नारी के विरुद्ध अन्याय के विरोधी स्वर, अस्तित्व बोध समता, चेतना तथा रूढ़िवादिता, विरोधी क्रांतिस्वर परिलक्षित है। पर जनसामान्य में नारी निश्चित सीमाओं, आदर्शों, रेखाओं पर इच्छा या अनिच्छा से चली है। मीरां के रूप में स्त्री की पीड़ा देखिए—

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
जहाँ बिठावे तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।।[2]

पुरुष वर्ग का ऐसा सशक्त अत्याचार की नारी के मन में एक ही बात है —'घोर समर्पण'। इसका उदाहरण है 'बेचै तो बिक जाऊँ'। भक्तिकाल में मुस्लिम साम्राज्य था। हिन्दू स्त्रियों का अपहरण, व्यापार और व्यभिचार उस समय आम था। इससे सिद्ध होता है कि उस समय नारी की सामाजिक स्तर पर दोयम स्थिति थी।

उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व का अभाव

भक्तिकालीन साहित्य में मीरांबाई, गवरी बाई, दयाबाई, सहजोबाई आदि कवयित्रियों ने अपने श्रेष्ठ काव्य से हिन्दी को भक्ति सम्पन्न किया लेकिन इस काल में नारी की स्थिति और बदतर हो गई थी। कुल के रक्त की शुद्धता नारी के सतीत्व की रक्षा और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर नारी को ऐसे सामाजिक व धार्मिक बंधनों में जकड़ दिया कि वह पुरुष की छाया मात्र होकर रह गई। उस समय उत्पादन के साधनों पर पुरुष वर्ग का ही स्वामित्व था। महिलाओं के धनाधिकार क्षीण थे। उसका स्वतंत्र अस्तित्व लुप्त हो गया। इस काल में स्त्री शिक्षा समाप्त हो गई। घर-परिवार का मुखिया पुरुष होता था। धनाधिकार संबंधी मामले उसी के हाथ में होते थे। महिलाओं को रसोई से ही फुर्सत नहीं थी। आय अर्जन करने के साधनों पर भी पुरुष का ही अधिकार था। व्यापार में भी पुरुषों की ही प्रमुखता थी। राजकार्य में भी पुरुष ही भाग लेते थे। सीता जी भी राम से कहती है कि मुझे स्वर्ण मृग चाहिए, आप ही ला दो—

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग-अंग सुमनोहर वेषा।।
सुनहु देव रघुवीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुन्दर छाला।।[3]
सत्य संघ प्रभु बधि करि ऐही। आनहु धर्म कहति बैदेही।।
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सवारन।।[4]

इससे सिद्ध होता है कि जो भी काम करते थे, पुरुष ही करते थे और ये मानते थे कि स्त्रियों का स्वभाव तो डरपोक होता है और वे किसी काम को सही ढंग से नहीं कर सकती। देखिए निम्न चौपाई—

श्रवन सुनी सठ ता करि वानी। विहसा जगत विदित अभिमानी।।
समय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुं भय मन अति कांचा।।[5]

उस समय नारी सामाजिक रूप से हेय पात्रा थी। उसकी किसी भी काम में राय नहीं ली जाती थी। पुरुष ही खेती करता, नारी भी जी तोड़ मेहनत करके उसका साथ देती। तेज धूप, शीत, वर्षा के मौसम की मार स्त्री पर ही ज्यादा पड़ती थी लेकिन फसल पकने पर पुरुष ही उसको बाजार में बेचकर धन का मालिक बन जाता था।

बेचारी स्त्री दिन-भर काम करती, हाड़तोड़ मेहनत करती, शाम को सारी कमाई पुरुष हड़प लेता था। स्त्री अपनी मजदूरी के हक को भी बड़ी मुश्किल से प्राप्त करती थी। मानव सभ्यता के इतिहास में महिला अस्मिता, उनके समान अधिकार और स्वतंत्रता का प्रश्न सदा ही उलझनपूर्ण रहा है। महिलाओं को लेकर जितनी व्यवस्थाएँ बनी उनमें उसे प्राय: दोयम दर्जे का स्थान ही दिया है। महिलाएँ दलितों से भी दलित मानी गई है। इसके लिए हमारी सामाजिक व्यवस्था और पुरुष प्रधान सोच पूर्णत: उत्तरदायी है। सामाजिक असमानता, निरक्षरता, अंधविश्वास, दहेज, जाति प्रथा, लिंगभेद आदि मुद्दों के विरुद्ध आवाज उठती रही है। परन्तु पूरी तरह से मुक्ति पाना अभी शेष है। भारतीय संविधान ने महिला व पुरुष दोनों को समकक्ष रख कर उनके विकास के लिए समान अवसरों की गारंटी दी पर इसके बावजूद महिला की स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया, क्योंकि सामाजिक रवैये में बुनियादी बदलाव नहीं हुए। समाज ने महिलाओं के प्रति अपने दायित्व के निर्वहन में कोताही बरती। दरअसल दुनिया के तमाम उत्पादन के साधनों पर उत्तराधिकार कानूनों के माध्यमों से पुरुषों का स्वामित्व है और उत्पादन के साधनों पर वर्चस्व बनाये ओर बचाए रखने के लिए पुनरोत्पादन के साधनों (यानि महिला की देह और कोख) पर भी संपूर्ण नियंत्रण है जो विवाह संस्था के माध्यम से बनाया गया है। उत्तराधिकार के लिए वैध संतान और वैध संतान के लिए विवाह का होना अनिवार्य है। विवाह संस्था से बाहर होने वाले बच्चे अवैध, नाजायज और हरामी कहे जाते हैं इसलिए पिता की संतान में कानूनी वारिस नहीं माने जाते। कानून और न्याय की नजर में वैध संतान पुरुष की और अवैध महिला की होती है। विवाह संस्था अनिवार्य है ही, क्योंकि बेटियाँ तो पराया धन है और कन्यादान के बाद दहेज लेकर ससुराल चली जायेगी। संयुक्त परिवारों में संपत्ति का स्वामित्व केवल पुरुषों को प्राप्त है। बँटवारा करने का अधिकार भी मध्यकाल से पुरुषों के ही हाथ में है। बेटा गर्भ में आते ही संपत्ति का हकदार हो जाता है, लेकिन बेटिया कन्या भ्रूण हत्या का शिकार हो जाती है। नि:सन्देह पितृसत्ता को सिरे से

दुबारा सोचना समझना पड़ेगा। संपत्ति और सत्ता में महिलाओं को बराबर का हिस्सा दिये बिना परिवार बचाना मुश्किल है। उत्पादन के साधनों पर बराबर के स्वामित्व का अधिकार होना चाहिए। बेटियाँ नहीं होंगी तो बहू कहाँ से आयेंगी, वंश कैसे चलेगा? भक्तिकाल में प्रमुख रूप से उत्पादन के साधनों का स्वामित्व राजा महाराजाओं, सामंतों, उमरावों, धनवानों के प्राधिकार में रहे। महिला कामगार, चाहे वह घास काटने वाली हो तेंदु के पत्ते जमा करने वाली हो, बीड़ियाँ, अगरबत्ती बनाने वाली हो या कपड़ा बुनने वाली हो, इन सभी क्षेत्रों में पुरुषों से अधिक मेहनती काम करने के बावजूद उन्हें कम मजदूरी मिलती है। ऐसी महिलाओं को प्रसूतिकाल की भी मजदूरी नहीं मिलती। आज भी पुरुष जमीन–जायदाद की खरीद अपने नाम से करता है। बहुत कम ऐसे उदाहरण हैं जहाँ महिलाओं को प्राथमिकता दी गई हो। आर्थिक मामलों में भी स्वयं पुरुष ही आगे रहना चाहता है। अगर स्त्री अलग से कमा रही है तो उस पर भी नजर रखी जाती है। बैंक की डायरी, ए.टी.एम. सब पुरुष वर्ग ही ज्यादा संधारित करता है। भक्तिकाल से आज तक नारी की स्थिति में बहुत कम परिवर्तन आया है। भारत के गाँवों में महिलाओं की दुर्गति ज्यादा है। अशिक्षा, नकारात्मक स्वास्थ्य, अंधविश्वास, पर्दा–प्रथा आदि के कुचक्रों में नारी जिन्दगी भर जूझती रहती है। कब वह युवा से वृद्ध हो जाती है, उसे उसका पता ही नहीं चलता है। कई महिलाएँ तो पूरी जिन्दगी भी नहीं जी पाती।

पुरुष की संपत्ति के रूप में मान्य

भारतीय समाज में नारी की समानता व स्वतंत्रता का समाप्त होना कब शुरू हुआ, इसका ठीक–ठीक समय निर्धारण करना कठिन है परन्तु वैदिक काल और ऋषि–मुनियों के आश्रमों के जमाने में नर–नारी के बीच भेद के प्रकरण लगभग नहीं ही मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सामन्तवाद और जातिवाद के उद्‌भव के साथ ही नारी को भी दास, सम्पत्ति ओर भोग्या मानने का चलन आरंभ हुआ होगा। सामंतवादी व्यवस्था और जातिवादी व्यवस्था ने, जो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जिस प्रकार समाज की बहुसंख्या शूद्र को कमाने वाले दास के रूप में बदल दिया उसी प्रकार नारी को भी एक कमजोर पुरुष सेवक जैसी दासी के रूप में बदल दिया। अनेक नीति ग्रन्थों में यह सिद्धान्त निरूपित किए गए कि पति परमेश्वर के समान है और भले ही वह कितना ही पतित और अवगुणी क्यों न हो वह पत्नी के लिए पूज्य है।

कुछ लोगों ने औरत को उस लता के समान निरूपित कर दिया जो पति रूपी पेड़ के सहारे ही टिक सकती है वरना गिर जायेगी। इन सब कथानकों और शिक्षणों ने नारी मन में हीनता की ग्रन्थि पैदा कर दी और वह स्वत: अपने आपको कमजोर और पुरुष के अधीन समझने लगी। एक समान होने का उसका एहसास समाप्त हो गया और फिर स्वत: महिलाओं ने महिलाओं को प्रताड़ित करने की अपनी परम्परा विकसित कर दी। जो सास बहू को कष्ट न दे वह सास कैसी? औरत को दण्ड शक्ति से ठीक रखा जाना चाहिए। उसके चेहरे को न केवल घूँघट से ढकना चाहिए बल्कि मर्यादाओं की चादर इतनी लम्बी है कि उसके पैर भी नजर ना आयें।

वह परदे की ओट से दुनिया देख सकती है। यही उसकी मर्यादा व नैतिकता है। इन्हीं भ्रांति भरी परम्पराओं के विकास ने यौन शुचिता के अवैज्ञानिक तर्क को प्रतिष्ठित किया। इसके चलते कई प्रकार की कुरीतियाँ और परम्पराएँ विकसित हुई। यहाँ तक कि महिलाओं की योनी पर लकड़ी का बाँधना, कुछ प्रकरणों में पुरुषों द्वारा बाहर जाने पर घर को बाहर से बंद करके जाना, फिर विधवाओं को सती होने के लिए प्रेरित करना अन्यथा पति की मृत्यु पहले होने पर कलंकिनी कहकर बनारस और मथुरा के मंदिरों में भिखारी जीवन जीने को बाध्य करना जैसी अमानुषिक परम्पराएँ विकसित हुई।

मुगल हमलावरों के इस दौर में यौन शुचिता को बचाने के नाम पर नारी के कैदखाने के बंधन और बढ़े। योद्धा पुरुषों को इस संतोष के लिए कि युद्ध में उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी की यौन शुचिता खण्डित ना हो और वह पर पुरुष की भोग्य सम्पत्ति न बने इसलिए सैनिक पति के युद्ध में जाने से पूर्व ही सामूहिक आत्मदाह (जौहर) और कभी-कभी तलवार से अपना सिर काट कर पूर्व मृत्यु जैसी परम्पराएँ विकसित हुई——

'चूंडावत माँगी सैणाणी सर काट दे दियो क्षत्राणी।'

नारी की सफलता पति के प्रति अंधश्रद्धा और अंधानुगमन, नारी की उम्र पति की मृत्यु के पूर्व तक ही जिन्दा रहना, यहाँ तक कि मृत्यु की संभावना के पूर्व ही औरत की मृत्यु——नैतिकता और चरित्र के नाम पर औरत की यौन शील बंदी ही कसौटी बना दी गई। मध्यकाल की महिलाओं के बल में और संकल्प में कोई कमी नहीं थी। बल्कि परम्परा के बन्धनों से मानसिक मुक्ति की कमी थी। अगर सभी स्त्रियाँ युद्ध में सैनिक बन

कर लड़ती तो एक-दूसरे के लिए और प्रेरणास्पद होता और सैन्य शक्ति दोगुनी हो जाती। एक कहावत प्रचलित है 'जर, जोरू जोर की जोर घटै पर और की' अर्थात् जर (जमीन) और जोरू (पत्नी) को बल के प्रभाव से ही दबा कर रखा जा सकता है नहीं तो उसे दूसरा छीन लेगा। इससे स्पष्ट होता है कि अपने ताकत के प्रभाव से स्त्री को वश में रखना भक्तिकाल में स्वभाविक बात थी।

भक्तिकाल में पुरुष जब स्त्री को छोड़कर लम्बे समय के लिए विदेश चला जाता है तो विरहिणी स्त्री की दशा बड़ी खराब हो जाती है। देखिए—

इस तन का दीवा करू बाती मेल्यू जीव
लोही सीचों तेल ज्यूँ कब मुख देखूँ पीव।[6]

"विरहिणी स्त्री कहती है कि मैं इस तन का दीपक बनाकर अपने जीव की बाती बनाकर जलाऊँगी उसमें तेल के स्थान पर खून भरूंगी हा देव मैं अपने प्रिय का कब मुख देखूँगी।"

चिन्तन यह है कि एक ओर तो भक्तिकाल में पुरुष को अपनी स्त्री की सुध लेने की फुर्सत नहीं है, दूसरी ओर विरहिणी पत्नी उसकी याद में खून के आँसू रो रही है। और भी देखिए—

विरहिन उठै भी पडै, दरसन कारनि काम।
मूवां पीछे देहुगे, सो दरसन किहि काम।।[7]

पति की याद में विरहिणी स्त्री से उठा नहीं जाता है लेकिन पति के दरसन के लिए वह उठ सकती है लेकिन जब पतिदेव मृत्यु पश्चात् आयेंगे, वे दर्शन किस काम के होंगे।

उपर्युक्त विवेचन से यह निश्चित होता है कि नारी की स्थिति भक्तिकाल (मध्यकाल) में पुरुष की संपत्ति के रूप में मान्य थी। उसे वह जैसे चाहे उपभोग कर सकता था।

उपभोग्या के रूप में स्वीकृत

भक्तिकाल मेंजहां नारी को एक ओर तो देवी के रूप में कहा गया तो दूसरी ओर वह मात्र उपभोग की एक वस्तु थी। नर-नारी संबंधों के सबसे अधिक संवेदनशील पहलू

यौनिकता (Sexuality) है, जिसे रति क्रीड़ा के रूप में साहित्य का शृंगार रस भी कहा जाता है। धर्मदर्शन इसे प्रजनन की दृष्टि से देखता है और सभी धर्म इसकी स्वच्छन्दता पर अनुशासन इसलिए लगाना चाहते हैं कि पुरुष नारी की विवशता का लाभ ना उठाए और प्रजनन में अपनी जिम्मेदारी को स्वीकार करे इतिहास में पुरुष महिलाओं को जीतने के लिए युद्ध करता रहा है। वह प्रारम्भ से ही उपभोग्या के रूप में स्वीकृत है। भारत में मुगलों के आक्रमण के पश्चात् उनको समाज में बहुत पीड़ा सहनी पड़ी। खुली हवा में साँस लेना उनके लिए कठिन हो गया। पैरों की जूती बना कर परदों में कैद कर दिया गया। उन्हें भेड़-बकरियों की तरह ठूँस-ठूँस कर राजाओं के हरमों (रनिवासों) में रखा जाता था। व्यापारियों की दुकानों में उनका सौदा होता था। अमीर लोग उन्हें शरीर तृप्ति और भोग्या से ज्यादा कुछ नहीं समझते थे।

जब नारी भोग की वस्तु के रूप में पहचानी गई तो कन्या जन्म पर भी आक्षेप लगने लगे। सदैव लड़कियाँ पैदा करने वाली माँ को कुछ सम्मान पुत्र प्राप्ति पर मिलता था परन्तु इस्लाम के भारत में आने के बाद सुरक्षा, विवाह, दहेज आदि प्रश्नों ने कन्या जन्म को सामाजिक अप्रतिष्ठा का विषय बना दिया।[8]

भारतीय विवाहों में तो बारात सेना का प्रतीक है, बारात की चढ़ाई, तोरण मारना, कन्या पक्ष का समर्पण, दूल्हे की घोड़ी, तलवार सब इस बात के प्रतीक हैं कि नारी को जीत कर अपने घर तक ले जाना एक सेक्स सुख की प्राप्ति है, जो सहज है।

पहले यही होता था। कोई कन्या सुन्दर दिखी तो राजा सैनिकों के साथ जाकर उसे उठा लाता था और अपनी भोग्या बना लेता था। आज की बारात में दोनों पक्ष सहमत होते है, बस यही फर्क होता है।

तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका के एक पद में स्त्री की प्रसव पीड़ा और पीड़ा के पश्चात् पति की भोग्या के रूप में पत्नी को बताया है। देखिये—

ज्यो युवति अनुभवति प्रसव अति दारून दुःख उपजै।
ह्वै अनुकूल विसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै।।[9]

जैसे युवती को संतान जनने के समय अत्यन्त कष्ट का अनुभव होता है पर वह मूर्खा सारी वेदना को भूलकर फिर (बार-बार) प्रसन्न चित्त से उसी कष्ट देने वाले पति का सेवन करती है।

और यह भी देखें—

जोबन जुवती संग रंग रात्यो, तब तू महा मोद मद मात्यो।
ताते तजी धरम मरजादा, बिसरे तब सब प्रथम विषादा।।[10]

"जवानी चढ़ते ही हे पुरुष तू स्त्री की आसक्ति में फँस गया। भारी अज्ञान और मद में मतवाला हो गया, उस नशे में तूने धर्म और मर्यादा को लात मार दी। पहले जितने कष्ट भोगे उन सबको भुला दिया।"

उपर्युक्त दोनों पदों को देखने पर यह सिद्ध होता है कि मध्यकाल (भक्तिकाल) का पुरुष वर्ग हर समय नारी लिप्सा में ही डूबे रहना चाहता था। उस समय का वातावरण ही ऐसा था क्योंकि तुलसीदास जी ने अपने युग से प्रेरित होकर सत्य एवं तथ्य का वर्णन किया है।

उस समय पर-स्त्री पर भी ताकझांक करने की बुरी प्रवृत्ति थी। उसे येन-केन प्रकारेण प्राप्त करने की इच्छा पुरुष वर्ग के मन में रहती थी। निम्न पद देखिये—

यो मन कबहु तुमहि नहि लाग्यो।
ज्यों छल छांडि सुभाव निरंतर रहत विषय अनुराग्यो।
ज्यों चितई पर नारी, सुने पातक प्रपंच घर-घर के।
त्यो न साधु सुरसरि, तरंग निर्मल गुनगन रघुवर के।।
चंदन, चन्द्रवदनि भूषनपट, ज्यो चह पावर परस्यो।
हयो रघुपति पद पदुम, परस को तनु पातकी न तरस्यो।।[11]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल के अन्तर्साक्ष्यों के आधार पर नारी पुरुष की उपभोग्या के रूप में स्वीकृत थी। हमें कई स्थानों पर स्त्री की दासता, शोषण आदि के चित्र मिलते हैं।

तुलसीदास जी की 'विनय पत्रिका' में कहा गया है कि जब तक स्त्री सुन्दर है, युवा है तब तक उसे भोगना चाहिए उसके बाद उसका त्याग कर राम के भजन में लग जाना चाहिए।

सहज सनेही राम सौ कियो न सहज सनेह।
ताते भव भाजन भयो, सुनु अजहुं सिखावन एह।।
ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए, अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यों सेवतहु न आपने, ये मातु पिता सुत नारि।
दै दै सुमन तिल बासिकै अरू खरि परि हरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक तनु सेत।।[12]

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल में नारी की स्थिति एक उपभोग्या के रूप में थी जिसका उदाहरण भी तुलसीदास ने विनय पत्रिका में दिया है। तुलसीदास ने भी नारी को भक्ति में बाधक माना है और समय रहते उसे छोड़ देने का उपदेश दिया है।

मानवीय सत्ता के रूप में अस्वीकार

नारी को भक्तिकाल में मानवीय सत्ता के रूप में अस्वीकार किया गया है। उस समय नारी की सुकुमारता को लिप्सा के लिए उपयोग किया गया। प्रजनन विशेषता के कारण, शारीरिक बलिष्ठता एवं उपार्जन क्षमता में न्यूनता के कारण इसे उसकी दुर्बलता समझा गया और दुर्बलों के साथ तो बलवानों द्वारा मत्स्य न्याय अपनाया जाता है अर्थात् समुद्र में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। वैसा ही व्यवहार नारी के साथ अपनाया गया। भारत में मध्यकाल से ही प्रतिबन्धित और पददलित स्थिति में उसे दूसरे दर्जे का नागरिक माना। मानव मात्र के लिए जिन मौलिक अधिकारों की आवश्यकता है उनसे नारी प्राय: वंचित ही है। नर के लिए जो परम्पराएँ हैं वे नारी के लिए कहाँ है? उसे स्वेच्छा से नहीं विवशता से अपनी जिन्दगी जीनी पड़ती है। सहयोग से एक–दूसरे के लिए बड़े–से बड़ा त्याग बलिदान करें, एक–दूसरे के लिए समर्पित रहें। यह सराहनीय है किन्तु दूसरे बहाने बना कर मनुष्य मनुष्य का अपने स्वार्थ साधन के लिए उपयोग करे यह मानवी अधिकार का अपहरण है। नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं में क्या नर क्या नारी सभी का वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करे, यह तो अनुचित है। भारतीय नारी को इसी अनीति की

शिकायत है। प्रगति के अन्य क्षेत्रों में नारी को सुख–सुविधा से आगे बढ़ने का तरीका नहीं मिला। वह नर के लिए चाबी वाली गुड़िया का काम करती रही, उसी से मनोरंजन भी होता रहा। कई तरीकों से उसे मानवीय सत्ता से च्युत करने का प्रयास चलता रहा। उसका व्यक्तित्व अपने लिए पिछड़ेपन से ही ग्रसित बना रहा और उसके कारण उन्हें समाज का कोई उपयुक्त लाभ नहीं मिल सका।

विद्वानों के मतानुसार प्राचीन कालीन समाज मातृसत्तात्मक होता था। स्त्री–पुरुष छोटे–छोटे सामाजिक समूहों या कबीलों में रहते थे। तत्कालीन समाज में विवाह पद्धति नहीं थी, मानव होते हुए भी पाशविक सोच हावी थी। यौन संबंधों में रिश्तों की मर्यादा नहीं थी। कामतृप्ति के कोई सामाजिक नियम नहीं थे। धीरे–धीरे सामाजिक नियम बनने लगे। औलाद को माँ के नाम से जाना जाने लगा। उस समय पुरुष की अपेक्षा नारी को अधिक महत्त्व मिलता था।

धीरे–धीरे समय बदला, युग बदले, मध्यकाल (भक्तिकाल) तक आते–आते नारी अर्श से फर्श पर आ गई। सामाजिक सत्ता पर नारी के अधिकारों को छीन उसे दीन–हीन व क्षीण बना पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया। नारी पर पाशविक अत्याचार होने लगे तो नारी ने इसका विरोध छोड़ उलटे पुरुष की अधीनता स्वीकार कर ली। नारी ने इसे अपनी नियति मान लिया। अपनी उम्र के बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था में वह अधीन रहकर जीवन जीने को विवश हो गई।

सामाजिक विश्लेषकों ने नारी सत्ता से पुरुष सत्ता के हस्तांतरण व नारी दुर्दशा के लिए नारी की भावुकता, आपसी द्वेष तथा पुरुष वर्ग के आक्रामक व्यवहार को जिम्मेदार ठहराया है। उसी प्रकार नारी दूसरी नारी (सास, बहू, भाभी, ननद) से द्वेष की भावना रखते हुए, एक–दूसरे को छोटा प्रदर्शित करने के लिए लड़ती रही, पुरुष वर्ग ने इसका भरपूर फायदा उठाया। नारी का महिमा मण्डन कर भावुक नारी को अपने वश में कर धीरे–धीरे सामाजिक अधिकारों पर काबिज हो गया। हालाँकि नारी आवश्यकता पड़ने पर पुरुष वर्ग के लिए संकटमोचक का कार्य भी करती रही लेकिन पुरुष वर्ग लगातार नारी पर सामाजिक बेड़ियाँ डालता रहा।

संत संप्रदाय में संतों ने सामाजिक व्यवस्था का ही वास्तविक चेहरा प्रस्तुत किया। नारी को तपस्या का अवरोध एवं सत्पथ से च्युत करने वाला आकर्षण, संत काव्य में कहा गया। उस समय अगर स्त्री किसी से साधारणतया हँस-बोल लेती थी तो लांछित हो जाती थी। देखिये—

कबीर प्रीतडी तौ तुझ सौ, बहु गुणियाले कंत।
जो हंसि बोलो और सौ, तो नील रंगाऊ दंत।।[13]

(एक नारी की शोषित आवाज)—हे प्रियतम मेरा प्रेम तो आपसे है, जो मैं किसी अन्य से हंसू बोलू अर्थात् प्रेम करूँ तो स्वयं को कलंकित करूँ (मानूँगी)।

तुलसीदास जी ने भी विनय पत्रिका में नारी को स्वार्थी एवं मतलबी बता कर उसका उपहास किया है और स्त्री सत्ता से च्युत किया है।

मन पछितैहे अवसर बीते।
सुत बनिता जानि स्वास्थ रत न करू नेह सबही से।
अव नाथहि अनुराग, जागु जड त्याग दुरासा जी ते।
बुझै ना काम अगिनी तुलसी कहु विषय भोग बहुधी ते।।[14]

इससे यह सिद्ध होता है कि तुलसीदास जी पत्नी को ईश्वर प्राप्ति में बाधक मानते हैं और उसकी मानवीय सत्ता को ही अस्वीकार करते हैं।

जैविक इकाई के रूप में स्वत्वहीनता

मध्यकाल (भक्तिकाल) में नारी की स्थिति जिस तरह तार के बिना वीणा, धुरी के बिना रथ और आत्मा के बिना शरीर था। भक्तिकाल में देश में मुस्लिम शासकों के आतंक से सामान्य जनता पिस रही थी एवं बेहद गरीबी और आर्थिक विषमता में जी रही थी। इन सब बातों का दुष्प्रभाव स्त्री की स्थिति पर पड़ना स्वाभाविक था। उस समय विषम एवं अन्यायपूर्ण स्थिति थी। नारी सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में पिछड़ती जा रही थी। भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम पृष्ठों में सशक्त नारी का स्वरूप क्षीण होते-होते मध्यकाल (भक्तिकाल) में लुप्त होता चला गया। नारी स्थिति बद से बदतर और दया से दयनीयता में ढल रही थी। सती-प्रथा अपने भयंकर रूप में थी। स्त्रियाँ अपने पति की मृत्यु के पश्चात् अनिच्छा या स्वेच्छा? से जल रही थी। स्त्री देह का जीवित जलना इस बात का सबूत है

कि उसकी जिन्दगी मात्र बेजान व मूल्यहीन संपत्ति है और कुछ भी नहीं। सती प्रकरण की वीभत्सता विवश नारी का इतिहास कहने के लिए काफी है।

उस समय नारी की जैविक इकाई के रूप में स्वत्वहीनता थी। स्त्री खुद के शरीर को अपना नहीं मान सकती थी क्योंकि उसका शरीर तो पुरुष वर्ग की संपत्ति था। वह उसे चाहे जैसे भोग सकता और भोग करने के बाद नष्ट कर सकता था। उस समय नारी की स्थिति 'उपयोग के पश्चात् नष्ट' (Use and Throw) की थी। उसे जानवरों की तरह काम लिया जाता। गर्भावस्था में भी सही पोषण नहीं मिलता था। हिन्दू और मुस्लिम समाजों में पर्दा–प्रथा चरम सीमा पर थी। विलास और पारिवारिक अनुशासन में रहने को बाधित नारी अस्तित्वहीन रही। शिक्षा व्यवस्था की दृष्टि से नारी के तीन स्तर रहे। ग्रामीण नारी गृहस्थी शिक्षा तक सीमित रही, उच्च वर्गीय स्त्री विविध कार्यों में निपुण रही तथा मध्यम श्रेणी की स्त्री धार्मिक शिक्षालयों में शिक्षा प्राप्त करती रही। रानी पद्मावती और रूपमती इसके उत्कृष्ट उदाहरण है। नारी शिक्षा का स्वरूप परिवर्तन वास्तव में मुगलों की देन है।

मध्यकाल में सतीत्व का थोथा आदर्श सूफी प्रेमाख्यानों में प्रतिबिम्बित हुआ है। राजनीति और प्रशासन के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोणों से मध्यकाल का आरंभ क्रांतिकारी माना जा सकता है।[15] क्योंकि पहली बार सत्ता राजनीतिक रूप से मुसलमानों के हाथ में आई थी। ये अपने साथ एक विशिष्ट सभ्यता तथा धर्मप्रचार की भावना के साथ भारत में आये थे। मुस्लिम अत्याचारों से त्रस्त हिन्दू जनता धीरे–धीरे इस्लाम की ओर उन्मुख हो रही थी। दो परस्पर विरोधी सभ्यता एवं संस्कृतियों का आपसी समन्वय एवं मिलन शुरू हुआ। भविष्य में इसके प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे और इसका श्रेय स्त्रियों को ही जाता है। प्रारम्भ में आक्रमणकारी मुसलमान अपने साथ स्त्रियाँ नहीं लाए थे। अत: उन्होंने भारतीय नारियों के साथ सम्बन्ध स्थापित किए। मुसलमानों से निकटता बढ़ने पर हिन्दू स्त्रियों का शील खतरे में पड़ गया और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए ही अपनी स्वतंत्रता खो देना पड़ा जिसके कारण बाल–विवाह का प्रचलन हो गया। कन्याओं का विवाह सात से बारह वर्ष की आयु में कर दिए जाते थे। रजस्वला के बाद विवाह करने को अच्छा नहीं समझा जाता था। इस काल में परदा प्रथा का प्रचलन हो गया था। वास्तव में उनकी व्यावहारिक स्थिति बहुत निम्न हो गई थी। जन

साधारण में एक स्त्री और एक पुरुष के विवाह की प्रथा थी किन्तु धनवान और सम्मानित लोगों में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था।[16] उन्हें अपने पति के साथ जल जाना होता था या मृत्युपर्यन्त संन्यासिनी का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। ऐसी स्थिति में सती–प्रथा सामाजिक आवश्यकता बन गई थी क्योंकि मुसलमान हिन्दू स्त्रियों को प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे और वे उनका अपहरण करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। इसी कारण अल्पायु विवाह और पर्दा–प्रथा का प्रचलन बढ़ा। स्त्रियों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगने के कारण उसका प्रभाव उनकी शिक्षा पर पड़ा। उच्च वर्ग में शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया जाने लगा जिससे सिर्फ उच्च वर्ग की स्त्रियों को ही शिक्षा की सुविधा प्राप्त थी। निम्न वर्ग इससे वंचित होने लगा। इस समय लड़की का जन्म होना अशुभ माना जाता था जिसके फलस्वरूप बाल हत्याएँ भी की जाती थी। हिन्दुओं में एक कुप्रथा देवदासी प्रथा भी थी। राजा महाराजाओं में भी बहुविवाह का प्रचलन था।[17] हिन्दू विचारधारा के अनुसार स्त्री का एक प्रमुख कार्य पुत्र पैदा करना था क्योंकि हिन्दुओं के धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हतभागी पुत्री भूली–बिसरी घड़ी में किये गए अपने पिता के पाप पुँज का शोधन नहीं कर सकती।[18] मध्यकाल (भक्तिकाल) में तो राजपूताना में कन्याओं को तरह–तरह के तरीकों से बचपन में ही मार दिया जाता था।[19] यदि स्त्री पुत्र को जन्म देती तो उसका सम्मान होता था, उसी देखभाल होती थी लेकिन पुत्री का जन्म होता तो उन्हें उपेक्षा का पात्र समझा जाता था। स्त्री के सारे स्वप्न स्वयं को पतिव्रता सिद्ध करने और पति को प्रसन्न रखने में ही केन्द्रित रहते थे। दूसरी ओर पुरुष उसे निर्बल मस्तिष्क वाली और महत्त्वपूर्ण मामलों में अविश्वसनीय समझने लगा। वह घरेलू मामलों में उसका थोड़ा–बहुत महत्त्व समझता था। वह रसोई में रोटी बनाती थी इसलिए पुरुष का भूख पेट और हवस के कारण वह कभी कभार राय ले लिया करता था। मध्ययुग (भक्तिकाल) में राजपूत नारी अत्यन्त कष्टप्रद स्थिति में जीती थी। वे जीवन के प्रत्येक चरण में मृत्यु आलिंगन को तैयार रहती थी। शैशवावस्था में दाई द्वारा अफीम देकर मार डालना, परिपक्व अवस्था में जौहर में जलना और मध्यान्तर काल में उनकी सुरक्षा युद्ध की अनिश्चितता पर निर्भर रहती थी।[20] किसी भी समय उसका अस्तित्व साल भर के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्य से अधिक नहीं था।[21] नारी की पवित्रता के विषय में हिन्दू ज्यादा जागरूक थे। यदि किसी लड़की के कौमार्य पर कोई

छींटा पड़ जाता तो वह विवाह हेतु सम्माननीय वर पाने की आशा नहीं कर सकती थी चाहे वह दोषारोपण निराधार ही क्यों ना हो। अत: प्रत्येक ईमानदार लड़की को, ऐसे प्रेमी को जो उसका पति नहीं है, समर्पण करने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन कर लेना होता था। मध्यकाल में स्त्रियों की सामाजिक दशा अत्यन्त दयनीय हो गई। सम्राटों और उनके अधिकारियों के हरम में हजारों की संख्या में स्त्रियाँ रखी जाने लगीं। उनमें हिन्दू स्त्री का होना स्वाभाविक था, जो कुछ रानियाँ तथा कुछ दासियों के रूप में रहती थी। उदाहरण के लिए सम्राट् अकबर के हरम में 5000 स्त्रियाँ रहती थीं जबकि उसके सेनापति मानसिंह कछवाह की 1500 रानियाँ तथा 4000 पुत्र थे।[22] साधारणतया न तो स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार था और न ही समाज में उनका सम्मान था, न ही उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व था। बल्कि मुगल बादशाहों, सरदारों, अमीरों तथा धनवान व्यक्तियों की बढ़ती हुई विलासिता की प्रवृत्ति ने स्त्री को केवल विलास पूर्ति का साधन बना दिया। उस समय स्त्री जैविक सत्ता को, सती-प्रथा, देवदासी प्रथा, बाल-विवाह, विधवाओं की खराब स्थिति आदि कारक चुनौती दे रहे थे। स्त्रियों का दुःख-दर्द समझने के लिए शायद किसी को वक्त नहीं था। राजा-महाराजा युद्ध करते रहते थे और सामान्य जनता पिसती रहती थी।

सती-प्रथा का वर्णन मलिक मुहम्मद जायसी विरचित पद्मावत में भी मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि उस समय स्त्री की जैविक इकाई के रूप में स्वत्वहीनता थी।

पद्मावति पुनिपहिरि पटोरी। चली साथ पिउ के होई जोरी।
सूरूज छपा रैनि होई गई। पूनो ससि सो अमावस भई।।

× × ×

नागमति पद्मावति रानी। दुऔ महासत सती बखानी।।
दुवौ सवति चढि खाट बईटी। औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी।।

× × ×

सती पिउ के नेह गई, सरग भएउ रतनार।
जो रे उवा, सो अथवा, रहा ना कोई संसार
वै सहगवन भई जब जाई। बादसाह गद छेंका आई।।
तो लगि सो अवसर होई बीता। भए अलोप राम औ सीता।।

× × ×

जौहर भंई सब इस्तिरी, पुरुष भए संग्राम
बादशाह गढ चूरा, चितऊर भा इसलाम।।[23]

सारी स्त्रियाँ पद्मावती और नागमती की तरह जल कर मर गई। पुरुष सारे संग्राम में मारे गये। बादशाह ने गढ (किले) को चूर-चूर कर दिया अर्थात् जीत लिया और चित्तौड़गढ़ में इस्लाम का शासन हो गया।[24]

उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि मध्यकाल (भक्तिकाल) में नारी की जैविक इकाई के रूप में स्वत्वहीनता थी। पति के जीवित रहने पर भी शोषण की स्थिति थी तथा पति की मृत्यु पर सती हो कर जल जाना पड़ता था।

नारी नरक के द्वार के रूप में अधिमान्य

भक्तिकालीन साहित्य में पाखण्ड विरोध के समानांतर स्त्री विरोध का स्वर भी स्पष्टत: मुखर हुआ है। ख़ासकर कबीर जैसे प्रगतिशील और भक्त कवि ने अपने दोहों में स्त्री को दो रूपों में विभाजित कर उसका चरित्रांकन किया है। ये दो रूप हैं पातिव्रत्य रूप और कामिनी रूप। कबीर ने नारी के कामिनी रूप की भरसक निंदा की है और पातिव्रत्य धर्म की मुक्त कण्ठ से भूरी-भूरी प्रशंसा की है। ऐसी स्त्रियाँ जो अपने पति की सेवा को ही परम धर्म के रूप में स्वीकार करती है, पति को हर एक विपत्ति से मुक्त करा कर स्वयं उन विपत्तियों को गले लगाती है, उन्हें ही कबीर एवं तुलसीदास जैसे भक्त कवियों ने नारी का दर्जा दिया है। ये पतिव्रता चाहे कुरूपा हो, काली हो लेकिन ये कामिनियों की तुलना में भली है। इन पर कोटि सुन्दरियों को न्यौछावर किया जा सकता है। कबीरदास जी की नजर में वे सभी स्त्रियाँ कामिनियां हैं जो अपनी जिन्दगी इच्छानुरूप जीती हैं पति के अलावा पर पुरुष को आकर्षित करती हैं या उनके प्रति प्रेमासक्त हैं। ये सभी निन्दित हैं और त्यागने योग्य हैं। ये कामिनीयां निन्दित हैं तथा केवल पुरुषों को भटकाने का काम करती हैं। इनकी संगति से पुरुष किसी भी क्षण अन्धे हो सकते हैं यानी मार्ग भटक सकते हैं। विचारणीय यह है कि स्त्री पर अच्छी या बुरी का निर्णय लेने में पुरुष ही क्यों बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। कामिनी, मायावी, विश्वमोहिनी, छलिया आदि विशेषणों से स्त्री को कलंकित और अपमानित करने का काम भी सदा से पुरुष अपनी जिम्मेदारी क्यों मानते रहे हैं? अपना मूल्यवान समय स्त्रियों को अपमानित करने में क्यों खर्च करते हैं? पुरुषवादी समाज यह

क्यों नहीं समझ पाता कि स्त्रियों ने अपने ऊपर सर्टिफिकेट देने की जिम्मेदारी पुरुषों को नहीं सौंपी लेकिन देखिए कि पुरुषों ने तो स्त्रियों पर अपनी राय देने को ही अपना जन्म सिद्ध अधिकार मान लिया है। भक्त (पुरुष) कवियों की मानें तो ये कामिनियाँ यानी स्त्रियाँ तो कामिनी गुण सम्पन्न है, वस्तुतः चरित्रहीना है। इन्हें तो स्वर्ग में भी स्थान नहीं मिल सकता क्योंकि स्वर्ग में पुरुषों का अबाध प्रवेश पहले से निर्धारित है। चाहे वे हजार कुकर्म करें उनके (पुरुषों के) पश्चात् स्वर्ग में पतिव्रता स्त्रियाँ जाती हैं। अब जो कामिनियां हैं, ये मृत्यु के उपरांत नरकवासी होती है। वैसे मृत्यु के उपरांत कामिनी स्त्रियाँ कहाँ जाती हैं ये किसी को भी नहीं पता लेकिन एक बात स्पष्ट है कि स्त्रियों के मन में नर्क की दहशत फैलाने और स्त्रियों को पति सेवा में रत कराने के लिए अनादिकाल से बड़े एवं सम्माननीय कवियों द्वारा साहित्य और जीवन में पातिव्रत्य का पाठ जरूर पढ़ाया और सिखाया जाता रहा है। लेकिन लंपट, दुश्चरित्र और चरित्रहीन पुरुषों की क्या गति होगी, उन्हें नरक में स्थान मिलेगा या स्वर्ग में, इसका जिक्र तो भक्ति साहित्य में मिलता ही नहीं। क्या बात है पुरुषों के मामलों में उदारता बरती गई और भूल गए कि जिन दोषों का कवियों ने जिक्र किया है वो पुरुष वर्ग भी भागीदार हो सकता है।

कबीरदास जी कहते हैं कि ये जो कामिनी नारियाँ हैं ये भुवन मोहिनियाँ हैं। मीठी वाणी बोलने वाली होती हैं। माया मोह के जाल में पुरुषों को शीघ्र ही फँसा लेने वाली होती हैं। कबीर ने माया का जो रूप वर्णित किया है और उसकी स्त्री से जिस तरह की तुलना की है उससे यही स्पष्ट होता है कि स्त्री पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसलिए भक्तिकाल के कवियों ने इन कामिनियों से दूर रहने का उपदेश? पुरुषों को बारम्बार दिया गया है। अब पुरुष इनके उपदेशों को मानते हैं या नहीं यह अलग बात है लेकिन ये बात तो गलत है कि पुरुष नारी के प्रति आकर्षित हो, और दोष स्त्रियों के सिर मंढा जाए। मोहमाया में पुरुष उलझा रहता है और दोष कामिनी नारी को दिया जाता है। यदि पुरुष का अपनी पत्नी से मन भर जाए और दूसरी स्त्रियों की ओर आकृष्ट हो जाए तो फँसाने वाली स्त्रियाँ कहलाती हैं। स्वर्ग नर्क का फैसला तो ईश्वर करता है लेकिन भक्तिकालीन कुछ कवियों ने नारी को उसके कार्य के अनुरूप स्वर्ग या नर्क में निवास करने का निर्णय दे दिया है।

ध्यातव्य बात यह है कि नारी केवल पुरुषों को पथभ्रष्ट करने के लिए जन्म नहीं लेती, जिन्दगी जीने के लिए लेती है। कामिनी शब्द के लिए स्त्री शरीर का संकेत है।

कामिनी से दूर रहने का अर्थ स्त्री शरीर से परहेज करना है। दिलचस्प बात यह है कि स्त्री की अस्मिता स्त्री के शरीर से ही निर्मित होती है, स्त्री का मुख, वक्षस्थल, हाथ, पैर इत्यादि शरीर का हिस्सा है। सम्मिलित रूप से ये स्त्री है। यही स्त्री अस्तित्व का निर्माण करती है।

भक्त कवियों का पातिव्रत्य पर जोर देना एक खास किस्म के अर्थ को सामने लाता है। पातिव्रत्य में संलग्न होना यानी स्त्रियों को घर में ही कैद रखने की प्रवृत्ति, घर ही स्वर्ग हो, पति देवता और पति सेवा मूल कर्म एवं धर्म है, बाकी बाहरी काम घूँघट डालकर यह मूलत: स्त्रियों को घर में बन्द करने की मानसिकता को उजागर करता है। उस समय में सार्वजनिक स्थलों पर स्त्रियों की आवाजाही पर रोक लगाने के लिए पतिव्रत धर्म कारगर हथियार रहा। ध्यातव्य बात ये है कि स्त्री जब सार्वजनिक क्षेत्र में पदार्पण करती है तो पितृ सत्ता की पुंसवादी मानसिकता को चुनौती मिलती है। गौर तलब है कि जिस भोगवादी दृष्टिकोण से तुलसीदास और कबीरदास ने स्त्रियों को समझा है वह स्त्री के मूल्यांकन का सही दृष्टिकोण नहीं है। स्त्री की बुद्धि उसका विवेक, उसकी अस्मिता को ताक पर परख कर केवल भोगवादी दृष्टिकोण का सहारा लेकर स्त्रियों का मूल्यांकन किया गया है, जो कि गलत है। वहाँ पतिव्रता रूप शोषिता का है जिसका प्रमुख कर्म एवं धर्म पति की नित्य सेवा है। विचारणीय है कि किसी भी पद या दोहे में स्त्री की स्वायत्त इच्छा की बात नहीं की गई है, कहीं भी स्त्री के स्वायत्त निर्णय को प्रधानता नहीं दी गई है। स्त्री इच्छा को प्रमुखता न देने के कारण ही पति से ही प्रेम करना, स्त्री का मूलभूत कर्त्तव्य माना गया। उसे निश्चित कर दिया गया। पति के अतिरिक्त किसी और से प्रेम या सम्पर्क करने वाली नारियों को चरित्रहीन की संज्ञा दी गई और इसी तरह की मनोदशा आज समाज में व्याप्त है।

यह स्त्रियों के लिए बहुत दु:ख की बात है कि कबीर जैसे साम्प्रदायिकता विरोधी, पाखण्ड विरोधी एवं प्रगतिशील चेतना सम्पन्न कवि ने भी नारी का मूल्यांकन, पूर्णत: पुंसवादी दृष्टिकोण से किया। स्त्री समस्याओं से परिचित एवं संवेदनशील कवि तुलसीदास ने भी स्त्री को स्वर्ग नर्क की सीमाओं से आबद्ध कर दिया। स्त्री को इन बेड़ियों से मुक्त कराने की कोशिश नहीं की। एक स्वतंत्र फैसले लेने वाली स्त्री का रूप ये दोनों ही कवि सामने नहीं रख पाये।

कबीर ग्रंथावली में सम्पूर्ण अध्याय 'कामी नर कौ अंग' के नाम से रचा गया है जिसमें महात्मा कबीरदास जी ने यह बताया है कि जो लोग कामवासना के वश में होते हैं वे मार्ग भ्रष्ट हो जाते हैं और उन्हें किसी प्रकार से मुक्तिका लाभ नहीं मिलता है। पुरुष में कामभावना का मूल कारण नारी है। नारी तीनों लोकों में विषपूर्ण नागिन के समान है जो मनुष्यों को विषयवासना का विष उगलकर डसती है, जो मनुष्य पर स्त्री में अनुरक्त रहता है और चोरी के बल पर समृद्ध होता रहता है। नारी उस मधुमक्खी के समान है जो पास जाने पर तुरन्त काट लेती है पर नारी के सुन्दर आकर्षण से विरले ही बच पाते हैं। नारी का संसर्ग (खाण्ड) 'शक्कर' के समान मधुर होता है किन्तु उसका अन्त अत्यन्त दु:खद होता है। इसको कोई नहीं सोचता है। दूसरे की स्त्री से प्रेम करने में दोष ही दोष है, इसका संसर्ग लहसुन के समान है अर्थात् जिस प्रकार लहसुन खाने से दुर्गन्ध नहीं छिप सकती उसी प्रकार परस्त्री गमन का दोष भी नहीं छिपाया जा सकता। जब तक मन में विषय वासनाएँ हैं तब तक सब नर और नारी नरक के समान है। नारी का प्रेम मनुष्य की उस बुद्धि का हरण कर लेता है। नारी का संसर्ग मनुष्य को सब प्रकार के सुखों से वंचित कर देता है। नारी और धन ये दोनों विषाक्त फल के समान है बल्कि नारी तो धन से अधिक विषाक्त है क्योंकि धन का विष तो तभी चढ़ता है जब मनुष्य उसका उपभोग करता है किन्तु नारी का विष तो देखने मात्र से ही चढ़ जाता है। न जाने कितने लोग नारी के आकर्षण में फँसकर समूल नष्ट हो गए हैं। फिर भी सांसारिक मनुष्य इस बात को नहीं समझ पाया कि सारे सांसारिक विषयों में जूठन नारी है, वह नरक का कुण्ड है, जिससे कोई विरला व्यक्ति ही बच पाता है।

कबीर कहते हैं कि नारी की वजह से कामी मनुष्य कभी भी ईश्वर का स्मरण नहीं करता है अत: यदि मनुष्य ईश्वर का सानिध्य चाहता तो उसे नारी रूपी नागिन से दूर रहना पड़ेगा। इसी संदर्भ में कबीर के कुछ दोहे प्रस्तुत है—

कांमणि काली नागणी। तीन्यूँ लोक मझारि।
राम सनेही ऊवरे। विषई खाये झारि।।[25]

नारी तीनों लोकों में सर्वत्र नागिन के समान विषपूर्ण है। इसने विषय वासना में डूबे हुए सभी जीवों को डंस लिया है। केवल प्रभु भक्त ही इसके प्रभाव से बच सके हैं।

कामणि मीनी षाणि की, जे छेडौ तौ खाई।
जै हरि चरणा राचियां, तिनके निकट ना जाई।।[26]

नारी मधुमक्खी के सदृश्य है, जो इसके पास जाओगे तो यह तुम्हें काट कर खा जायेगी, दूर रहोगे तो तुम्हारे पास भी नहीं भटक सकती। जो प्रभु भक्ति में अनुरक्त है, यह उनके पास नहीं जाती और उन्हें प्रभावित नहीं कर पाती

नारी सेती नेह, बुधि विवेक सबही हरै।
कांई गमावै देह, कारिज कोई नां सरै।।[27]

स्त्री का प्रेम बुद्धि और सद्सद् विवेक सबका हरण कर लेता है। हे जीव तू इस स्त्री प्रेम में अपनी शक्तियों का ह्रास क्यों कर रहा है। इससे कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता है।

नाना भोजन स्वाद सुख नारी सेती रंग।
वेगि छांडि पछिताइगा ह्वै है मूरति भंग।।[28]

विविध प्रकार के सुस्वादु भोजनों का सुख एवं स्त्री प्रेम का सुख, हे मनुष्य तू इन दोनों का परित्याग कर दे अन्यथा जब इन्हीं इन्द्रिय सुखों में रत रहने पर शरीर नष्ट हो जाएगा तो तू पछताएगा।

नारी नसावै तीनि सुख। जा नर पासे होई।
भगति मुकति जिन ग्यान मे, पैसि सकें न कोई।।[29]

नारी का संसर्ग मनुष्य को तीन सुखों से संचित कर देता है। वे हैं—भक्ति, मुक्ति और आत्मज्ञान। नारी के संसर्ग में रहकर तीनों की प्राप्ति असम्भव है।

एक कनक अरु कामिनी, दौऊ अगिनि की झालि।
देखै ही तन प्रजलै, परस्यां ह्वै पैमाल।।[30]

स्त्री और स्वर्ण (धन) दोनों ही अग्नि की प्रज्ज्वलित लपटों के समान हैं। इनको देखने मात्र से शरीर जलने लगता है एवं स्पर्श करते ही मनुष्य नष्ट हो जाता है।

कबीर भग की प्रीतडी, केते गए गडंत।
केते अजहुं जाइसी, नरकि हसंत हसंत।।[31]

कबीर कहते हैं कि स्त्री संभोग के सुख से विनष्ट होकर न जाने कितने लोग कब्र में गढ़ गए, नष्ट हो गए किन्तु फिर भी संसार इससे सावधान नहीं होता है और आज भी कितने ही मनुष्य हँसते-हँसते पतन मार्ग को अपनाते हैं।

जोरू जूठणि जगत की, भले बुरे का बीच।
उत्यम ते अलगे रहे निकटि रहै तै नीच।।[32]

स्त्री समस्त सांसारिक विषयों की जूठन है। यही व्यक्ति के भले बुरे का भेद बताती है। जो इससे दूर रहते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं और इसके संसर्ग में रहते हैं, वे नीच है।

नारी कुंड नरक का बिरला थंभै बाग।
कोई साधु जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग।।[33]

नारी संसर्ग नरक के कुण्ड के समान यातनामय एवं घृणास्पद है। कोई विरला ही मनुष्य अपने मनरूपी अश्व की लगाम को उधर जाने से रोक पाता है। ऐसी मन:साधना कोई-कोई साधु ही कर पाता है, अन्यथा समस्त जगत उसके संपर्क में नष्ट होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

सुंदरि थै सूली भली बिरला बंचै कोय।
लोह निहाला अगनि में, जलि बिल कोइला होय।।[34]

कबीर कहते हैं कि नारी से तो शूली (मृत्यु) अच्छी है। इसके घातक प्रभाव से कोई बिरला ही बच पाता है। जिस तरह लोहे जैसे कठोर पदार्थ को भी अग्नि जला कर कोयला बना देती है उसी प्रकार कोई चाहे कितना ही दृढ़ चरित्र व्यक्ति क्यों न हो नारी सबको भ्रष्ट कर देती है।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि कबीर ने स्पष्ट रूप से नारी को तुच्छ, हेय और नरक के द्वार के रूप में अधिमान्य किया है। हालाँकि खुद कबीर दास विवाहित थे, लोई उनकी पत्नी का नाम था, वे खुद भी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे तथा अपने काव्य में समाज सुधार, निर्गुण ब्रह्म की प्रतिष्ठा, माया, जीव, जगत्, संसार गुरु के सम्बन्ध में सफलतापूर्वक अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनकी स्वयं की पत्नी लोई उनके मार्ग में बाधक नहीं बनी फिर भी स्त्री जाति के लिए यह विरोध किसलिए? स्वयं स्त्री के समीप

रहकर दूसरों को स्त्री से दूर रहने का उपदेश देना क्या उचित है। कबीर के लिए यह क्या उचित था कि उन्होंने नारी को नरक के द्वार के रूप में अधिमान्य कर दिया।

मानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी नारी को प्रताड़ित करने की शिक्षा देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। देखिये—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताडना के अधिकारी।[35]

ढोल, गँवार, शूद्र (नीच जाति का व्यक्ति) पशु और नारी—ये सभी ताडना (पीड़ा) देने के योग्य है। इस चौपाई पर काफी बहस मिलती हैं। उनमें से एक दलील यह है कि तुलसी ने युगधर्म से प्रेरित होकर यह चौपाई लिखी, एक दलील यह भी मिलती है कि नीच महिला को समझाने के लिए ताडना देने के लिए कहा है लेकिन चौपाई पढ़ने से स्पष्ट होता है कि ताडना देने की बात किसी विशेष नारी के लिए नहीं कही गई बल्कि समस्त नारी जाति उनकी लेखनी का निशाना थी। हालाँकि इस चौपाई पर काफी विचार-विमर्श हो चुका है लेकिन इसका अक्षरश: अर्थ किया जाये तो समस्त स्त्री जाति ही ताडना की अधिकारी प्रतीत होती है। ढोल पर जब छड़ी से प्रहार किया जाता है, तभी बजता है। गँवार व्यक्ति भी मारने पर सही रास्ते पर चलता है। शूद्र (नीच जाति का व्यक्ति) भी पीड़ा और उत्पीड़न करने पर सही रास्ते पर चलता है। इसी प्रकार नारी भी मारने और पिटाई की पात्र है।

अगर मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत की बात करें तो हमें मिलता है कि जायसी ने भी नागमति रूपी स्त्री को नागिन के रूप में संज्ञा दी है क्योंकि वह हीरामन नामक तोते को मारने का आदेश दे देती है। क्योंकि तोता हीरामन नागमति के समक्ष पद्मावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन करता है। नागमति अपनी दासी को तोते को मारने का आदेश दे देती है। देखिए—

धाय सुआ लेई मारै गई। समुझि गियान हिये मति हुई।।
सुआ सो राजा कर बिसरामी। मारि ना जाइ चहै जेहि स्वामी।।
यह पंडित खण्डित बैरागू। दोष ताहि जेहि सूझ ना आगू।।
जो तिरिया के काज ना जाना। परै धोख पाछै पछिताना।।
नागमति नागिन बुधि ताऊ। सुआ मयूर होई नहि काऊ।।
जो ना कंत के आयसु माही। कौन भरोस नारी कै वाही।।[36]

ऐसा लगता है कि भक्तिकाल के लगभग सभी प्रमुख कवियों के चिंतन में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की है।

स्त्री के प्रति निम्न कोटि के विचार हमें सूरदास के भ्रमरगीत में भी मिलते हैं, जिसमें स्वयं गोपियाँ ही कृष्ण की याद करते हुए स्वयं को निम्न कोटि का प्रस्तुत कर रही हैं। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

फिरि फिरि कहा सिखावत मौन।
दुसह बचत अलि यों लागत उर ज्यो जारे पर लौन।
सिंगी, भस्म, त्वचामृग, मुद्रा, अरु अवरोधन मौन।
हम अबला अहीर सठ, मधुकर, घर बन जानै कौन।
यह मत लै तिनही उपदेशी, जिन्हें आजु सब सोहत।
सूर आज लौ सुनी ना देखी, पोत सूतरी पोहत।।[37]

पतिव्रता रूप की प्रतिष्ठा

पतिव्रता, साध्वी और सती स्त्री वही है जो सर्वदा अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर अपने पति पर निर्मल प्रीति रखती है तथा पति की इच्छानुसार चलकर उसकी आज्ञा का पालन करती है अर्थात् जो तन, मन और वचन से पति की सेवा के सिवा दूसरी कुछ भी इच्छा नहीं रखती है, पति को ही अपने सुख-दुःख का एकमात्र साथी समझती है बिना कारण घर से बाहर नहीं जाती, सास ससुर को सगे माता-पिता के सदृश समझकर सदा सेवा भक्ति करती है, ननद को सगी बहन के अनुसार और देवर को भाई जैसा समझती है। पति के सोने के पीछे सोती है तथा उठने से पहले उठ कर स्वच्छतापूर्वक घर का तमाम कार्य करती है। पति को नियमपूर्वक प्रथम भोजन कराकर फिर स्वयं खाती है। घर के सारे काम करके अध्ययन में मन लगाती है जिससे उसको श्रेष्ठ शिक्षा मिलती रहे। पति के प्रिय आत्मीय स्वजनों का सम्मान करती है। बाहरी लोगों के साथ बातचीत नहीं करती, किसी के साथ क्रोध से या स्वभाव से भी ऊँचे स्वर से नहीं बोलती, पति से छिपा कर कुछ भी नहीं रखती। सत् शास्त्रों का उपदेश श्रवण करके उसी के अनुसार बर्ताव करती है। पति को धर्म सम्बन्धी तथा व्यवहार संबंधी कार्यों में उत्साह और साहस देकर तन, मन और वचन से सहायता करती है, संतान का पालन प्रेम और सुरुचिपूर्वक करती

है। उसे धीर, वीर, गंभीर, धार्मिक और सर्वगुण सम्पन्न विद्वान् बनाने का हमेशा प्रयत्न करती है। उसे अशुभ कार्यों में प्रवृत्त नहीं होने देती, पति की दी हुई वस्तु को भलीभाँति सँभाल कर रखती है। यदि कोई दुष्ट पुरुष बुरी दृष्टि से उसकी ओर देखे, मधुर वचनों से रिझावे या उसे कभी आवश्यक कार्यवश पुरुषों की भीड़ में जाना पड़े और उस समय कोई पुरुष का स्पर्श हो जाए तो इन अवस्थाओं में उसके मन में कदापि विकार नहीं आना चाहिए। पर पुरुष के सामने दृष्टि स्थिर करके नहीं देखती है। यदि ऐसा जरूरी हो तो पर पुरुष के लिए उसके मन में बाप–भाई की अवधारणा आनी चाहिए। भक्तिकाल में चित्रित नारी के लिए पतिव्रत धर्म हेतु ऐसे ही विचार बहुतायत में मिलते हैं।

पतिव्रता स्त्री पर पुरुष के सामने सादगीपूर्ण तरीके से व्यवहार करती है। पति कैसा भी हो, उसी को देवतुल्य मानकर सदा प्रसन्न रहती है, पति के सिवा किसी दूसरे की गरज नहीं रखती है। किसी परपुरुष के द्वारा बड़े–से बड़ा लोभ देने पर भी वह पतिव्रत धर्म से पथभ्रष्ट नहीं होती है, ना ही विचलित होती है। चाहे वह मनुष्य देव–गन्धर्व के समान सुन्दर और धनवान ही क्यों न हो, पतिव्रता स्त्री किसी प्रलोभन में न फँसकर दुष्ट पुरुषों को धिक्कारती और उनको दूर कर देती है। पति के सिवा किसी को भी नहीं स्मरण करती है। किसी भी पर पुरुष का स्पर्श नहीं हो यह ध्यान रखती है। ऐसे वस्त्र पहनती है कि जिससे मर्यादा, शील, लज्जा की रक्षा हो, ऐसा वस्त्र पहनती है जिससे पिंडली, जंघा, पेट, वक्षस्थल आदि शरीर के सारे अंग ढके रहे। इस प्रकार के वस्त्रों को पहनती हैं। कभी भी नग्न होकर स्नान नहीं करती। सदा हर्षित बदन (खुश) रहती है। धीमी चाल से चलती है। बजने वाले गहने नहीं पहनती है। कभी जोर से नहीं हँसती है। दूसरे स्त्री–पुरुषों की शृंगारिक अवस्था को नहीं देखती है। सदा सौभाग्य दर्शक साधारण शृंगार करती है। शरीर को बाहरी हीरे मोती या स्वर्ण के अच्छे आभूषणों के बदले आदर्श सदगुणों से सजाने की इच्छा और चेष्टा करती है। शरीर को क्षणभंगुर मानकर परलोक का विचार कर उत्तम दान पुण्य करके सत्कीर्ति का संपादन करती है।[38] सदा शील की सावधानी से रक्षा करती है। सत्य बोलती है, कभी चोरी नहीं करती। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और तृष्णा को शत्रु के समान समझकर यथासाध्य, इनका त्याग करती है। संतोष, समता, सहनशीलता, त्याग, विनय, सत्य, अहिंसा, क्षमा आदि सदगुण पतिव्रता स्त्री की मानसिकता में रहते हैं। पति के द्वारा जो कुछ मिलता है उसी में निरन्तर आनंद मानती है।

विद्या और विनय आदि गुणों को ग्रहण करती है। उदार, चतुर और परोपकार परायण रहती है। धर्म, नीति, सदव्यवहार और कलाकौशल की शिक्षा स्वयं प्राप्त कर अपनी संतान को सिखाती है तथा श्रेष्ठ उपदेश देकर सन्मार्ग में लाने का प्रयास करती है। किसी को दुःख हो ऐसा बर्ताव नहीं करती है। अपने परिवार तथा अन्य जनों के साथ लड़झगड़ कर क्लेश उत्पन्न नहीं करती है। हर्ष, शोक और सुख–दुःख में समान रहती है। पति की आज्ञानुसार सौभाग्यवर्धक व्रत–नियम उपवास आदि धार्मिक कार्य करती है। धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखती है। जेठ को ससुर तथा जेठानी को सास तुल्य देखती है। उसकी संतान को अपनी ही संतान के समान प्रिय मानती है। शास्त्रों को पढ़ती और सुनती है। किसी की निंदा नहीं करती। नीच, कलंकित पतिद्रोहिणी और कुलटा स्त्रियों की संगति भूल कर भी नहीं करती। ऐसी दुष्टात्माओं के पास खड़ी रहना तथा बैठना भी नहीं चाहती। गुणवती एवं सुपात्र स्त्रियों की ही संगति करती है। सब दुर्गुणों से दूर रहकर दूसरी बहनों को अपने समान बनाने की विनय तथा प्रेमपूर्वक चेष्टा रखती है। किसी का अपमान नहीं करती, न ही कटु वचन बोलती है। पति का कभी स्वयं अपमान नहीं करती और न दूसरों के द्वारा किए गए अपमान को सहन करती है। पीहर में भी वह अधिक समय तक नहीं रहती है। पतिव्रत धर्म तलवार की धार पर चलने के समान अति कठिन काम है लेकिन यह किया जाना चाहिए।

भक्तिकाल में पतिव्रत धर्म की बहुत चर्चा की गई है और नारी जीवन का अनेक अंगों से विवेचन किया गया है। परन्तु उन सभी में अधिकतम महत्त्व दिया गया है— पातिव्रत धर्म को। हिन्दू संस्कृति में नारी धर्म की सारी समस्याएँ इसी एक तत्त्व पर केन्द्रित हो चुकी थी। नारी जाति का सम्मान इसी एक केन्द्र बिन्दु पर रखा गया। नारी जाति का गौरव स्थान और सुख सर्वस्व का मंदिर इसी आधार स्तम्भ पर रचा हुआ दिखाई देता है।

हमारी संस्कृति में नारी जाति, जो देवता तुल्य मानी गई है और हमारे श्रुति, स्मृति, पुराणादि ग्रन्थों में उसका जो कुछ गौरव पाया जाता है उसका कारण सोचा जाए तो एक पातिव्रत्य धर्म में ही उसका मूल मिल सकता है। सावित्री, सीता और मंदोदरी जैसे महान रमणी रत्नों की प्रशंसा हमारे धर्मग्रन्थों में जो मिलती है वह सब पातिव्रत्य को लेकर ही मिलती है। आमरणान्त स्त्री का एक ही पति हो सकता है दो और अधिक नहीं। हो सकता है, पतिव्रता धर्म की स्थापना स्त्री जाति की यौन शुचिता के लिए की गई हो।

तुलसीकृत रामचरित मानस के अरण्य काण्ड में सीताजी को महासती अनुसूया द्वारा पतिव्रत धर्म की शिक्षा देने का वर्णन मिलता है। देखए—

दिव्य वसन भूषण पहिराए। जो नित नूतन अमल सुहाये।
कह रिषि बधू सरस मृदुवानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी।।[39]
मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु सुकुमारी।
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेवन तेही।।[40]
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिए चारी।
वृद्ध रोग बस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।।[41]
ऐसेहु पति पर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुःख माना।।
एकई धर्म एक ब्रत नेमा। कायं बचन मन पति पद प्रेमा।।[42]
जग पतिव्रता चारि विधि अहही। वेद पुरा संत सब कहही।।
उत्तम के अस बस मन माही। सपनेहुं आन पुरुष जग नाही।।[43]
मध्यम परपति देखई कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धर्म बिचारि, समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।।[44]
बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।।[45]
छन सुख लागी जनम सत कोटि। दुःख न समुझ तेहि सम को खोटी।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाडि छल गहई।।[46]
पति प्रतिकूल जनम जहं जाई। विधवा होई पाई तरुनाई।।[47]
सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
लसु गावत श्रुति चारि अजहुं तुलसि का हरिहि प्रिय।।[48]

स्त्री जन्म से ही अपवित्र है किन्तु पति की सेवा से वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। (पातिव्रत धर्म के कारण ही) आज भी तुलसी जी भगवान् का प्रिय है और चारों वेद उसका यश गाते हैं।

उपर्युक्त संदर्भों से सिद्ध होता है कि मानसकार तुलसीदास जी ने नारी को पतिव्रत धर्म का आवश्यक आभूषण बताया। इस धर्म के बिना नारी अधूरी है तथा बिना पति सेवा के उसका उद्धार सम्भव नहीं है।

नारी के पतिव्रता रूप की प्रतिष्ठा कबीरदास जी ने भी की है। शायद उनका मन्तव्य भी यही था कि पतिव्रत धर्म के अंकुश से समाज में व्यभिचार न फैले। उनके संग्रह में 'निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग' नामक शीर्षक से पूरा अध्याय ही नारी के पतिव्रता रूप को समर्पित है। हमारा मुख्य उद्देश्य कबीर का नारी के संदर्भ में संक्षिप्त विचार करना है एवं कबीर का झुकाव भी नारी के पतिव्रत धर्म के विषय में, इसका समर्थ करना है, इस समर्थन में निम्न संदर्भ देखिए—

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझसौ, बहु गुणियाले कन्त।
जै हंसि बोलो और सौं तौ नील रंगाऊ दन्त।।[49]

नैना अंतरि आव तू ज्यू हौं नैन झंपेऊ।
ना हौं देखूँ और कूं ना तुझ देखन देऊ।।[50]

कबीर रेख सिंदूर की, काजल दिया न जाई।
नैन रमाइया रमि रह्या दूजा कहां समाई।।[51]

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास।
समदहि तिणका वरि गिणै स्वाति बूँद की आस।।[52]

मन प्रतीति न प्रेम रस नाँ इस तन में ढंग।
क्या जाणौ उस पीव सूं कैसे रहसी संग।।[53]

पतिबरता मैली भली, काली, कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर बारौं कोटि स्वरूप।।[54]

पतिबरता मैली भली, गले काँच को पोत
सब सखियन में यों दिपै, ज्यो रवि ससि की जोत।।[55]

इसी प्रकार नारी के प्रतिव्रत धर्म की प्रतिष्ठा सूरदास द्वारा भ्रमर गीत में मिलती है। गोपियाँ अपने प्रिय कृष्ण को ही याद करती है। उसके अलावा वे किसी और को नहीं देखना चाहती हैं।

स्याम मुख देखे ही परतीति

जो तुम कोटि जतन करि सिखवत जोग ध्यान की रीति।।

नाहिन कछु सयान ज्ञान में हम यह कैसे मानै।

कहौ कहा कहिए या नभ को कैसे उर में आनै।

यह मन एक, एक वह मूरति, भृंग कीट सम माने।

सूर सपथ दै बूझत ऊधो यह ब्रज लोग सयाने।।[56]

गोपियों की दृष्टि में कृष्ण के अतिरिक्त और किसी का कुछ भी महत्त्व नहीं है, उद्धव यह सब जानते हुए भी बलपूर्वक गोपियों को योग साधना में प्रवृत्त करना चाहते हैं। उसके इस प्रयत्न को व्यर्थ बताते हुए गोपियाँ स्पष्ट कह देती हैं—कृष्ण के सुन्दर मुख को देख लेने पर किसी और के प्रति हमारे मन में विश्वास ही उत्पन्न नहीं होता है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने महाकाव्य पद्मावत में भी नारी के पतिव्रता रूप का सुन्दर चित्रण नागमती के परिप्रेक्ष्य में किया है। नागमति एकनिष्ठ होकर अपने पति राजा रतनसेन के विरह में पतिव्रता स्त्री की भाँति जलती रहती है।

सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह?

झुरि झुरि पींजर हौं भई, विरह काल मोहि दीन्ह।।

पिउ वियोग अस वासर जीऊ। पपीहा नित बोलै पीउ पीऊ।।

अधिक काम जो दाधै सो रामा। हरि लेई सुवा गएउ पिउ नामा।।

विरह वान तस लागन डोली। रक्त पसीजे, भीजि गई चोली।।

सूखा हिया हार भा भारी। खनहि जाई जिऊ होई निरासा।।

पवन डोलावहि सीचहि चोला। पहर एक समुझहि मुख बोला।।

प्रान पयान होत को राखा। को सुनाव पीतम कै भाखा।।[57]

मैं और मेरा पति सारस की जोड़ी की तरह थे पता नहीं किस शिकारी ने मेरे पति का शिकार कर लिया? उनके वियोग में मैं सूख-सूख करके कंकाल रह गई हूँ। मुझे विरह रूपी काल मिला है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भक्ति काल के प्रमुख कवि सूरदास, तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास ने अपनी-अपनी रचनाओं

में नारी के पातिव्रत स्वरूप का प्रमुखता से चित्रण किया है। इन सब कवियों की रचनाओं के अध्ययन से यह पता चलता है कि स्त्री का पतिव्रता स्वरूप उसकी रक्षा में ही सहायक होता था। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री के पातिव्रत स्वरूप की स्त्री की सुरक्षा एवं संरक्षा के लिए महती आवश्यकता थी। यह सिद्ध होता है।

संघर्षशील एवं विद्रोहिणी

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में नारी का रूप संघर्षशीला एवं विद्रोहिणी का भी मिलता है। तुलसीकृत रामचरित मानस की बात करें तो सीताजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व संघर्षशीला का रहा है। राम के साथ वन जाने का निश्चय करके सीता जी ने अपने संघर्षशील व्यक्तित्व का परिचय दिया है। मानसकार तुलसीदास ने सीता जी के चरित्र–चित्रण के माध्यम से नारी जाति को संघर्ष करने का आह्वान किया है। तुलसी द्वारा चित्रित सीता अपने पति के साथ वनगमन चुनती है। वहाँ उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है फिर भी वह पति के साथ कदम से कदम मिला कर चलने को तैयार है। लेकिन सीता ने वन का जीवन कभी व्यतीत नहीं किया फिर भी वे राम के साथ चली जा रही हैं।

पुर ते निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दिए मग मे डग द्वै।
झलकी भरिभाल कनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिरि पूछति है चलनौ अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की अति आतुरता पिय की अंखियां अति चारू चली जल च्वै।।[58]

सीता जी के संघर्ष का एक और उदाहरण देखिए जो कि कवितावली में प्रस्तुत किया गया है। सीता जी के पैर में काँटा लग जाता है और राम बड़े स्नेह से उस काँटे को निकाल रहे हैं।

जल को गए लखन है लरिका, परिखौ पिय! छांह घरीक है ठाडे।
पोछि पसेउ बयारि करौ, अरु पाय पखारि हौ भूभ्रिर डाढ़े।
तुलसी रघुवीर प्रिया श्रम जानि के, बैठि विलम्ब लौ कण्टक काढे।
जानकी नाह को नेहु लख्यौ, पुलकौ तनु वारि विलोचन बाढे।[59]

तुलसीदास जी कहते हैं कि राम ने समझ लिया कि सीता थक गई है अत: वह देर तक बैठकर सीताजी के पाँव में चुभे काँटे निकालते रहे। इस प्रकार का व्यवहार देखकर सीता का शरीर रोमांचित हो गया और सुन्दर नयनों में आँसू भर आए।

इससे सिद्ध होता है कि सीता ने तपती रेत और कण्टाकाकीर्ण मार्ग का अनुसरण करके राम के साथ वन के कठिन जीवन को धारण किया। सीता में संघर्षशीला स्वभाव पतिव्रता रूप के कारण आया है। जो स्त्री पति के साथ रहती है, उसे अच्छे-बुरे दिन काटने ही पड़ते हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत में भी नारी संघर्ष की स्थिति मिलती है। जब राजा रतनसेन पद्मावती से विवाह कर वापस लौट रहे थे तो समुद्र में तूफान के कारण दोनों बिछुड़ गए। समुद्र तट पर राजा रतनसेन जब आया तब समुद्र याचक का रूप धरकर राजा से दान माँगने आया पर राजा ने लोभवश उसका तिरस्कार कर दिया। राजा आधे समुद्र में भी नहीं पहुँचा था कि बड़े जोर का तूफान आया जिससे जहाज दक्षिण लंका की ओर बह गया। वहाँ विभीषण का एक राक्षस मांझी मछली मार रहा था। वह अच्छा आहार देख राजा से बोला कि चलो हम तुम्हें रास्ते पर लगा दें। राजा उसकी बातों में आ गया। वह राक्षस सब जहाजों को एक भयंकर समुद्र में ले गया जहाँ से निकलना कठिन था। जहाज चक्कर खाने लगे और हाथी घोड़े समुद्र मनुष्य आदि सभी डूबने लगे। वह राक्षस आनन्द से नाचने लगा। इस बीच समुद्र का राजपक्षी वहाँ आ पहुँचा जिसके डैनों का घोर शब्द हुआ मानो पहाड़ टूट कर गिर रहे हों। वह पक्षी उस दुष्ट राक्षस को चंगुल में दबा कर उड़ गया। जहाज के एक तख्ते पर एक ओर राजा बहा दूसरी ओर रानी बह गई। दोनों अलग-अलग हो गए। पद्मावती बहते-बहते वहाँ जा लगी जहाँ समुद्र की कन्या लक्ष्मी अपनी सहेलियों के साथ खेल रही थी। लक्ष्मी मूर्छित पद्मावती को अपने घर ले गई, जब पद्मावती को होश आया तो राजा रत्नसेन के लिए विलाप करने लगी।

मुरछि परी पद्मावति रानी। कहाँ जीऊ कहं पीउ न पानी।।
जानहु चित्र मूर्ति गहि लाई। पाटा परी बही तस जाई।।
जनम न सह पवन सकुंवारा। तेई सो परी दुःख समुद अपारा।।
लछिमी नाम समुद कै बेटी । तेहि कह लच्छि होई जहं भेटी।।

खेलति अही सहेलिन्ह सेंती। पाटा जाइ लाग तेहि रेती।।
कहेसि सहेली देखहु पाता। मूरति एक लागि वहि घाटा।।
जो देखा तीवई है सांसा। फूल मुवा पै मुई ना बासा।।
रंग जो राती प्रेम के जानहुं बीर बहूटि।
आई बही दधि समुद महं पै रंग गएऊ न छूटि।।
लछमी लखन बतीसौं लखी। कहेसि न मरै संभारहुं सखी।।
कागर पतरा ऐस सरीरा। पवन उड़ाई परा मंझ नीरा।।
लहरि झकोरि उदधि जल भीजा। तबहु रूप-रंग नहि छीजा।।
आपु सीस लेई बैठी कोरैं। पवन डुलाव सखी चहुं ओरें।।
बहुरि जो समुझि परा तन जीऊ। मांगेसि पानि बोलि के पीऊ।।
पानी पियाई सखी मुख धोई। पदमिनी जनहु कंवल संग कोई।।
तब लछमी दुःख पूछा ओहि । तिरिया समुझि बात कहु मोहि।।[60]

पद्मावत के बाद बात करते हैं सूरदास कृत भ्रमरगीत की। स्त्री के लिए वियोग, संघर्ष की ही स्थिति है। जब स्त्री अपने प्रिय से दूर होती है तो उसके सामने संघर्ष करने को कोई स्थूल वस्तु नहीं होती अपितु वह स्वयं की मानसिकता एवं परिस्थितियों से ही संघर्ष करती है। पल-पल अपने प्रिय को याद करना अपने आप से संघर्ष की स्थिति है। नारी विरहावस्था में अपने अन्तर्मन में संघर्ष करती है। अगर वियोगावस्था या वियोग शृंगार की संरचना पर गौर किया जाए तो विप्रलम्भ शृंगार के हमें निम्न कारक दिखाई देते हैं—(1) अभिलाषा, (2) चिंता, (3) स्मरण, (4) गुणकथन, (5) उद्वेग, (6) प्रलाप, (7) उन्माद, (8) व्याघात, (9) जड़ता, (10) मूर्च्छा, (11) मरण। वियोगावस्था में नारी जब इन परिस्थितियों से गुरजती है तो क्या वह संघर्ष नहीं है? यह तो अपने आप से संघर्ष है। अपने व्यक्तित्व से संघर्ष है। संघर्ष के लिए शरीर का कष्ट में होना जरूरी नहीं, मन में भी संघर्ष की स्थिति होती है। इसके लिए कई शब्द आते हैं, जैसे—ऊहापोह, उलझन, जब प्रश्न स्वयं से हो, और स्वयं ही उसका उत्तर देने में असमर्थ हो, वह मानसिक संघर्ष की स्थिति होती है। वियोग से संघर्ष का गहरा रिश्ता है। सूरदास कृत भ्रमर गीत में गोपियाँ ऐसे ही संघर्ष से गुजरती हैं। गोपियाँ कृष्ण के विरह में तड़प रही हैं और संघर्ष से गुजर रही हैं। देखिए—

प्रीति कर दीन्ही गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाय कपट कन पाछे करत बुरी।।
मुरली मधुर चेंप कर, कांपो मोर चन्द्र ठटवारी।।
वंक बिलोकनि लूक लागि बस सकी न तनहि सम्हारी।।
तलफत छांडि चले मधुवन को फिरि कै लई न सार।
सूरदास वा कलप तरोवर फेरि न बैठो डार।।[61]

भक्तिकाल की कृष्ण भक्त कवि एवं भक्त मीरां बाई का व्यक्तित्व, संघर्षशील एवं विद्रोह से परिपूर्ण है। मीरां के प्रति भोजराज के निधन के पश्चात् मीरां के जीवन की धारा एक ओर कृष्ण प्रेम तथा दूसरी ओर भौतिक कष्ट व संघर्ष की चट्टानों से टकराकर प्रवाहित होती दिखाई देती है। उनके श्वसुर राणा सांगा परम उदार एवं स्नेही व्यक्ति थे। अत: उनके जीवित रहते मीरां को कोई कष्ट नहीं हुआ। उनकी मृत्यु के बाद मीरां के ज्येष्ठ रत्नसिंह सिंहासनारूढ हुए। रत्नसिंह भी मीरां के प्रति उदार थे पर उनके बाद विक्रमादित्य मेवाड़ का राणा हुआ जो बड़ा ही अहंकारी, क्रूर, मूर्ख एवं छिछोर प्रकृति का था। उसने अपने दुराचरण से मेवाड़ के सामन्तवर्ग को भी रूष्ट कर दिया था। मीरां को विषपान एवं पिटारी में साँप भेजने का षडयंत्र भी हुआ था लेकिन कृष्ण कृपा से वह बच गई। इस तथ्य की पुष्टि लोकानुश्रुति के अतिरिक्त अनेक भक्तों व सन्तों के उल्लेखों से होती है। उदाहरणत: नागरीदास जी ने लिखा है—(ब्रजभाषा में)

"मीराबाई सौ राना बहुत दुःख पाय रहे। राना के घर की रीति, इनकी भिन्न रीत, यह भगवत सम्बन्ध सत्यसंग विसेस करें देह सम्बन्ध को ना तौ व्यवहार मानै, राना बहुत समुझाए रह्यो निदान, एक विष को प्यालौ, इनकौ पठयौ कहयौ चरनामृत को नाम लै लै कै दीजियो, उनके प्रण है चरमामृत के नाम से पी ही जाऐगी सो ऐसो ही भयो, जानि बूझि पियौ राना तौ इनके मुर्वे की राह देखत रह्यो, उत यह झांझ मृदंग संग लै लै परम रंग सौ एक नयौ पद बनाय ठाकुर आगे गावत भये पद बहुत प्रसिद्ध भयो।" [62]

मीरां के समकालीन महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत एकनाथ ने भी इस घटना का उल्लेख किया—"विष पी तो मीरां बाई साठी।"[63]

कबीर पन्थी संत गरीबदास और चैतन्य सम्प्रदायी भक्त प्रियादास ने भी इस घटना का उल्लेख किया है। इन सब उल्लेखों से यह तो निर्विवाद रूप से सत्य प्रतीत होता है कि राणा द्वारा मीरां को विष दिए जाने की कोई–न–कोई घटना अवश्य घटी थी। जनश्रुति के अनुसार मीरां को विषपान कराने में महाराणा के सलाहकार और मुसाहब बीजावर्गी महाजन का ही हाथ रहा था जिसका मुँशी देवीप्रसाद ने 'मीराबाई का चरित्र' में उल्लेख किया है।[64] मीरां को इस कुचक्र का पता चल गया और उसने बीजावर्गी को शाप दिया कि जिस माया के लिए तुमने यह दुष्कृत्य किया है वह तेरे कुल में न रहेगी और जब रहेगी तो उसे भोगने वाली संतान नहीं होगी। लोक मान्यता है कि मेवाड़ के बीजावर्गी महाजनों की दुर्दशा का कारण यही शाप है। यह बात मारवाड़ के बीजावर्गी महाजन भी विश्वास से कहते हैं कि यह सत्य है।

विषपान करके मीरां मरी नहीं। यह निर्विवाद है। मीरां ने इसे अपने आराध्य गिरधर लाल का अनुग्रह माना। उसे पीकर मीरां प्रेम की कसौटी पर खरी उतरी। यह मीरां के अटल विश्वास और प्रेम की शक्ति ही थी जिससे वह प्रेम दीवानी उस गरल को पचा गई। आज का विज्ञान युग चाहे इस घटना को अलौकिक मान कर इसकी सत्यता पर प्रश्न वाचक चिह्न लगा दे परन्तु विष से बच जाना कोई असंभव नहीं है। संभवत: यह विष प्राणघाती न रहा हो। आज भी कई व्यक्ति विष पी कर बच जाते हैं। मीरां पर भी उस विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसी प्रकार पिटारी में नाग भेजे जाने की घटना का भी अनेक लेखकों ने उल्लेख किया है। स्वयं मीरां द्वारा रचित पदों में से भी इस प्रसंग की पुष्टि होती है। देखिये—

मीरां मगन भई हरि के गुण गाय।
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरां हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर पियाला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अंचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरां सुलाय।
साँझ भई मीरां सोवण लागी, मानो फूल विछाय।
मीरां के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।।[65]

और भी देखिए मीरां के संघर्ष की स्थिति—

पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे (टेक)
मै तो अपने नारायण की आप ही हो गई दासी रे।
विष का प्याला राणाजी ने भेज्या, पीवत मीरां हांसी रे
लोक कहे मीरां बावरी बाप कहे कुल नासी रे
मीरां के प्रभु गिरधर नागरि हरि चरणा की दासी रे।।[66]

मीरां सब अपवादों को छोड़कर अपने आराध्य गिरधर नागर की भक्ति के वशीभूत होकर पूर्णत: उनको समर्पित हो गई।

मीरां के अन्तर्मन में भी संघर्ष की स्थिति थी। वह अपने मोहन से एकाकार होने के लिए दिन-रात तड़पती है—

जोगी मत जा, मत जा, मत जा, पायं परू मैं तेरी चेरी हो (ठेक)
प्रेम भगति को पैंडो ही न्यारो, हमको गैल बता जा।
अगर चंदन की चिता बणाऊ अपणे हाथ जला जा।
जल बल गई भस्म की ढेरी अपणे अंग लगा जा।
मीरां कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।[67]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भक्तिकाल की नारी संघर्षशील एवं विद्रोहिणी भी चाहे तुलसी की सीता हो, चाहे जायसी की पद्मावती हो या फिर कृष्ण भक्त मीरां इन सभी नारी पात्रों में महिला के जीवन संघर्ष को स्पष्ट किया गया है।

मानसकार तुलसी ने भी सीताहरण के प्रसंग में नारी संघर्ष को स्पष्ट चित्रित किया है। देखिए—

सीतहि जानि चढाई बहोरि। चला उताइल त्रास न थोरी।
करति विलाप जाति नभ सीता। व्याध विवश जनु मृगी सभीता।।[68]

सीताजी को रथ पर चढ़ा कर रावण बड़ी उतावली के साथ चला। उसे भय कम न था। सीताजी आकाश में विलाप करती जा रही थी मानो व्याध के वश में पड़ी हुई (जाल में पड़ी) कोई हिरणी भयभीत हो रही हो।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी।
एहि विधि सीतहि सौ लै गयऊ। वन असोक महं राखत भयऊ।।[69]

पर्वत पर बैठे बंदरों को देखकर सीता जी हरि नाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह रोती बिलखती सीताजी को ले गया और उन्हें अशोक वन में ले जाकर रखा।

हारि परा खल बहु विधि भय अरु प्रीति दिखाई।
तब अशोक पादप तर राखिसि जतन कराई।।[70]

सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखा कर जब वह दुष्ट हार गया तब उन्हें यत्न करके अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया।

उपर्युक्त संदर्भों से सिद्ध होता है कि भक्तिकाल में नारी की स्थिति संघर्षमय थी क्योंकि कवि जिस युग में होता है उसी युग में प्रेरित होकर रचनाएँ लिखता है। उसके पात्र भी युग से प्रेरित होते हैं।

पति के दासत्व का अस्वीकार

भक्तिकाल में मीरां का व्यक्तित्व पति के दासत्व को अस्वीकार करता है। मीरां कृष्णभक्त थी, उन्हें शैशव से ही श्री गिरधर लाल का इष्ट था। मीरां को बचपन से ही कृष्ण भक्ति की ओर प्रेरित करने वाली दो घटनाओं का प्राय: उल्लेख किया जाता है। एक बार किसी की बारात को देखकर मीरां ने सहज भोलेपन से अपनी माँ से पूछा—"माँ, मेरा वर कौन है? अपनी अबोध कन्या के इस अप्रत्याशित प्रश्न से अवाक् हुई माँ ने तब गिरधर लाल की मूर्ति की ओर संकेत कर दिया। तभी से मीरां ने मन-ही-मन गिरधर लाल को अपना आराध्य मान लिया। बस तभी से मीरां के हृदय में पति की दासता के विरोध के अंकुर फूटने लगे। एक ऐसी ही घटना उन्हें बाल्यावस्था में किसी साधु द्वारा कृष्ण की मूर्ति प्राप्त होने तथा उससे उनका सहज अनुराग हो जाने के सम्बन्ध में मिलती है। कृष्ण प्रेम का वही अंकुर आगे चलकर विरहाश्रुओं से सिंचित होकर प्रेमलता में परिणत हो गया।

मीरां विवाहोपरांत जल्दी ही वैधव्य को प्राप्त हो गई थी। यह बड़े दु:ख की बात थी। वैधव्य के उपरांत मीरां का पारिवारिक जीवन बड़ा ही कष्टपूर्ण एवं संघर्षमय रहा। वास्तव में मीरां को विषपान तथा सर्पदंश दिलवा कर मरवाने के प्रयास उस पारिवारिक संघर्ष की चरम परिणति है। यह संघर्ष एक लम्बे अरसे तक मेवाड़ के राज्यकुल में चला

होगा। इस संघर्ष का कारण स्पष्टत: मीरां का संत साहचर्य एवं मुक्तभाव से उनके साथ भजन–कीर्तन में सम्मिलित होना ही रहा होगा जो तत्कालीन सामंतवादी व्यवस्था के अन्तर्गत एक राजवधू के लिए गंभीर मर्यादा का उल्लंघन था। फलत: राजपरिवार में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया होना अवश्यंभावी था।

मीरां चाहती तो वैधव्य के उपरांत पुनर्विवाह कर सकती थी लेकिन उसे अब पति का दासत्व अस्वीकार था। अब वह किसी के बंधन में नहीं रहना चाहती थी। मीरां ने वैधव्य के उपरांत समस्त जिन्दगी सिर्फ कृष्ण प्रेम में ही गुजार दी। उसे फिर पति की दासता स्वीकार करने का मन नहीं हुआ।

एक विधवा नारी के लिए, भले ही वह राजकुल की वधू क्यों न हो, यह संघर्ष एवं विरोध कितना मर्मान्तक कहा जायेगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। मीरां ने पारिवारिक संघर्ष से तंग आकर चित्तौड़ छोड़ने की ठान ली। मीरां अपने पीहर मेड़ता चली गई। अपने जीवन में पति की कमी को मीरां ने कैसे पूरा किया होगा, सोचकर ही मन अश्रुमय हो उठता है। अपने पति के रूप में मीरां ने कृष्ण को ही चुन लिया तथा लौकिक पति के दासत्व को अस्वीकार कर दिया।

श्री नरोत्तम दास स्वामी के अनुसार "मीरां ने अपने इष्टदेव श्री कृष्ण की कल्पना पति के रूप में की है। अपने रहस्यमय गीतों में भी मीरां ने श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति और प्रेम दर्शाया है।[71]

राधावल्लभ संप्रदाय के ध्रुवदास जी लिखते हैं—

लाज छांडि गिरधर भजे।[72]

चैतन्य सम्प्रदायी प्रियादास ने भी मीरां का गिरधर में अनुरक्त होना लिखा है—

मैरतै जनमभूमि झूमि हित नैन लगे
पगे गिरधरलाल पिता ही के धाम में।।[73]

कृष्णोपासक सम्प्रदायों के अलावा रामोपासक भक्तों ने भी मीरां के आराध्य के विषय में एक स्वर से इसी तथ्य का समर्थन किया है। उदाहरणत: अग्रदास के शिष्य नाभादास ने लिखा है, "लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरां गिरधर भजी।"[74]

इस प्रकार सिद्ध होता है कि मीरांबाई प्रारम्भ से ही कृष्ण को अपना पति मान चुकी थी लेकिन सांसारिक प्राणी होने के नाते राणा भोज से विवाह तो मात्र एक औपचारिकता ही थी। यह औपचारिकतापूर्ण विवाह भी मीरां को वैधव्य देकर ईश्वर ने छीन लिया। शायद ईश्वर कृष्ण भी यही चाहते थे कि उनकी दरद दीवानी प्रेमिका मीरां का कोई लौकिक पति क्यों बने। मीरां को कृष्ण भक्ति करने पर 'बिगड़ी हुई स्त्री' की भी उपमा मिली है। यह उनके ही पद में परिलक्षित होती है—

आली री मेरे नयनन बान पड़ी (टेक)
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर विच आन पड़ी।
कब की ठाडी पंथ निहारु अपने भवन खड़ी
कैसे प्राण प्रिया बिन राखू जीवन मूल जड़ी।
मीरां गिरधर हाथ विकानी लोग कहै बिगड़ी।।[75]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अगर मीरां वैधव्य के पश्चात् पुनर्विवाह कर लेती और किसी राजपुरुष की पत्नी के रूप में दासता स्वीकार कर लेती तो शायद समाज उसे 'बिगड़ी' और पथभ्रष्ट नहीं कहता। इस पद से सिद्ध होता है कि मीरां जहाँ कहीं भी जाती होगी वहाँ उसे विधवा रूप में तिरस्कार ही मिलता होगा, उसे प्रताड़ित भी किया जाता होगा लेकिन कृष्ण प्रेम के समक्ष वह सारी कड़वी बातों को सुन लेती। उसने स्वप्न में भी विधवा होने के बाद सांसारिक पर पुरुष के विषय में नहीं सोचा। पति प्रेम को लौकिक से अलौकिक रूप में बदलने का सबसे स्तुत्य कार्य मीरां ने ही किया है।

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरों न कोई। (टेक)
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।।
छांडि दई कुल की कानि कहा करि है कोई।
संतन ढिंग बैठ-बैठ लोकलाज खोई।।
अंसुवन जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैलि गई, आणंद फल होई।।
दूध की मथनियां, बड़े प्रेम से बिलोई।
दधि मथि घृत काढि लियो डारि दयी छोई।।

भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।

दासि मीरां लाल गिरधर, तारो अब मोहि।।[76]

उपर्युक्त पद में मीरां स्पष्ट घोषणा कर रही है कि मैं कृष्ण के अलावा किसी सांसारिक पुरुष को पति रूप में स्वीकार नहीं कर सकती। उसकी इस इच्छा से समस्त संसार, राजकुल उसके विपरीत हो गया लेकिन मीरां अपने कृष्ण प्रेम में दृढ़ से दृढ़तर होती चली गई और उन्होंने सांसारिक पति के दासत्व का वैधव्य के उपरांत तिरस्कार कर दिया। देखिए निम्न पद—

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ। (टेक)

गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊ।

रैण पडै तब ही उठि जाऊ, भोर भये उठि आऊ।

रैण दिणा वाकै संग खेलूं, ज्यू त्यूँ ताहि रिझाऊ।।

जो पहिरावै सोई पहरूँ, जो देवै सो खाऊँ।

मेरी उण की प्रीत पुराणी, उण विन पल न रहाऊ।

जहाँ बैठाते तित ही बैठूँ, बैचे तो बिक जाऊ

मीरां के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊ।।

मीरां के समान ही एक और नारी भक्त हुई है 'अक्का महादेवी'। यह शैव धर्म से सम्बन्धित महिला संत थी और ये 12वीं शताब्दी में हुई थी। इनके वचन कन्नड गद्य में शैव भक्ति में ऊँचा योगदान देते हैं। अक्का महादेवी ने कुल 430 वचन कहे थे जो अन्य उनके समकालीन संतों की तुलना में अपेक्षाकृत कम हैं। इन्हें वीर शैव धर्म के अन्य संतों जैसे वसव, किन्नरी, बोम्मैया, सिद्धर्मा, अलामप्रभु एवं दास्सि मैय्या द्वारा ऊँचा स्थान दिया गया है।

इनका जन्म 12वीं शताब्दी में दक्षिण के कर्नाटक राज्य में 'उदुतदी' नामक स्थान पर हुआ। वे बचपन से ही महान शिवभक्त थी। 10 वर्ष की आयु में ही उन्हें शिवमंत्र में दीक्षा प्राप्त हुई। अक्का महादेवी ने अपने सलोने शिव प्रभु का सजीव चित्रण अनेक कविताओं में किया है। उनका कहना था कि वे केवल नाम मात्र की स्त्री हैं किन्तु उनका देह, मन, हृदय, भगवान् शिव का है।

अक्का महादेवी शैव भक्त थीं। शिव को वह अपने पति रूप में देखती थी। बचपन से ही उन्होंने अपने आपको शिव के प्रति समर्पित कर दिया। जब वह युवा हुई तो स्थानीय जैन राजा कौशिक, अक्का महादेवी के अप्रतिम सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। महादेवी के परिवार वाले भी सहमत हो गए क्योंकि वे राजा के कोप का शिकार नहीं बनना चाहते थे।[77]

अक्का महादेवी ने राजा से विवाह तो कर लिया पर उसे शारीरिक रूप से दूर ही रखा। महादेवी का कहना था कि उसका विवाह तो शिव के साथ पहले ही हो चुका है। राजा उनसे कई तरीकों से प्रेम निवेदन करता रहा लेकिन हर बार वह शिव से विवाह की बात दोहराती रही। एक दिन राजा ने सोचा कि ऐसी पत्नी रखने का कोई मतलब नहीं है, ऐसी पत्नी के साथ भला कोई कैसे रह सकता है जिसने किसी अदृश्य व अनजाने व्यक्ति से विवाह किया हो, उन दिनों औपचारिक रूप से तलाक नहीं होते थे, किन्तु राजा परेशान रहने लगा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसने अक्का को अपनी राजसभा में बुलाया और राजसभा से फैसला करने को कहा। जब सभा में अक्का महादेवी से पूछा गया तो वह यह कहती रही कि उनके पति कहीं और है। लगभग आठ सौ साल पहले किसी राजा के लिए यह सहन करना कोई आसान बात नहीं थी। भरी राज सभा में यह राजा का घोर अपमान था। राजा ने कहा—अगर तुम्हारा विवाह किसी और के साथ हो चुका है तो तुम मेरे साथ क्या कर रही हो? चली जाओ। राजा के ऐसे वचन सुनकर अक्का महादेवी वहाँ से चल पड़ी। जब राजा ने देखा कि अक्का बिना किसी परेशानी के उसे छोड़ कर जा रही है तो क्रोध के कारण उसके मन में नीचता आ गई। उसने कहा, तुमने जो कुछ आभूषण, कपड़े पहने हुए हो, वह सब कुछ मेरा है। यह सब यहीं छोड़ दो, और तब जाओ। राजा शायद उसे यह धमकी देकर रोकना चाह रहा था। लोगों से भरी राज सभा में 17-18 साल की युवती अक्का महादेवी ने अपने समस्त वस्त्र, आभूषणादि एक-एक कर उतार दिए और वहाँ से निर्वस्त्र ही चल पड़ी। उस दिन के बाद अक्का महादेवी ने अपने वस्त्र पहनने से इनकार कर दिया। बहुत-से लोगों ने उन्हें समझाने की कोशिश की कि उन्हें नग्न नहीं रहना चाहिए क्योंकि इससे उन्हें ही परेशानी हो सकती है लेकिन उन्होंने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे मृत्यु पर्यन्त इसी प्रकार नग्न रहकर शिव उपासना करती रही। कहा जाता है कि वो अपने लम्बे बालों से अपना तन ढंकती थी।

उनकी एक कविता का अनुवादित अंश कुछ इस प्रकार है—**"तीर जो लगे तो इतना गहरा कि पाख भी न दिखने पाऐं, प्रभु से लिपटो तो इतनी दृढ़ता से कि हड्डियाँ चूर-चूर हो जाऐं, ऐसा जोड़ लगा लो प्रभु से कि जोड़ की भी सत्ता न रह पाऐं।"**

अक्का महादेवी की भक्ति इतनी अनोखी थी। वह हर रोज भिक्षा माँगते हुए शिव से कहती, "शिव ऐसा करो कि मुझे भोजन ना मिले, आपका हिस्सा बनने के लिए मैं जिस बेकरारी और पीड़ा से गुजर रही हूँ मेरा शरीर भी उसे प्रकट करे। अगर मैं भोजन करूँगी तो मेरा शरीर तृप्त हो जायेगा और उसे पता भी ना चलेगा कि मैं क्या महसूस कर रही हूँ इसलिए ऐसा करो कि भोजन मुझे नसीब ना हो, अगर भोजन मेरे हाथों में आ जाय तो वह मेरे मुँह में जाने से पहले मिट्टी में मिल जाए, अगर मैं मूर्ख बन कर उसे उठाने की कोशिश करूँ तो कोई कुत्ता आकर उसे ले जाए।" यह उनकी हर रोज की प्रार्थना थी।

पुरुष सत्ता के स्वरूप पर प्रश्न चिह्न लगाने वाली कन्नड भाषा की पहली महिला कवि अक्का महादेवी ने स्पष्ट रूप से पति के दासत्व को अस्वीकार किया। ये सम्भवत: प्रथम महिला मुक्ति की ध्वजवाहक कही जा सकती है। अक्का महादेवी ने गृहस्थ जीवन नहीं बिताया। उनमें तो शिव प्रेम की उत्कट अभिलाषा थी। उनका यह प्रेम लौकिक पुरुष से हटकर अलौकिक शक्ति के प्रति था। कन्नड साहित्य के इतिहास में उनके वचनों को उद्दत किया गया है जिससे उनके व्यक्तित्व की जानकारी होती है। अक्का महादेवी के इष्टदेव शिव थे, जिन्हें वे 'चेन्नमल्लिकार्जुन' नाम से सम्बोधित करती थी तथा स्वयं को उनके समक्ष चम्पा के सफेद पुष्पों के समान पवित्र स्त्री के रूप में पेश करती थी। अक्का महादेवी ने अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में उन सारी परम्पराओं एवं वर्जनाओं को तोड़ा जो पुरुषसत्ता नियंत्रित कर रही थी। महादेवी ने समस्त सांसारिक बातों को मिथ्या माना एवं एक अलौकिक सम्बन्ध के लिए इन सारी मिथ्याओं को अस्वीकृत किया। वे निर्वस्त्र रूप में भ्रमण करती थीं जिसके कारण उन्हें समाज में चरित्रहीना एवं कुलटा स्त्री के रूप में देखा जाता था। वे स्त्री समाज में असमंजस का केन्द्र थीं। अपने आपको संत बनाकर अक्का महादेवी ने समाज की कई परम्पराओं को तोड़ा था। धर्मशास्त्रों में स्त्रियों के संत न बनने की आज्ञा के बावजूद वे सन्त बनी परन्तु वे भी शिव के प्रति एक पतिव्रता की धारणा लिए अनजाने में ही विधवाओं के लिए बनाए गए सारे नियमों का पालन करती रही। वे निर्भय होकर अपने काव्य में कहती है—

> **“मैं सूखे पत्ते चबाकर रहूँगी, छुरी की धार पर सोऊँगी, चैन्नमल्लिकार्जुन (शिव) तुम अपना हाथ अगर मुझसे छुड़ाओगे तो अपना शरीर और प्राण तुमको सौंप दूँगी।”**[78]

महादेवी की शिव के प्रति अनन्य भावना तो झलकती है, वहीं अलौकिक शक्ति के लिए अपने शरीर को भस्मीभूत करने पर भी वे नहीं हिचकती हैं। एक ओर तो वे शिव एवं अपने सम्बन्ध को लेकर एक आम स्त्री-पुरुष की धारणा रखती हैं। साथ ही समाज के प्रति सशक्त विद्रोह भी उनके काव्य में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनके काव्य से मालूम पड़ता है कि उन्हें साधना में तिरस्कार एवं लोकनिन्दा का शिकार होना पड़ा। उस समय जैसे शूद्रों को तपस्या करने का अधिकार नहीं था वैसे ही स्त्रियों को घर बार छोड़कर भक्ति करने का अधिकार नहीं था। समाज में ऊँच-नीच का भेद न मानने वाले भक्तों को विरोध का सामना करना पड़ा। उन भक्तों में यदि कोई स्त्री हो, विशेषकर अक्का महादेवी जैसी क्रांतिकारी, तो उसे जिस तरह के सामाजिक विरोध का सामना करना पड़ा होगा इसकी भयावह कल्पना स्वत: ही की जा सकती है। महादेवी भी उन समस्त विरोधों को एकमात्र अपने आराध्य शिव के लिए झेलती है। महादेवी ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान अनेक विसंगतियों के प्रति भी अपना विरोध प्रकट किया। धर्म और यौनता तथा धर्म एवं जाति के प्रश्नों पर भी अक्का महादेवी ने काफी आक्रामक तेवर दिखाया। उनकी दृष्टि में चेन्नमल्लिकार्जुन के अलावा संसार में कोई पुरुष नहीं जिसे वे वरण कर सकें। उनका यह सोच तत्कालीन सामाजिक एवं पारम्परिक व्यवस्था के प्रति उनके अति आक्रामक सोच का परिचायक है। वे सांसारिक पति के अस्तित्व को ही पूर्ण अस्वीकृत करती है। उनकी इस अस्वीकृति के पीछे सामाजिक संरचना भी ध्वस्त होती है जो कहीं-न-कहीं इस परिवार नामक संस्था का उदगमस्थल है।[79]

ईश्वर में पति भाव रखने एवं पति के दासत्व को अस्वीकार करने वाली एक और भक्त कवयित्री **आण्डाल** हुई हैं। इन्होंने भी ईश्वर प्रेम में संसार को तिलांजलि दे दी। आण्डाल को गोदाम्मा भी कहते हैं। ये श्री विल्लिपुत्तुर के तुलसी वन में अवतरित हुई थी। ये तत्कालीन राजा पेरियालवार को तुलसी वन में अनाथ हालत में पड़ी मिली थी। ये तमिल देश की थीं। ये बारह आलवार संतों में अकेली महिला संत थी तथा 8वीं शताब्दी में इनका अस्तित्व माना गया है। ये मदुरै तमिलनाडु में विल्लिपुत्तुर में हुई थी। आण्डाल में

बचपन से ही विष्णु भक्ति के बीज पड़ गए थे। वे बचपन में ही वेदशास्त्र, पुराण एवं कीर्तन के प्रति लालायित रहती थी एवं रुचि रखती थीं। बचपन से ही वह कृष्ण की लीलाओं को सुनती थी और उनमें रुचि रखती थी। आपके पिता श्री पेरियालवार हर रोज वटपत्र शायी भगवान् के लिए सुगन्धित पुष्पों की माला बनाते थे। आपने भगवान् को ही उचित वर मान लिया और यही सुनिश्चित कर लिया कि भगवान् विष्णु ही मेरे पति हैं। वे नित्य ही ईश्वर को अर्पण करने के लिए माला बनाती तो उस माला को स्वयं पहन कर आइने के सामने खड़ी होकर सोचती "अरे कितनी सुन्दर माला है। मैं खुद इस माला के प्रति आकर्षित हो रही हूँ, क्या ये माला पहनकर मैं भगवान् के प्रति योग्य हूँ या अयोग्य, ऐसा सोचकर आण्डाल ने वह माला कृष्ण की मूर्त्ति के पास ही रख दी। उसके बाद आण्डाल के पिता पेरियालवार आए और वही माला भगवान् को अर्पण कर दी। यह घटनाक्रम कई दिनों तक चलता रहा। अचानक एक दिन आण्डाल के पिता ने दिखा भगवान् को समर्पित माला को स्वयं आण्डाल ही पहन रही है। यह देख कर पिता बहुत व्याकुल एवं निराश हो गए तथा उन्होंने उस माला को भगवान् को अर्पण नहीं किया। उस रात भगवान् स्वयं पेरियालवार के स्वन में आए और पूछा—आप मेरे लिए आज फूलों की माला क्यों नहीं लाए? पेरियालवार ने कहा—आप सर्वज्ञाता हैं। मेरी बेटी ने आपके लिए बनाई हुई माला को स्वयं पहन लिया। इसलिए वह माला आपके लिए अशुद्ध हो गई। भगवान् बोले—आपकी बेटी मेरी परम भक्त है। आपकी बेटी के माला पहनने के कारण मुझे एक विशेष भक्तिरस की सुगन्ध आई। इस कारण इस कार्य को आप अनुचित ना समझें। मुझे आण्डाल की पहनी हुई मालाएँ पसन्द हैं। भगवान् से ऐसा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न और भावुक आलवार भक्त पेरियालवार ने प्रतिदिन माला बनाकर फिर अपनी बेटी को पहनाकर फिर भगवान् को अर्पण करना शुरू किया। इस घटना के बाद आण्डाल का सम्मान अपने पिता की दृष्टि में एवं तत्कालीन भक्त संप्रदाय में और ज्यादा बढ़ गया।

विष्णु की परम भक्त आण्डाल नाच्चियार जन्म से ही अत्यन्त भक्ति भाव से सम्पन्न थीं। कहा जाता है कि आप भू देवी (धरती) की अवतार थीं। आण्डाल की विष्णु भक्ति में अत्यन्त विरह भाव की व्युत्पत्ति हुई है। इसी कारण आण्डाल के मन में विष्णु के प्रति पति भाव था। आप भगवान् से विवाह करना चाहती थी। इसी भावमयी अवस्था में आण्डाल ने भगवान् को पति रूप में पाने के लिए तरह-तरह के उपायों का अवलम्बन

लेना शुरू किया जिस प्रकार वृन्दावन की गोपिकाओं ने श्री कृष्ण का सामीप्य प्राप्त किया था उन्हीं के अनुसार दर्शाए मार्ग पर आण्डाल (श्री गोदा अम्माजी) ने श्रीविल्लिपुत्तूर को वृन्दावन, वटपत्रशायी भगवान् को कृष्ण भगवान् के मंदिर को श्री नंदबाबा का घर, स्थानीय कन्याओं को गोपीस्वरूप इत्यादि मानकर तिरूप्पावै व्रत का शुभारंभ किया (अर्थात् कृष्ण प्राप्ति व्रत को शुरू किया)। उन्होंने अपने ग्रन्थ नाच्चियार तिरूमोलि में कहा है कि "अगर कोई मेरे व्यक्तित्व को जाने बगैर मेरे बारे में यह कह दे कि आण्डाल भगवान् विष्णु को छोड़ कर किसी और से विवाहित है तो मैं तुरन्त अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी। मैं ऐसा सुनना भी पसन्द नहीं करती हूँ।"

आण्डाल की युवावस्था को देखकर पिता पेरियाल्वार विवाह के लिए चिंतित होने लगे तो आण्डाल ने लौकिक विवाह करने से मना कर दिया। एक दिन भगवान् श्री रंगनाथ आण्डाल के पिता के स्वप्न में आए और कहा—आप ज्यादा चिंतित न हों, मैं आपको एक शुभ दिन बताऊँगा और उस दिन आपकी बेटी को आप मुझे सौंपेंगे ताकि मेरा, मेरी प्रेमिका आण्डाल से मिलन हो। यह सुनकर हर्षित पेरियालवार ने भगवान् को पुनः नमस्कार किया और बेटी के विवाह की तैयारी शुरू की। भगवान् रंगनाथ के साथ आण्डाल के विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई। भगवान् रंगनाथ जी के मंदिर से आण्डाल के लिए पालकी, चँवर, छत्र, लेकर रंगनाथ जी के सेवक आए तथा पिता पेरियालवार ने अपनी बेटी आण्डाल को पालकी में बैठाकर पूरे बारातियों के साथ मंगल वाद्ययंत्रों के साथ, श्री रंगनाथ मंदिर की ओर रवाना हो गए।

आण्डाल दुल्हन के वेष में सुसज्जित एवं आभूषणों से अलंकृत होकर श्री रंगनाथ मंदिर में पालकी से उतरी। उसके बाद मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश किया और जैसे ही आण्डाल ने श्रीरंगनाथ जी की प्रतिमा के चरणकमलों को छुआ वे श्रीरंगनाथ जी में सशरीर अंतर्धान हो गई।

विष्णु प्रिया आण्डाल की उपर्युक्त घटना से यह सिद्ध होता है कि आण्डाल ने परम योगेश्वर विष्णु भगवान् की भक्ति में लौकिक पति के दासत्व को अस्वीकार कर दिया।

पिछले पृष्ठों में मीरांबाई, अक्का महादेवी और आण्डाल के जीवन से जुड़े पहलुओं पर गौर करें तो स्पष्ट होता है कि अलौकिक प्रेम के समक्ष लौकिक प्रेम तुच्छ एवं नगण्य है। मीरां ने कृष्ण को अपना पति मान लिया, अक्का महादेवी शिव से विवाह कर बैठी तथा आण्डाल ने विष्णु रूप को ही अपना पति स्वीकार कर लिया। साहित्य की ये तीनों भक्त कवयित्रियाँ पति के दासत्व को पूर्ण अस्वीकार करती है तथा स्वयं अपने आप में सक्षम होकर निर्णय लेने की क्षमता लेने की शिक्षा स्त्री जाति को देती है। इनका चरित्र नारी जाति के लिए स्वतंत्रता की अलख जगाता है।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (संम्पादक) पदमावत (नागमती वियोग खण्ड), पृ. 149
2. डॉ. शंभुसिंह मनोहर — मीरां पदावली, पद 12, पृ. 107
3. तुलसीदास — रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, चौपाई–3, पृ. 562
4. वही, चौपाई 4, पृ. 562
5. वही, सुन्दरकाण्ड, पृ. 645
6. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत (सं.) — कबीर ग्रंथावली सटीक, विरह को अंग, दोहा–23, पृ. 92
7. वही, दोहा–7, पृ. 88
8. रेखा कस्तवार — स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, पृ. 64
9. वियोगी हरि (सं.) तुलसीदास : विनय पत्रिका, हरितोषिणी टीका, पद 89, पृ. 124
10. वही, पद 136, पृ. 181
11. वही, पद 170, पृ. 234
12. वही, पद 190, पृ. 262–263
13. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत (सं.) — कबीर ग्रंथावली सटीक, पृ. 122
14. वियोगी हरि (सं.) तुलसीदास : विनय पत्रिका, हरितोषिणी टीका, पद 198, पृ. 273
15. बी. डी. सिन्हा — दिल्ली सल्तनत, पृ. 144
16. मध्यकालीन भारतीय सांस्कृतिक अनुशीलन : युगबोध, पृ. 214 Internet - Google - (PDF file)
17. सत्यप्रकाश दुबे — भारतीय सभ्यता और संस्कृति, पृ. 221
18. रिचर्ड सी. टेम्पल — द वर्ल्ड आफ लल्ला, पृ. 371
19. कर्नल टॉड — एनालाइसिस ऑफ एन्टीक्विटीज़ आफ राजस्थान, पृ. 739–40
20. वही, पृ. 739–40

21. वही, पृ. 744
22. अवध बिहारी पाण्डे — उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ. 555
23. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (संम्पादक) पदमावत — मलिक मुहम्मद जायसी, (नागमती सती खण्ड), पृ. 280, 281
24. वही, पृ. 280-281
25. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत (सं.) — कबीर ग्रंथावली सटीक, कामी नर कौ अंग, पृ. 173
26. वही, पृ. 173
27. वही, पृ. 174
28. वही, पृ. 174
29. वही, पृ. 175
30. वही, पृ. 175
31. वही, पृ. 175
32. वही, पृ. 175
33. वही, पृ. 176
34. वही, पृ. 176
35. तुलसीदास — रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड, पृ. 663
36. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (संम्पादक) पदमावत — मल्लिक मुहम्मद जायसी (नागमती सुआ संवाद खण्ड), पृ. 34
37. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) भ्रमरगीत सार — सूरदास, समीक्षक : डॉ. हरिचरण शर्मा, पद 53, पृ. 221-222
38. जैनाचार्य मुमुक्षु, भव्यानन्द विजय 'कल्याण' नारी अंक (पतिव्रता के लक्षण), पृ. 264-265
39. तुलसीदास — रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, पृ. 536
40. वही, पृ. 536
41. वही, पृ. 537
42. वही, पृ. 537
43. वही, पृ. 537
44. वही, पृ. 537
45. वही, पृ. 537
46. वही, पृ. 537
47. वही, पृ. 537

48. वही, पृ. 537
49. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत (सं.) — कबीर ग्रंथावली, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग, पृ. 122
50. वही, पृ. 123
51. वही, पृ. 123
52. वही, पृ. 123
53. वही, पृ. 123
54. वही, पृ. 126
55. वही, पृ. 126
56. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) भ्रमरगीत सार — सूरदास, समीक्षक : डॉ. हरिचरण शर्मा, पद 33, पृ. 203-204
57. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (संम्पादक) पदमावत — मलिक मुहम्मद जायसी, (नागमती सती खण्ड), पृ. 143
58. प्रो. राजेश शर्मा (सं.) कवितावली — तुलसीदास, अयोध्या काण्ड, पृ. 103
59. वही, पृ. 103-104
60. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (संम्पादक) पदमावत — मलिक मुहम्मद जायसी, (लक्ष्मी समुद्र खण्ड), पृ. 166
61. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) भ्रमरगीत सार — सूरदास, समीक्षक : डॉ. हरिचरण शर्मा, पद 75, पृ. 245-246
62. पद प्रसंग माला, पृ. 193
63. सफल श्री संत गाथा : श्री एकनाथ यांची गाथा, पृ. 168
64. मुँशी देवी प्रसाद सिंह — मीरां बाई का चरित्र, पृ. 13
65. डॉ. शंभुसिंह मनोहर — मीरां पदावली, पद 23, पृ. 121
66. वही, पद 21, पृ. 120
67. वही, पद 26, पृ. 124-125
68. तुलसीदास — रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, पृ. 566-567
69. वही, पृ. 566
70. वही, पृ. 567
71. डॉ. शम्भूसिंह मनोहर — मीरां पदावली, पृ. 33
72. वही, पृ. 33
73. वही, पृ. 36

74. पद 9, वही, पृ. 104
75. वही, पृ. 105
76. वही, पृ. 107
77. अक्का महादेवी – भारत ज्ञान कोष, ज्ञान का हिन्दी महासागर, Internet - Google
78. स्त्री स्वर, पितृसत्ता के स्वर पर प्रश्न चिह्न लगाने वाली कन्नड भाषा की पहली महिला कवियित्री अक्का महादेवी, Internet - Google
79. आण्डाल : गुरु पंरपराई Internet - Google.

❑

चतुर्थ अध्याय

कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरां और अन्य भक्त कवियों की रचनाओं का नारी चिंतन की प्रासंगिकता के संदर्भ में अध्ययन

भक्तिकालीन कवियों का नारी चिंतन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी कृति 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में कहा है कि **"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है।"**[1] सारा का सारा भारतीय साहित्य नारी के विविध चित्रों से ओत-प्रोत है पर वास्तव में सत्य यह है कि जिस युग के समाज में नारी का जो स्थान था उस युग के साहित्य में नारी उसी रूप में चित्रित की गई है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की सारी मान्यताएँ, मर्यादाएँ, उसके युग के साहित्य में स्वत: उभर उठती है। यही कारण है कि भक्तिकाल में चित्रित नारी के विविध रूप अपने युग की नारी विषयक मान्यताओं के अनुसार ही हैं।

भक्ति काल का प्रारम्भ निर्गुण सन्तों की वैराग्यपूर्ण उक्तियों द्वारा हुआ। इस काल में आचरण की शुद्धता पर बल दिया गया इसलिए सन्तों ने साधना के पथ में नारी को बाधा स्वरूप माना। उसे माया, ठगिनी आदि विशेषणों से विभूषित किया गया। नारी जीवन के उज्ज्वल पक्ष इन सन्तों की दृष्टि से अपरिचित रहे। कबीर की निम्न पंक्तियाँ सन्तों की नारी सम्बन्धी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है। देखिए—

पर नारी राता फिरै, चोरी बिठता खांहि।
दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूलां जाहिं।।[2]

कबीर कहते हैं कि जो मनुष्य परस्त्री में अनुरक्ति रखता है एवं चोरी के धन बल पर समृद्ध होता है वह कुछ समय के लिए फल–फूल ले अन्त में उसे समूल नष्ट होना ही पड़ता है क्योंकि इन कुकृत्यों से लोक एवं परलोक दोनों ही बिगड़ते हैं।

कबीर ने नारी के प्रति ऐसे विचार क्यों व्यक्त किए क्योंकि उस युग में नारी भोग की वस्तु समझी जाती थी। उसके गौरवमय पक्षों को भुला दिया गया था। कबीर दास सन्त थे। उन्होंने सारी जनता को नारी के वासनात्मक पक्ष की ओर देखने से सचेत किया। वैसे उन्होंने नारी के प्रति घृणा प्रदर्शित नहीं की, पतिव्रता नारियों की उन्होंने प्रशंसा भी की है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने स्वयं को राम की बहुरिया माना है। उन्होंने नारी के विरहिणी, सती, पतिव्रता आदि स्वरूपों की प्रशंसा भी की है।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति के मूल में नारी है चाहे वह नकारात्मक रूप में है या वह सकारात्मक रूप में है। सूरदास की गोपियाँ, तुलसीदास की सीता का चरित्र–चित्रण, मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत में नागमती और पद्मावती का चरित्र–चित्रण और कबीरदास का साधना में बाधक नारी का चरिद्ध चित्रण भक्तिकाल के लगभग सभी कवियों ने महिला को मूल में रख कर अपनी लेखनी चलाई है।

भक्तिकाल में नाभादास कृत भक्तमाल में कवयित्रियों की एक सूची है—सीता, झाली, सुमति, शोभा, प्रभुता, उमा, भटियानी गंगा, गौरी, कुंवरि, उबीठा, गोपाली, गणेश देवरानी, कला, लखा, कृतगढी, मानुमति, सुचि, सतभामा, जमुना, कोली, रामा, मृगा, देवा, देभक्तन, विश्रामा, जुग, जेवा, कीकी, कमला, देवकी हीरा आदि कवयित्रियाँ हुई हैं लेकिन इनकी कविताएँ कहा गई, यह कोई नहीं जानता। भक्तिकाल की समस्त कवयित्रियां स्त्री कायाजनित वेदना और विद्रोह को अभिव्यक्त करती है। चाहे वह मीरा हो, लल्लेश्वरी हो, आण्डाल हो या जना बाई हो, भक्ति में भिगोई इनकी कविताओं में दमनकारी व्यवस्था के प्रति आक्रोश को सहज ही पहचाना जा सकता है। दु:ख की बात यह है कि इनमें से मीरां जैसी कुछ स्त्री कवयित्रियों की रचनाओं की जानकारी है, शेष कवयित्रियाँ पुरुष अधिकार क्षेत्र से चालित मठवाद की शिकार हो गईं। मीरां के पदों की उपेक्षा इसलिए नहीं हो सकी कि उनके पद राजस्थान के घर–घर और अन्य नीची जातियों के घरों में भी समान रूप से गाए जाते थे इसलिए मीरां का काव्य आज भी जीवित है।

कबीर के काल में लोई भी कविता लिखती थी लेकिन आज कहाँ मिलती है कबीर की पत्नी लोई की कविताएँ? एक सहज-सा प्रश्न उठता है कि क्या कबीर को संकलित करने वाले लोई की कविताओं को संकलित नहीं कर सकते थे? इसी प्रकार तुलसीदास की पत्नी रत्नावली भी कवयित्री थी, उन्होंने तुलसी से कहा था—

अस्थि चर्म मय देह मम तामै ऐसी प्रीति।
जो होती रघुनाथ से तौ न होती भवभीति।।

आज हमें कहीं भी रत्नावली की कविताओं के दर्शन तक नहीं होते हैं। भक्तिकाल में खास बात यह है कि पुरुष कभी स्त्री रूप में आराधना करते नजर आते थे तो कभी वे पुरुष हो जाते थे। ऐसी में स्त्री रचनाकारों की रचनाएँ उनके नाम के साथ खप जाने की भी एक संभावना नजर आती है। जैसे कबीर ग्रंथावली में एक पद मिलता है—

दुलहिन गावौ मंगलाचार।
हमारे घर आए राजा राम भरतार।।

एक और पद की प्रथम पंक्ति है—

मैं तो राम की बहुरिया।

हो सकता है कि ये पद कबीर की पत्नी लोई ने लिखे हो। लेकिन आज ठप्पा इन पर कबीरदास जी का ही है।

इसके अलावा इतिहास लेखन के समय परिचय अंकित करने के दोहरे मानक थे। यह हैरान कर देने वाली बात है कि किसी पुरुष कवि के विवरण के साथ उससे सम्बन्धित स्त्री का उल्लेख कर दिया जाता था। उदाहरण के लिए रीतिकाल के रीतिमुक्त कवि घनानन्द और सुजान का उल्लेख करना आवश्यक है। जिस रचना में घनानन्द का नाम है वह तो उनकी है ही, पर जिसमें सिर्फ सुजान का नाम है, वह भी घनानंद के नाम से ही है।

भक्तिकाल में एक ओर तो नारी को प्रतिष्ठित करने का प्रयास हुआ है दूसरी ओर स्त्री कवयित्रियों को दबाने का प्रयास हुआ है। ऐसे में यह सुनियोजित षड्यंत्र-सा लगता है कि जिसमें स्त्रियों की कविताओं को पुरुषों की साबित करके या स्त्रियों के चरित्र को हीन

और अविश्वसनीय बनाकर उनकी रचनाओं पर चुप्पी साधकर, या उनकी रचनाओं को अज्ञात लेखक की कविता कहकर उन्हें जानबूझ कर प्रकाश में नहीं आने दिया गया।

भक्तिकाल के आने के अनेक कारण कहे जाते हैं। कोई विचारक इसी भूमिका में ईसाई धर्म को देखते हैं तो कोई इसे हारी हुई मनोवृत्ति का परिणाम बताते हैं। किसी का ध्यान भक्ति की अनवरत धारा को देखने की ओर था तो कोई भक्ति आन्दोलन के कारण के रूप में व्यापार प्रसार को देखते हैं। भक्तिकाल एक सामंतवादी युग था। सामंतवादी मानसिकता स्त्री को वस्तु समझती है। भक्ति आन्दोलन का प्रादुर्भाव सामंती व्यवस्था के विरोध में हुआ। संत कवियों ने अपनी भक्तिपरक रचनाओं में सामाजिक सुधार को महत्त्व दिया। संतों ने जहाँ स्त्री के कामिनी और माया रूप की निन्दा की वही स्त्री के पातिव्रत धर्म को श्रेष्ठ बताया। इसका मूल कारण सामन्तवाद था। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार यह बात सिद्ध होती है कि कवि भी तो समाज का ही अंग होता है। वह जो कुछ समाज में अनुभव करता है वह उसकी लेखनी से उतरता है। सामंती व्यवस्था में स्त्री को कभी महत्ता नहीं दी गई। वह सदैव स्त्री को शरीर के रूप में देखती है और संभवत: संतों ने स्त्री के प्रति इसी दृष्टि की आलोचना की है। यदि संतों का उद्देश्य स्त्री की निंदा करना होता तो वे कभी भी स्त्री के पतिव्रता एवं सती रूप की प्रशंसा नहीं करते और स्वयं को स्त्री रूप में कल्पित नहीं करते। उनके अनुसार पतिव्रता स्त्री की भाँति आत्मा को परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ एवं आत्म समर्पण की भावना होनी चाहिए। स्त्री के स्वतंत्र स्वरूप का चित्रण कवि सूरदास ने किया है। कृष्ण से प्रेम करने वाली गोपियाँ अपने पतिव्रता धर्म को छोड़कर कृष्ण प्रेम में डूब जाती है। सूरदास के काव्य में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। कृष्ण प्रेम में गोपियाँ अपना सर्वस्व छोड़कर उसी में डूबा रहना चाहती है। गोपियाँ कृष्ण से बचपन से ही प्रेम करती हैं और वे कृष्ण का साहचर्य नहीं छोड़ना चाहती। देखिए—

लरिकाई को प्रेम, कहो अलि, कैसे करिकै छूटत?
कहा कहौ बृजनाथ, चरित, अब अंतगति यो लूटत।
चंचल चाल मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंद धुनि गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को वह विनोद वह बन ते आवत।
चरन कमल की सपथ करति हौं यह संदेस मोहि विष सम लागत।।[3]

सूरदास के उपर्युक्त पद से यह सिद्ध होता है कि गोपियाँ कृष्ण प्रेम के समक्ष किसी और चीज को महत्त्व नहीं देती। इसलिए गोपियों में स्वातंत्र्य भावना झलकती है। सूरदास की गोपियों की स्वतंत्रता का एक उदाहरण और देखिए—

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कैसे निरगुन सुनहि तिहारी विरहिनि विरह बिदुखी।
कहिए कहा यहाँ नहीं जानत, काहि जोग है जोग।
पा लागौ तुमही सो वा पुर बसत बावरे लोग।
अंजन, अभरन चीर, चारू, वरू नेकु आप तन कीजै।
दण्ड, कमण्डल, भस्म, अघारी, जो जुवतिन को दीजै।
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की ऊधो यह व्रत पायौ।
कहै कृपानिधि हो कृपाल हो, प्रेमै पढ़न पढायौ।।[4]

कविताओं में सर्वप्रथम नारी मुक्ति और समानता का पहला प्रयास सूरदास ने अपने काव्य में किया है। सूरदास ने अपने काव्य में गोपियों को एक वस्तु के स्थान पर व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। नारी के स्वाभिमान और गरिमा की रक्षा जिस प्रकार सूरदास ने की है, भारतीय साहित्य में ऐसे कम ही उदाहरण मिलते हैं। सामंती नैतिकता और जड़ संस्कृति तथा पतिव्रत धर्म के बंधनों का गोपियाँ स्पष्टत: अतिक्रमण करती हैं। वे पुरुष के समान ही सामाजिक क्रियाकलापों में हिस्सा लेती हैं। कृष्ण को वे सखा, मित्र और सहयोगी के रूप में स्वीकार करती हैं लेकिन मथुरा के राजा के रूप में अस्वीकार करती हैं। वे मानती हैं कि हमें राजा नहीं सखा कृष्ण की आवश्यकता है। वे सम्मानपूर्वक समानता का दर्जा तो स्वीकार करती हैं लेकिन सेविका और स्वामी का नहीं। मेरी दृष्टि में नारी मुक्ति और समानता का यह प्रथम प्रयास सूरदास ने ही किया है।

इसी प्रकार कवयित्री मीरां भी नारी मुक्ति की प्रतीक बन कर आई। एक सामंती परिवार में जन्म लेने के बाद भी मीरां ने सामंती जड़ नैतिकता और नारी को दासी समझने वाली संस्कृति को, सिद्धान्त और व्यवहार में चुनौती दी। मीरां का साहित्य स्त्री साहित्य के शीर्ष पर स्थान रखता है। मीरां ने अपने साहित्य में यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री तब भी

पुरुष की सहयोगी और साथी के रूप में महत्त्वपूर्ण थी। मीरां का साहित्य नारी मुक्ति का सबसे जीवन्त उदाहरण है। देखिए श्रीकृष्ण को पाती (चिट्ठी) लिखने के मीरां के उद्‌गार–

पतियां मैं कैसे लिखूँ, लिख्यो री ना जाय।
कलम धरत मेरो कर कंपत है नैन रहे झड़ लाय।
बात कहूँ तो कहत ना आवै जीव रह्यौ डरराय।
विपत हमारी देख चले तुम कहियो हरि सूं जाय।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर चरण कंवल ही रखाय।[5]

मीरां ने राजकुल में जन्म लेकर तथा राजकुल की वधू होकर भी जीवन अंत:पुर के कमरों तक ही आबद्ध नहीं रखा बल्कि अपनी व्यापक प्रेमानुभूति एवं भक्ति भावना के कारण उसका व्यक्तित्व विशेष हो गया। पहले तो उसने राजकुल की मर्यादाओं को यथा संभव स्वीकार करते हुए ही भक्तों और संतों के साथ–साथ सत्संग कर अपनी भक्ति सुधा शांत की किन्तु जब राजकुल के नियम उसमें बाधक बनने लगे तो मीरां ने उन्हें तिलांजलि दे दी और अपने आराध्य की क्रीड़ाभूमि वृंदावन की ओर चल पड़ी। कृष्ण प्रेम की उस सच्ची भक्त के समक्ष सारे लोक और कुलाचार के नियम ढह गए। किन्तु उस दरद दीवानी को वहाँ भी चैन कहाँ। वहाँ से मीरां अपने आराध्य की कर्मभूमि द्वारिका चली गई। स्पष्ट रूप से मीरां का व्यक्तित्व एवं कृतित्व नारी मुक्ति की वकालत करता है।

अब बात करें हम भक्तिकाल के प्रेमाश्रयी काव्य परम्परा के मलिक मुहम्मद जायसी के नारी चिन्तन के बारे में। सूफी काव्य धारा के अमर कवि जायसी की अपनी रचना पद्‌मावत में कथासूत्रों से जिस रचना तंत्र की रचना करते हैं वह आदि से अंत तक नारी चिंतन के चारों ओर घूमता है। पद्‌मावत में पद्‌मावती और नागमती को जिन जीवन संदर्भों में जायसी प्रस्तुत करते हैं उससे नारी अस्मिता को केन्द्र में रखकर नारी विमर्श को सही दिखा पाने के लिए एक सफल आधार मिलता है। पद्‌मावत में पद्‌मावती और नागमती को जिन जीवन संदर्भों में जायसी प्रस्तुत करते हैं उससे नारी अस्मिता को केन्द्र में रखकर नारी विमर्श को सही दिखा पाने के लिए एक सफल आधार मिलता है। पद्‌मावत में पद्‌मावती और नागमती का चरित्र–चित्रण मानव समाज में विसंगतियों से घिरे हुए नारी

जीवन की व्यथा कथा है। यह कथा पुरुष प्रधान समाज में नारी अस्मिता के संदर्भ में अनेक प्रश्न खड़े करके नारी चिंतन को गति प्रदान करती है।

पद्मावत में पद्मावती के प्रसंग में नारी जीवन को उसके बाल्यकाल से विवाहेत्तर काल तक देखा गया है। पुरुष प्रधान समाज में नारी का अस्तित्व पुरुष की भोग्या के रूप में ही देखा जाता रहा है। पुरुष अपनी कुण्ठा से ग्रस्त हो उसे वर्जनाओं के घेरे में बचपन से ही डालना चाहता था। मध्यकाल (भक्तिकाल) में पुरुष नहीं चाहता था कि विवाह से पूर्व किसी भी नारी को काम भावना का बोध हो। पुरुष का यह सोच नारी के स्वाभाविक मनोविज्ञान के विपरीत है। लेकिन नारी के स्वाभाविक काम विकास को वर्जनाओं की बेड़ियों में जकड़ कर नहीं रोका जा सकता। पुरुष की इसी कुण्ठा का प्रतिफल है कि नारी पुरुष संबंधों को लेकर समाज में निरन्तर टकराहट की स्थिति बनी रहती है। जायसी पुरुष की इस कुण्ठा और नारी मनोविज्ञान के अनुपम पारखी हैं। वे पद्मावती के विवाह पूर्व जीवन का चित्रण करते हैं—पद्मावती जब मात्र 12 वर्ष की होती है उसे पिता द्वारा वर्जनाओं की बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि स्त्री को बचपन से ही पिता के कैद रूपी पालनपोषण में समय व्यतीतकरना पड़ता था। देखिए पद्मावत की यह चौपाइयाँ—

बारह बरस मांह भै रानी। राजै सुना संजोग सयानी।।
सात खण्ड धौराहर तासू। सो पद्मिनी कह दीन्ह निवासू।।
औ दीन्ही संग सखी सहेली। जो संग करे रहसि रस केली।।
सवै नवल पिउ संग न कोई। कंवल पास जनु विगसी कोई।।[6]

जायसी जानते हैं कि पुरुष की ये वर्जनाएँ नारी के स्वाभाविक विकास को नहीं रोक सकती। पद्मावती में स्वाभाविक रूप से काम भावना का विकास होता है और अपने पिता रूपी पुरुष की इस मनोवृत्ति को लक्ष्य में रख कर पद्मावती नारी की विरह वेदना व्यक्त करती है। देखिए—

एक दिवस पद्मावत रानी। हीरामन तंह कहत सयानी।।
सुनु हीरामन कहौ बुझाई। दिन–दिन मदन सतावै आई।।
पिता हमार न चालै बाता। त्रासहि बोल सकै नहि माता।।

देस देस के बर मोहि आवहि। पिता हमार न आँख लगावहि।।
जोवन मोर भयऊ जस गंगा। देह देह हम लाग अनंगा।।
हीरामन तब कहा बुझाई। विधि कर लिखा मेटि नहि जाई।।
अज्ञा देऊ देखौ फिरि देसा। तोहि जोग वर मिले नरेसा।।[7]

मलिक मुहम्मद जायसी पद्मावती के द्वारा माता के सन्दर्भ से पति के त्रास से नारी के घुटन भरे जीवन की व्यंजना करते हैं। नारी की क्या अजीब नियति रही है कि वह अपने पति को उचित सलाह देने से भी डरती रही हैं। पद्मावती की माता अपने पति को भय के मारे पद्मावती के विवाह की उचित सलाह नहीं दे सकती।

नारी जीवन की यह नियति रही है कि वह हमेशा अपने भविष्य को लेकर अविश्वास और संशय से ग्रस्त रहती है। पितृगृह में रहते हुए जहाँ उसे वह अपना घर नहीं कह सकती, वही पतिगृह में होने वाले अनात्मीय व्यवहार को लेकर सदा आशंकित रहती है। जायसी नारी जीवन के इस आयाम को भी अपने नारी चिंतन में बड़े सहज ढंग से उठाते हैं। विवाह के बाद नारी के प्रति ससुराल पक्ष से होने वाले व्यवहार और अत्याचारों की व्यंजना जायसी की इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है—

ए रानी मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारि।।
जो लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू।।
पुनि सासुर हम गवनव काली। कित हम, कित यह सरवर पालि।।
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलव एक साथा।।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेही। दारुन ससुर न निसरै देहि।।
पिऊ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुं काह।
दहु सुख राखै की दुःख दहुं, कस जनम निवाह।।[8]

यदि इन चौपाइयों पर विशेष ध्यान दिया जाए तो इससे जायसी के नारी चिंतन की वह सुगंध निकलती है जो नारी की उस नियति से जुड़ी हुई है जहाँ नारी हमेशा से दो परिवारों द्वारा स्वीकृति और अस्वीकृति के बीच झूलती रहती है। नारी का जीवन टूटी डाली की तरह है जो पति के परिवार रूपी वृक्ष के साथ हमेशा विजातीय ही बनी रहती है। उसका मन हमेशा अपने जीवन और भविष्य को लेकर आशंकित बना रहता है। नारी

जीवन की यह विसंगति इस शताब्दी में भी जैसे की तैसे बनी हुई है। नारी मन की यह आशंका और पीड़ा जायसी के चिन्तक और संवेदनशील मन को झकझोरती है और वे पद्मावती के स्वर में नारी चिंतन के एक आयाम को आधार देते हैं। एक–दो प्रसंग ही नहीं पद्मावत का पूरा कथानक मध्यकालीन भक्तिकाव्य में अभिव्यक्त नारी चिंतन का उदाहरण है। रत्नसेन द्वारा पद्मावती की प्राप्ति के लिए नागमती को छोड़ कर जाना, अलाउद्दीन खिलजी का पद्मावती के प्रति दैहिक रूप से आकर्षित होना, देवपाल प्रकरण सभी जायसी के नारी चिंतन के परिप्रेक्ष्य में देखे जा सकते हैं।

हिन्दी रामभक्ति काव्य के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास नारी चिंतन के अनेक आयामों को लेकर अपनी रामचरित मानस का ताना–बाना बुना है। तुलसीदास ने अपनी रामकथा का कथानक तो परंपरागत रूप से लिया है पर चिंतन और परिप्रेक्ष्य को उन्होंने वर्तमान और भविष्य से जोड़ा है। तुलसी नारी अस्मिता से जुड़े विविध प्रसंगों को उठाकर नारी चिंतन की धारा को कई आयाम देते हैं। सीता का स्वयंवर, सीता का वनगमन, सूर्पणखा प्रसंग सीताहरण प्रसंग, अहिल्या प्रसंग, तारा, मन्दोदरी आदि के प्रसंग नारी चिंतन के विविध आयामों को बड़े सशक्त ढंग से व्यंजना करते हैं। तुलसी पर नारी विरोधी होने का आरोप भी लगाया जाता है जो कि सही नहीं है। तुलसी ने नारी के शील की जकड़न की कसमसाहट को अपने नारी पात्रों में अभिव्यक्त किया है। तुलसी जानते हैं कि शील और मर्यादा के नाम पर नारी को किस प्रकार बंधनों में जकड़ दिया गया है कि उसके मन में लड़की होने का एहसास उसे हमेशा विवशता का बोध कराता है। यहाँ तक कि वह अपने जीवन साथी के वरण के लिए भी वह स्वतंत्र नहीं है। वरण की बात तो दूर वह अपने मन की बात किसी से नहीं कह सकती है कि उसे कैसा वर चाहिए। सीता स्वयंवर प्रकरण, स्वयंवर प्रथा का एक मजाक उड़ाने जैसा है। स्वयंवर में लड़की द्वारा अपने पति का स्वयं ही वरण करने की अवधारणा निहित। तुलसी इस अवधारणा को भलीभाँति जानते हैं। वे इस प्रकरण को रामकथा में उठाते हैं। अपनी रचना गीतावली में सीता अपने होने वाले पति के सम्बन्ध में अपनी कामना प्रकट करना चाहती है लेकिन लड़की होने का बोध और शील का बंधन उसे अपनी कामना व्यक्त करने से रोक देते हैं। यह उसकी विवशता है। देखिए—

पूजा पारवती भले भाय पांय परिकै

सजल सुलोचन सिथिल तनु पुलकित,

आवै न वचन मन रह्यौ प्रेम भरि कै।

अंतर जामिनी भव भामिनी स्वामिनी सौं है

कही चाहौ बात मातु अन्त तौ हौ लरिकैं।[9]

सीता पार्वती की पूजा कर रही है (पति की कामना से)। पार्वती के पैरों को छू रही है। उसका मन प्रेम से भरा हुआ है। सीता, माता पार्वती को अन्तर्यामी जगत की स्वामिनी मानती है। मैं आपसे पति के विषय में प्रार्थना करती हूँ कि हे माता! मुझे श्रेष्ठ पति प्रदान करो (आखिर मैं लड़की ही हूँ)।

रामचरित मानस की रामकथा का धनुष यज्ञ प्रसंग नारी जीवन की नियति को लेकर तुलसी के नारी विमर्श का एक नया आयाम है। तुलसी की रामचरित मानस की सीता राम से विवाह करना चाहती है लेकिन पिता की धनुष तोड़ने की असंगत हठ को लेकर सीता के मन में उठता उसका करुण क्रन्दन नारी जीवन की विवशता की कथा कह रहा है। देखिए—

सकुचि सिय तव नयन उघारे। सनमुख दोऊ रघु सिंह निहारे।

नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरु पिता पनु मनुअति सोभा।।[10]

जानि कठिन सिव चाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति।।

प्रभु जब जात जानकी रानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी।।[11]

तुलसीदास जी का नारी चिंतन केवल सीता जी के मन के क्रन्दन की अभिव्यक्ति से ही संतुष्ट नहीं होता। वह नारी में छिपी विद्रोही भावना को सीता की माता के स्वर में व्यक्त करते हैं। सीता की माता राजा जनक की अविवेकपूर्ण प्रतिज्ञा से सीता के जीवन के प्रभावित होने की आशंका से पति के प्रति विद्रोही स्वर में मुखर हो उठती है।

सखि सब कौतुक देख निहारे। जेउ कहावत हितु हमारे।।

कोउ न बुझाई कहई गुर पाही। बालक असि हठ भळ नाही।।

भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कछु जात ना जानी।।[12]

राम कथा के उपर्युक्त प्रसंग तो तुलसी के नारी चिंतन की भूमिका भर कहे जा सकते हैं। राम कथा के पूरे रचनातंत्र में तुलसी का नारी चिंतन है। यह कहा जा सकता है कि रामचरित मानस तुलसीदास ने राम के लिए नहीं अपितु सीता रूपी नारी के लिए लिखी है। ऐसा लगता है कि तुलसी ने रामकथा लिखने के बहाने से अपने नारी चिंतन को ही स्पष्ट किया है।

अपने पिया के रूप दर्शन की इच्छा को तुलसी ने कवितावली में कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। देखिए—

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माही।
गावति गीत सवै मिलि सुन्दरि वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाही।
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाही।
याते सवै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाही।।[13]

नारी मन की सुन्दर अभिव्यक्ति इस पद्य में हुई है। सीता राम को स्मरण करते हुए कह रही है—

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति?
राजिव दल नयन कोमल, कृपा-अयन,
मयननि बहु छवि अंगनि दूरति,
सिरसि जटा कलाप पानि सायक
चाप उरसि रुचिर बनमाल लूरति
तुलसीदास रघुबीर की सोभा सुमिरि
भई है मगन नहि तन की सूरति।।[14]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि महात्मा तुलसीदास की नारी दृष्टि श्रेष्ठ रही है। उन्होंने कदम-कदम पर अपने काव्यों में नारी मन को छूने की कोशिश की है। हालाँकि कई स्थानों पर तुलसी ने नारी निंदा भी की है लेकिन उसे संदर्भ, प्रसंग के अनुसार देखा जाना चाहिए।

मनोविकृतियों की जननी नारी

भक्तिकाल के सर्वाधिक क्रांतिकारी कबीर ने अपने काव्य में नारी जाति को जहाँ सती आदि कहकर प्रशंसा की वहीं उसके व्यक्तित्व को गलाने का भी पूरा प्रयास किया। उन्होंने सतवंती पतिव्रता के स्वरूप की प्रशंसा जरूर की लेकिन नारी पतिव्रता के अनुशासन से कहीं बाहर ना चली जाय इसलिए उन्होंने नारी निंदा के दोहे लिखे। उन्होंने 'नारी नदी अथाह जल बूडि मुआ संसार', 'नागिन के तो दोय फन नारी के फन बीस', 'नारी की झांई पडत अँधा होत भुजंग', 'नारी बड़ा विकार' आदि कहकर नारी जाति की घनघोर निंदा की है। कई स्थानों पर कबीर ने नारी जाति के लिए अपना विष वमन किया है। ध्यान, धारणा, समाधि, उपासना आदि के लिए स्त्री को व्यवधान बता कर उन्होंने उसकी आध्यात्मिक और बौद्धिक शक्ति का अपमान भी किया है। ज्ञातव्य है कि कबीर ने विस्तार से स्त्री विरोधी विचार ही प्रकट नहीं किये हैं, बल्कि भक्त होने के कारण सती प्रथा को भी गौरवान्वित किया है। कबीर को आडम्बर पर गुस्सा आता है। इस गुस्से में उन्होंने स्त्रियों तक को नहीं बक्शा है। गंगा स्नान करने जाती स्त्रियों के लिए देखिए कबीर क्या कहते हैं——

चली कुल बोरनी गंगा न्हाय।
सतुवा कराइन बहुरी भुंजाइन घूँघट ओटे भसकत जाय।
गठरी बांधिन मोटरी बांधिन खसम के मूंडे दिहिन धराय।
बिछुआ पहरिन औठा पहरिन, लात खसम के मारिन धाय।
गंगा न्हाइन जमुना न्हाइन नौमन मैल लिहिन चढाय।
पाँच पच्चीस के धक्का खाइन, घरहुं की पूँजी आई गंवाई।।[15]

कबीर दास जी नारी को मनोविकृतियों की जननी मानते हैं। कबीर पुरुष को पथभ्रष्ट करने में सीधा-सीधा नारी को दोष देते हैं——

नारी की झांई परत अँधा होत भुजंग।
कह कबीर तिन की गति, जो नित नारी के संग।[16]

अर्थात् नारी की छाया पड़ने पर तो साँप भी अन्धा हो जाता है। कबीरदास जी कहते हैं कि उन पुरुषों की क्या गति होगी जो नित्य ही नारी के संग रहते हैं।

कबीर ने इस दोहे के माध्यम से सीधा–सीधा गृहस्थ जीवन शैली पर प्रहार किया है। गृहस्थ जीवन में ही तो स्त्री हमेशा पुरुष के साथ ही रहती है तो क्या गृहस्थ धर्म कबीर की दृष्टि में निन्दित है? कबीर इस दोहे के माध्यम से सीधे–सीधे अपने वैवाहिक जीवन पर भी प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं, जो कि सर्वथा अनुचित है। स्त्री और पुरुष तो गृहस्थ जीवन के दो पहिये हैं जिनसे संसार चलता है। स्पष्ट है कि कबीरदास मनोविकृतियों की जननी के रूप में नारी को मानते हैं।

स्वाभाविक रूप से अतिधर्मावलम्बी व्यक्ति स्त्री विरोधी होता है क्योंकि स्त्री जाति लगभग हर धर्म में त्याज्य या तुच्छ वस्तु बताई गई है। कबीरदास जी निर्गुण एवं निराकार ईश्वर के उपासक थे। उनके लिए ज्ञान और योग ईश्वर तक पहुँचने के रास्ते थे जिनमें निर्वेद और वैराग्य का भाव प्रधान था। लगभग सभी धर्मों में ज्ञान और स्त्री को दो परस्पर विरोधी चीजें मानकर देखा गया है जबकि स्त्री त्याग को वैराग्य का नाम दिया गया है। कबीर की सोच पर वैष्णव सम्प्रदाय और सूफीयाना प्रेम मार्ग का जबर्दस्त प्रभाव था। हालाँकि दोनों मार्गों में परस्पर विरोध भी है। वैष्णव जहाँ परमात्मा को पुरुष और जीवात्मा को स्त्री मानते हैं वही सूफी लोग परमात्मा को स्त्री और जीवात्मा को पुरुष मानते हैं। कबीर वैष्णव सम्प्रदाय के ज्यादा नजदीक लगते हैं। जब वो स्वयं को स्त्री (पत्नी) एवं ईश्वर को पुरुष (पति) के रूप में देखते हैं। देखिए—

दुलहिनि गावहु मंगलाचार।
हमारे घर आऐ राजा राम भरतार।

तथा—

कहै कबीर मैं कछु न कीन्हा।
सखी सुहाग राम मोहि दीन्हा।।

कबीर के अनुसार स्त्री से दूर होना वैराग्य है। ज्ञान प्राप्ति ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग है और स्त्री तरह–तरह के यौनाकर्षण कृत्यों द्वारा मायाजाल में बाँधकर रखती है। इस तरह ज्ञानरूपी रास्ता जो ईश्वर तक जाता है उसमें स्त्री सबसे बड़ी बाधक है। अत: स्त्री का त्याग यानी वैराग्य ही मुक्ति का एकमात्र रास्ता है। कबीर दास जी स्पष्ट कहते हैं—

नारी तो हम भी करी जाना नहीं विचार।
जब जाना तब परिहरि नारी बड़ी विकार।।[17]

अर्थात् कबीरदास जी कहते हैं कि हमने भी विवाह किया। स्त्री का संग तो हमने भी किया लेकिन तब मन में यह विचार नहीं किया कि स्त्री संग अच्छा नहीं होता है लेकिन हमने जब यह जाना कि नारी मनोविकृतियों की जननी है तब हमने उसे त्याग दिया। नारी अपने आप में सबसे बड़ा विकार है।

महाकवि तुलसी ने भी नारी को हृदय से विकृति उत्पन्न करने का साधन माना है। नारी के प्रभाव से मनुष्य दूषित हो जाता है। अगर महिला को अनावश्यक बल मिल जायें तो वह और भी विकृत करने में भयंकर हो सकती है। नारी तो वैसे ही मनोविकृतियों की जननी है। अनावश्यक शक्ति पाकर वह पुरुषों को भी भ्रष्ट कर सकती है। तुलसीदास जी का दोहा देखिये——

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ।।[18]

तुलसीदास जी अग्नि, समुद्र, स्त्री और काल की समानता करते हुए कहते हैं कि अग्नि क्या नहीं जला सकती, समुद्र किसे नहीं डुबो सकता, बल पाकर अबला स्त्री क्या नहीं कर सकती, जगत में काल किसको नहीं खा सकता।

उपर्युक्त दोहे में तुलसीदास ने नारी को भयंकर कारकों के साथ जोड़कर देखा है और उसकी समानता नकारात्मक वस्तुओं के साथ करते हैं। अग्नि, समुद्र, काल (मृत्यु) आदि के साथ तुलना करके, स्त्री को भी नकारात्मक स्थिति में प्रदर्शित किया गया है। इसका अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि स्त्री को अनावश्यक सामर्थ्य प्रदान नहीं करना चाहिए नहीं तो वह अग्नि, समुद्र तथा मृत्यु के समान महाभयंकर हो जाती है। इसके पीछे शायद यही दृष्टि तुलसी की रही होगी कि नारी को राजनीतिक रूप से सशक्त नहीं होने देना चाहिए। वह बाह्य कार्यक्रमों में भाग लेने से बचनी चाहिए। निश्चित ही कवि अपने काल (समय) से प्रेरित होता है। उस समय नारी की यही स्थिति थी। मध्यकाल (भक्तिकाल) में नारी को सशक्त बनाने के बजाय अबला ही बनाने पर जोर दिया जाता था। तुलसीदास जी मानते हैं कि नारी का अस्तित्व ही पुरुष को भ्रष्ट करने में सक्षम हैं। तुलसीदास ने नारी को

दीपक की अग्नि की लौ के समान बताया है, जिसके आकर्षण में पड़ कर पुरुषरूपी पतंगा (कीड़ा) जल जाता है। देखिए——

दीपसिखा सम जुवति तन–मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग।।[19]

तुलसी नारी को काम का मूल केन्द्र बताते हैं और मनुष्य को काम से दूर रहने की सलाह देते हैं। तुलसीदास मानते हैं कि काम भावना एक मनोविकृति है। देखिए——

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञान धाम मन करहि निमिष महुं छोभ।।[20]

उपर्युक्त दोहे से प्रतीत होता है कि गृहस्थ व्यक्ति को स्त्री के कारण कामभावना की मनोविकृति तो आये ही, साथ–साथ वह क्रोधी भी बन जायेगा क्योंकि वह गृहस्थ जीवन की उलझनों की वजह से अकारण ही अपनी स्त्री और बच्चों पर क्रोध करता रहेगा। साथ ही उसे स्त्री एवं परिवार की माँग के कारण धन संचय की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जायेगी जिससे वह लोभी मानसिकता से युक्त हो जायेगा। हमेशा धन जमा करने की सोचता रहेगा।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में स्त्री के साथ न्याय नहीं किया। यह कहना ठीक नहीं है बल्कि उसने नारी के साथ बहुकोणीय अन्याय किया, यही कहना ठीक है। भक्ति की पूरी अवधारणा ही पुरुषवादी है। ईश्वर चाहे पिता रूप में हो या पति रूप में अथवा और सहज होकर सखा रूप में, वो है तो मर्द ही। भक्तिकाल के सारे संतों ने नारी को अकारण दण्ड दिया। उस समय स्त्री की घोर दुरावस्था थी पर वे उसके प्रति निरपेक्ष रहकर अध्यात्म की फाकामस्ती करते रहे ऊपर से नारी से बराबर ये अपेक्षा करते रहे कि वह पुरुष के जीवन को अपने पतिव्रता रूप से गुलजार करती रहे। वह मान का दायित्व निभाती रहे यानि बच्चों की प्रजनन मशीन बनी रहे यानि पति नामक थोपे गए पुरुष विशेष की एकनिष्ठ यौनदासी बनी रहे। इतना ही नहीं उस पतिरूपी पुरुष की मृत्यु पर वह सती होने का निर्वाह भी करे और स्वयं का आत्मोत्सर्ग कर दे और उसकी चिता पर जल जाए। कबीर और जायसी जैसे कवि नारी से ये अपेक्षा रखने में सबसे आगे थे। तुलसीदास भी नारी सशक्तिकरण की बात दबे स्वर में करते हैं। सूरदास के काव्य में नारी व्यावहारिक

धरातल पर स्वच्छन्द तो है परन्तु मूल्यों के स्तर पर वह भी बंदिनी है। नारी के सारे अधिकार छीन कर उसे पितृसत्तात्मक शोषण की भीषण यातना चक्की में पीसे जाने की संस्कृति पर तो भक्त कवियों ने कोई सवाल नहीं खड़ा किया ऊपर से अपनी जहरीली जबान से नारी को निन्दित करने का कार्य जरूर किया। भक्तिकाल के आन्दोलन में जितने गीत महापुरुषों के गाये गए उतना ध्यान स्त्री जाति की उन्नति के विषय में नहीं कहा गया। संत काव्य में नारी निन्दा प्रतीकात्मक है और कुलटा नारी की निंदा करते हुए उन्होंने सती और पतिव्रता की प्रशंसा भी की है। उन्होंने यौन भाव को निन्दित माना और पुरुष की दुर्बलता के कारण स्त्री नारी पर ही प्रतिबन्ध लगाना उचित समझा। कुछ संतों ने संतुलित दृष्टिकोण का परिचय भी दिया। संत दादूदयाल ने शीलवंत पुरुषों पर विचार करते हुए कहा जो पुरुष नारी को देख कर नारी हो जाये वह शीलवंत है अर्थात् स्त्री को देख स्त्री हो जाना ही ठीक है। संत दादूदयाल के अनुसार नारी और नर एक-दूसरे के बैरी हैं। नारी नर को पीती है और नर-नारी को खाता है। इस प्रकार दोनों अज्ञानवश दोनों में विलीन हो जाते हैं।

संत रज्जब का एक प्रश्न बड़ी परेशानी में डालने वाला है कि प्रत्येक स्त्री मातृरूपा है तो फिर उसमें भोग-विलास कैसे किया जा सकता है। आश्चर्य यह है कि उन्होंने शरीर और आत्मा के धर्म को एक कैसे मान लिया, शरीर तो माता, वधू, कन्या आदि अनेक रूप धारण करता है। पर आत्मा इनसे परे है। मुश्किल ये है कि ये लोग नारी को सिर्फ देह के रूप में देख पाते हैं। संत सुन्दरदास ने नारी की सहराहना करने वालों को महागंवार बताया है। नारी शरीर की निंदा करते हुए वे कहते हैं कि उसका रोम-रोम मलिन है। सभी इन्द्रियाँ मलीन हैं, हड्डियाँ, मांस और मज्जा मेद और चमड़े से लिपटा है उसका शरीर, उदर में विकार और स्थान-स्थान पर रक्त भण्डार भरे हैं। वीभत्सता की पराकाष्ठा पर पहुँचते हुए उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि—

परूष मूत्र हू आँत एकमेक मिलि रहीं।

प्रश्न यह है कि क्या पुरुष के शरीर का निर्माण रक्त मांस, मज्जा अस्थि के अलावा किसी और तत्त्वों से हुआ है। संत गरीबदास कहते हैं कि जो बिना विचारे नारी में रत होता है, उसकी दुर्गति अवश्यंभावी है। कबीरदास भी कहते हैं—

नारि नसावै तीनि सुख, जो नर पासै होई।
भगति मुकति निज ज्ञान में, पैसि न सकई कोई।।[21]

कबीरदास जी ने नारी को धतूरे से भी ज्यादा खतरनाक बताया है। देखिए—

एक कनक अरु कामिनी विष फल की एऊ पाई।
देखे ही थे विष चढ़े खाए सूं मर जाय।।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि मध्यकाल (भक्तिकाल) में लगभग समस्त कवियों ने पुरुष की मनोविकृतियों के मूल में नारी को माना है। नारी के अस्तित्व से पुरुष की साधना दूषित हो सकती है, ऐसा उन्होंने माना लेकिन विरोधी बात यह है कि स्वयं कबीरदास तो जीवन पर्यन्त अपनी पत्नी लोई के साथ रहते रहे उसका तो उन्होंने त्याग नहीं किया फिर कबीर ने औरों को नारी से दूर रहने की शिक्षा क्यों दी, यह यक्ष प्रश्न है। यह तो वह बात हुई कि वैद्य जी खुद तो बैंगन खाएँ और दूसरों को निषेध बतायें। तुलसीदास भी नारी का स्वाद चख कर पश्चात् रामभक्त बने और बाद में कई स्थानों पर उन्होंने भी नारी निंदा की। कहा जाता है कि कबीर के पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। दो पुत्र–पुत्रियों का पैदा होना और उनका बड़ा होना पूर्ण गृहस्थ जीवनयापन करने पर ही संभव है। फिर भी कबीर ने औरों को स्त्री से दूर रहने की शिक्षा देकर उसे मनोविकृतियों की जननी कहा।

स्त्री के मानवीय स्वरूप की उपेक्षा

भक्तिकालीन कवियों में से अधिकतर कवियों ने स्त्री के मानवीय स्वरूप की उपेक्षा की है। भारत में यदि किसी का सबसे ज्यादा शोषण हुआ है तो वह स्त्री है फिर वो चाहे किसी भी जाति या धर्म की हो। पुरुषवादी सोच ने हमेशा उसको अपनी निजी संपत्ति समझा इसलिए उस पर समय–समय पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध लगाए, पर्दा–प्रथा, पराए पुरुष से बात ना करना, घर की चारदीवारी में रहना, पिता की सम्पत्ति पर अधिकार न होना, स्त्री को पराया धन समझना आदि ऐसे नियमों को अपने काव्य में बहुतायत रूप से स्थान दिया। ताकि पुरुष हमेशा स्त्री का शोषण कर सके। एक बालिका बचपन में अपने पिता के अधीन, युवावस्था में अपने पति के अधीन और वृद्धावस्था में अपने पुत्रों के अधीन रहती है। यानि पुरुष वर्ग ने उसे हमेशा मानव के स्तर पर मानसिक रूप से कमजोर

रखा है ताकि वो उसकी दासता से मुक्त ना होने पाए। हिन्दू-धर्म में स्त्री के बारे में कहा गया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।।

अर्थात् जहाँ पर स्त्रियों की पूजा की जाती है वहाँ देवता निवास करते हैं, जहाँ उनकी पूजा नहीं होती वहाँ सब काम निष्फल होते हैं।

परन्तु क्या कारण है कि जहाँ स्त्रियों को पूजनीय समझा जाता था उसके बिना हर कार्य को निष्फल समझा जाता था वहीं स्त्री की इतनी दुर्दशा हो गई कि इसके पैदा होने से पहले ही लोग इसे मारने लगे। रामभक्त कवि तुलसी दास ने स्त्री के मानवीय स्वरूप की उपेक्षा करके लिखा—'**ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताडना के अधिकारी**'। यह चौपाई हिन्दू स्त्री के पतन का मुख्य कारण बनी। परवर्ती समाज में इस चौपाई का उदाहरण दे देकर स्त्री पर जुल्म ढाए गए। तुलसीदास द्वारा रचित रामचरित मानस अवधी भाषा में होने के कारण उत्तर भारत में अधिक प्रसिद्ध हैं और यदि देखा जाए तो उत्तर भारत में ही स्त्रियों की दशा ज्यादा खराब एवं दयनीय है। इसका अंदाजा हम इसी बात से लगा सकते हैं कि केरल, उड़ीसा, पाण्डिचेरी, तमिलनाडु जैसे गैर हिन्दी राज्यों में कन्या जन्म दर उत्तर भारत के राज्यों, जैसे—बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब की अपेक्षा कहीं अधिक है। यह निश्चित है कि स्त्री के प्रति सम्मान कम तो जन्म दर भी कम होगी, जितना अधिक लिंग भेद होगा स्त्री का शोषण भी उतना ही अधिक होगा। जितना रामचरितमानस की नारी विरोधी चौपाई का प्रचार-प्रसार होता गया उतना ही अधिक स्त्री-शोषण भी बढ़ता गया।

रामचरित मानस के बारे में एक कथा प्रचलित है कि तुलसीदास जी ने मानस पूरी कर ली तो उन्होंने काशी में जाकर इसे सुनाया। वहाँ के ब्राह्मणों को उनसे ईर्ष्या होने लगी और उन ब्राह्मणों ने रामचरित मानस को नष्ट करवाना चाहा जिससे डर कर तुलसीदास ने मानस को अपने मित्र टोडरमल के घर कुछ समय के लिए रखवा दिया। टोडरमल अकबर के नवरत्नों में से एक थे और अकबर द्वारा लगाए गए 'जजिया कर' का हिसाब-किताब रखते और उनका मुख्य काम था जजिया कर न देने वाली औरतों को अकबर के हरम में

भेजना। तुलसीदास जी के काल में हुकूमत अकबर की थी तो यह संभव नहीं था कि बिना बादशाह की इजाजत के इतने व्यापक रूप से मानस का प्रचार हो पाता? इस्लाम में स्त्रियों की हालत क्या हैं, यह वर्णन करने की जरूरत नहीं है। पर्दाप्रथा, मस्जिद में नमाज पढ़ने पर प्रतिबंध, स्त्री यदि शौहर का कहना ना माने तो उसको पीटने का अधिकार, औरत की गवाही आधी मानी जाती थी। हो सकता है कि रामचरित मानस में कुछ चौपाइयां दबाव से लिखवा दी गई हो या ये भी हो सकता है कि तुलसी स्वयं इस्लाम धर्म से प्रेरित हो गए हों और फिर स्त्री विरोधी बातें लिखी हों क्योंकि कवि निश्चित रूप से अपने युग से प्रेरित होता है।

बाल काण्ड रामचरित मानस में सती (पार्वती) रामचन्द्र जी की परीक्षा लेने सीताजी का वेष लेकर जाती है। सती राम से कपट करती है, जिसके बारे में गोस्वामी जी कहते हैं—

सती कीन्ह चह तह ऊं दुराऊ। देखहु नारि सुभाऊ प्रभाऊ।।[22]

इससे नारी का कपट का सहज स्वभाव प्रगट हो जाता है। इसी प्रसंग में जब सती लौट कर शिव जी के पास आती है तो वे पूछते हैं कि कैसे परीक्षा ली। सती कहती है कि उन्होंने कोई परीक्षा नहीं ली। शिवजी ध्यान लगाकर जान लेते हैं कि सती ने क्या किया था। शिवजी ने अपने मन में प्रण किया कि अब सती के इस शरीर से उनका कोई शारीरिक सम्पर्क नहीं होगा। उन्होंने सती को त्यागने का मन में विचार धारण कर लिया क्योंकि उन्होंने राम की परीक्षा ली और शिवजी की नहीं मानी। तुलसीदास जी ने पार्वती के स्वगत कथन में सती रूपी नारी को मूर्ख ओर बेसमझ कहलवाया है। देखिए—

सती हृदय अनुमान किय सब जानेउ सर्वग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभू सन्, नारि सहज जड़ अग्य।।[23]
संकर रूख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेऊ हृदयं अकुलानी।
निज अध समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवां इव उर अधिकाई।।[24]

मध्यकाल में वस्तुत: नारी की यही स्थिति थी। तुलसीदास ने अपनी कृति रामचरित मानस की कथावस्तु वालमीकि कृत रामायण से ली लेकिन रामायण और रामचरित मानस की कथा में बड़ा ही अन्तर है। तुलसीदास ने अपनी कृति में कई स्थानों

पर कल्पना का प्रयोग कर मौलिकता प्रदान की है। तद्‌युगीन नारी सम्बन्धी नकारात्मक विचार उन्होंने अपनी कृतियों में व्यक्त किए हैं।

भगवान् शंकर जैसे ईश्वर रूप अपनी पत्नी पार्वती को छोड़ सकते हैं तो सामान्य जन की बात ही क्या? देखिए सती (पार्वती) का दुःख—

पति परित्याग हृदय दुखु भारी। कहई न निज अपराध विचारी।।
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी।।[25]

अयोध्या काण्ड में जब मंथरा कैकेई को फुसला रही है, कैकेयी पहले यूँ सोचती है—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकानि।।[26]

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि तुलसीदास ने स्थान-स्थान पर नारी के मानवीय रूप की उपेक्षा की है। उसे अपंग व्यक्तियों के साथ रखकर नि:सहाय मानने की प्रेरणा दी है। खुद कैकेयी मंथरा के विषय में मानती है कि यह तो निम्न मानसिकता युक्त नारी है। निश्चित ही ये विचार तुलसी के हैं जो कि अपने युग से प्रेरित हैं।

भक्तिकाल के संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास जी ने भी स्त्री के मानवीय स्वरूप की उपेक्षा की है। मध्यकाल (भक्तिकाल) में सतीप्रथा अपने सबसे घृणित रूप में पूर्ण यौवन पर थी। स्त्री को अपनी इच्छा या अनिच्छा से पति के साथ जलना ही पड़ता था। कबीर ने अपने कई दोहों में सती-प्रथा का समर्थन किया है। देखिए—

सती बिलारी सत किया, काठौ सुज बिछाई।
ले सूती पिव आपणा, चहु दिसि अगनि लगाई।।[27]

सोचने की बात यह है कि साधना और ईश्वर के विषय में कबीरदास ने सती होने का उदाहरण क्यों दिया। स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में सती-प्रथा जोरों पर थी और सती होना भी एक सामान्य बात थी। उल्टे कबीर को तो यह चाहिए था कि स्त्री की देह को सृष्टि का परम सौन्दर्य मानकर उसे जीवित रहने की शिक्षा देनी चाहिए थी लेकिन नारी को सती

करने की वकालत करके उन्होंने अपने नारी निंदक होने का स्पष्ट प्रमाण दे दिया। कबीर दास ने सती होने के समर्थ में और भी दोहे लिखे हैं। देखिए—

सती जलन कूं नीकली, पिव का सुमिर सनेह।
सबद सुनत जीव नीकलया भूलि गई सब देह।।[28]

उपर्युक्त दोहे में 'सबद' की गहराई में अगर जायें तो सती होने के लिए जब कोई स्त्री श्मशान में जाती थी तो उसे उत्तेजित और उत्साहित करने के लिए पुरुष वर्ग चारों ओर ढोल नगाड़े बजाता था और उसकी जय-जयकार करता था। इन ढोल नगाड़ों की ध्वनि कर्कश कर्णकटु होती थी। ऐसा लगता था मानो मौत ही आवाज दे रही हो। कई स्त्रियाँ तो अपने पति की चिता पर पहुँचने से पहले ही भय के मारे दम तोड़ देती थी। इस अप्रिय घटना को कबीरदास जी ने अपने साधना के उदाहरणों का माध्यम बनाया, यह आश्चर्य की बात है।

कबीर के काव्य में सती प्रकरण को लेकर बात करना इसलिए भी जरूरी है कि अब तक का सोच-विचार का पितृपक्षीय दायरा मध्ययुगीन काव्य में अधिक-से-अधिक शृंगार और मात्र कुछ धार्मिक आडम्बरों के विरोध भर को ही देख पाता है। धर्म के बाह्याडम्बर और शास्त्रीय जकड़बंदी के प्रति संवेदनशील मन का विद्रोह ही भक्ति है। उनके लिए भक्ति की शक्ति प्रेम की बराबरी और सघनता तक सिमटी है। कबीर के काव्य में सती प्रसंगों को सामने लाकर हम यह बताना चाहते है कि आधी आबादी जल रही है या जलाई जा रही है। अगर कोई स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् किन्हीं कारणों से जीवित बच जाती तो उससे मध्ययुग में यह प्रश्न जरूर पूछा जाता कि तू अगर वास्तव में पतिव्रता थी तो पति के साथ जली क्यूँ नहीं? देखिए—

विरहिन थी तो क्यू रही, जली नां पिव के नालि।
रहु रहु मुग्धा गहेलड़ी, प्रेम ना लाजूं मारि।।[29]

यहाँ सती-प्रथा को बल देने की परम्परा के साथ यह भी व्यंजित हो रहा है कि स्त्री को बोलने ही नहीं दिया जाता था। बात-बात पर चुप करा दिया जाता था। डाँटा फटकारा भी जाता था और उससे कड़वे वचन भी बोले जाते थे। अगर कोई स्त्री पति के साथ सती नहीं होती तो ये निश्चित था कि समाज उसे कुलक्षिणी कहता था। कबीरदास

अन्य कवियों की तरह अनेक बार सती का महिमामण्डन पूरे मनोयोग से करते हैं। निश्चित ही यह स्त्री के मानवीय स्वरूप की उपेक्षा है।

मध्यकाल में सती–प्रथा की जलन हमें मीरां के काव्य में भी उपलब्ध होती है। मीरां कृष्ण प्रेम में दीवानी है। वह कृष्ण की चिर विरहिणी है। मीरां मन में कामना करती है कि मेरा जीवन कृष्ण के प्रति नि:स्सार है। हालाँकि मीरा अपने पति के साथ सती नहीं हुई। ये उनकी बहादुरी है, नहीं तो सारे राज–परिवार के लोगों ने तो उन्हें मारने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी। अपनी सशक्त मानसिकता और कृष्ण भक्ति के दम पर वह जिन्दा रही लेकिन फिर भी सती–प्रथा के स्वर उनके काव्य से निकलते हैं। देखिए—

जोगी मत जा, मत जा, मत जा, पायं परू मैं तेरी चेरी हो।
प्रेम भगति कौ पैडो ही न्यारो, हमको गैल बता जा।
अगर चंदण की चिता बणाऊ, अपने हाथ जला जा
जल बळ गई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा।
मीरां कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।[30]

मीरां का यह पद अत्यंत भावपूर्ण एवं करुणा भरा है। इसमें निहित दर्द का स्वर बड़ा ही गहरा है, जो मीरां की अन्तरात्मा का स्वर है। प्रियतम से मिलने को आकुल युग–युग की विरहिणी नारी का स्वर है। करुणा विह्वल रागिनी में निबद्ध मीरां के इस पद में उसके ना जाने कितने जन्म जन्मांतरों की विरह पीड़ा जाग उठी है। आँसुओं में डूबी स्वर लहरी में न जाने किस अतीत की विरह स्मृति सिसक उठी है।

मीरां के उपर्युक्त पद से यह भी सिद्ध होता है कि तत्कालीन समय में सती–प्रथा अपनी चरम सीमा पर थी। मीरां ने अपने पद में उस समय चल रही सती–प्रथा का उदाहरण देकर अपने हृदय की पीड़ा एवं कृष्ण के प्रति वियोग व्यक्त किया है।

मध्यकाल (भक्तिकाल) में स्त्री को पुरुष बिना कारण ही त्याग दिया करता था। स्त्री की कोई खास कद्र नहीं समझी जाती थी। विवाहिता स्त्रियों को भी पैर की जूती समझा जाता था कि जब चाहे बदल ली क्योंकि वह समय मुगलों की संस्कृति से प्रेरित था। उनके हरम (रनिवास) में सैकड़ों स्त्रियाँ भरी रहती थी। उन स्त्रियों का उपभोग सुलतान व मंत्री आदि सभी अपनी–अपनी हैसियत के अनुसार करते थे। राजपूतों में भी अनेक स्त्रियों से

उनके संभोगस्थल रनिवासों को सजाया जाता था। खास बात यह है कि जब चाहे राजा या सम्राट् किसी भी स्त्री को अपने महल से दर-दर की ठोकरे खाने के लिए निकाल सकता था। जब राजा-महाराजा यह कृत्य करते थे सामान्य जन की तो बात ही क्या? राजा ही तो अपनी प्रजा के लिए नियम तय करता था। जब सामान्य जनता देखती थी कि हमारे शासक स्त्रियों के विषय में स्वेच्छाचार कर रहे हैं तो वह भी स्त्रियों के प्रति नकारात्मक भाव से भर गए। सामान्य पुरुष भी अपनी पत्नी को आये दिन छोड़ने लगा और स्त्री प्रताड़ित होने लगी। मीरां कह तो कृष्ण से रही है पर झलक, तत्कालीन सामाजिक विकृतियों की है। मीरां ने भी स्त्री को पुरुष द्वारा छोड़ने के भाव व्यक्त किए हैं—

छोड़ मत ज्याजो जी महाराज।
मैं अबला बल नाय गुसाई, तुम मेरे सिरताज।
मैं गुणहीन गुण नांय गुसाई, तुम समरथ महाराज।
थारी होय के किण रे जाऊँ, तुम हिवड़ा रो साज।
मीरां के प्रभु और न कोई, राखो अबके लाज।।[31]

मीरा के काव्य में स्पष्ट रूप से स्त्री के मानवीय स्वरूप की उपेक्षा परिलक्षित होती है। मीरां के काव्य से ऐसा लगता है कि जब स्त्री को पुरुष द्वारा त्याग दिया जाता था तो उसे मौत को गले लगाने के अलावा और कोई चारा नहीं बचता था। ऐसी ही व्यंजना मीरा के इस पद में हुई है। देखिए—

ऐसी लगन लगाई कहाँ जासी तू।
तुम देख्या बिन कलि ना परत है तलफ तलफ जिय जासी।
तेरे खातिर जोगण हूँगी करवत लूँगी कासी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवल की दासी।[32]

मीरां स्वयं नारी रूप में नारी से सम्बन्धित विडम्बनाओं को व्यक्त करती है। यहाँ करवत काशी के शब्द की गहराई में जाएँ तो पता चलता है कि प्राचीनकाल में सद्गति की आशा से लोग आरे के नीचे अपना गला कटवा कर मर जाते थे। इसी को 'काशी करवत लेना' कहते थे। हिन्दुओं के अंधविश्वास का यह क्रूरतम उदाहरण है जिसकी नृशंस बलिवेदी पर न जाने कितनी निरीह महिलाएँ भेंट चढ़ गई होंगी।

हालाँकि मीरां ने पुरुषवादी समाज से अपनी कृष्ण भक्ति के दम पर खूब मुकाबला किया तथा उनके द्वारा चालित राजप्रथाओं के बन्धनों को भी तोड़ा लेकिन अपने काव्य में कमजोर नारी मन की व्यथा को वे छिपा नहीं पाई।

भक्तिकाल के प्रेमाश्रयी काव्य परम्परा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी नारी के मानवीय रूप की उपेक्षा स्पष्ट रूप से की है। पद्मावत में राजा रतनसेन नागमती की सौत बना कर पद्मावती को विवाह कर ले आता है। फिर लौटकर रानी नागमती के पास जाता है। ऐसी स्थिति में नागमती के हृदय पर क्या गुजरी होगी? वह थी तो एक नारी ही। यह तथ्य है कि कोई भी नारी अपने जीते जी अपने ही घर में अपनी सौत को नहीं देख सकती है। देखिए नागमती की पीड़ा——

सब दिन राजा दान दिआवा। भई निसि नागमती पंह आवा।
नागमती मुख फेरि बईठी। सौंह न करैं पुरुष सौ दीठी।।
ग्रीष्म जरत छोडि जो जाई। सो मुख कौन देखावै आई।।
जबहि जरे परवत बन लागे। उठी झार पंछी उठि भागे।।
जब साखा देखै औ छांहां। को नहीं रहसि पसारै बाहां।।
को नहि हरषि बैठि तेहि डारा। को नहि करै केलि कुरियारा।।
तू जोगी होइगा बैरागी। हौं जरि छार भएऊ तोहि लागी।।
काह हंसौ तुम मोसौ, किएऊ और सौ नेह।
तुम्ह मुख चमकै बीजुरी, मोहि मुख बरसै मेह।।[33]

'किएऊ और सै नेह' पंक्ति के आधार पर स्पष्ट होता है कि जायसी के काव्य में नारी के मानवीय स्वरूप की उपेक्षा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है। पद्मावती और नागमती के संबंधों के चित्रण में विभिन्न उतार चढ़ावों का वर्णन जायसी के काव्य में हुआ है।

कृष्ण भक्ति काव्य के प्रतिनिधि कवि सूरदास ने भी स्त्री के लिए अपने काव्य में घटिया विचार व्यक्त किए है। यह देखा जाता है कि अगर किसी व्यक्ति में जन्मजात कोई शारीरिक कमी है तो क्या उसका अपमान किया जाना चाहिए? वो भी नारी का? बिना आँख वाले व्यक्ति को 'अँधा' कहने के बजाय चक्षुहीन कहे तो उसे कम बुरा लगेगा।

अगर किसी व्यक्ति में शारीरिक विकृति हो तो उसका मजाक नहीं उड़ाना चाहिए, यह आदर्शवाद है लेकिन सूरदास ने गोपियों के मुँह से कुब्जा का अपमान कराया है और नारी ने ही नारी के मानवीय रूप की उपेक्षा की है। देखिए—

बरू वै कुब्जा भलौ कियो।
सुनि सुनि समाचार ऊधो मो कछुक सिरात हियो।।
जाको गुन गति, नाम, रूप हरि हारयो फिरि न दियो।।
बिन आपनो मन हरत न जान्यो हंसि हंसि लोग जियो।।
सूर तनक चंदन चढाय तन ब्रजपति बस्य कियो।
और सकल नागरि नारिन को दासी दाव लियो।।[34]

सूरदास की गोपियाँ स्पष्ट रूप से कृष्ण को बुरा-भला कहती है क्योंकि कृष्ण ने गोपियों के मानवीय रूप की उपेक्षा की है। गोपियों के अन्तर्मन की पीड़ा श्रीकृष्ण को ईश्वरीय सत्ता मानने से इनकार करती है। देखिए—

हरि काहे के अंतर्जामी?
जो हरि मिलत नहि यंहि औसर, अवधि बतावत लामी।।
अपनी चोप जाय उठि बैठे, और निरस बेकामी।।
सो कह पीर पराई जानै, जो हरि गरुडागामी।।
आई उघरि प्रीति कलई सी, जैसे खारी आमी।।
सूर इते पर अनख मरति हैं, ऊधो पीवत मामी।।[35]

गोपियों का संकेत यह है कि वे अपनी वेदना को किसी दूसरे पर व्यक्त नहीं कर सकती हैं। इतना ही नहीं वे तो किसी से यह भी नहीं कह सकती कि कृष्ण धोखेबाज हैं।

'हरि काहे के अंतर्जामी' के माध्यम से कृष्ण की निष्ठुरता साकार हो गई है। पद की अंतिम पंक्ति में गोपियों की असीमित वेदना को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

सूरदास ने पुरुष को अपनी बहरी पत्नी से परामर्श एवं विचार-विमर्श नहीं कर स्वयं की इच्छा से कार्य करने का पाठ पढाया है। वह भी गोपियों के द्वारा उद्धव की बातचीत में, मतलब सूरदास ने सिद्ध किया है कि नारी ही नारी की दुश्मन हैं। देखिए—

अटपटी बात तिहारी ऊधौ सुनै सो ऐसी को है?

अब अहीर अबला सठ मधुकर तिन्है जोग कैसे सोहे?
बूचिहि खुंभी, आंधरी काजर, नकरी पहिरै वेसरि।।
मुंडली पाटी पारन चाहै कोढी अंगहि केसर।।
बहिरो सों पति मतो करै सो उतर कौन पै आवै।
ऐसी न्याव है ताको ऊधो जो हमें जोग सिखावै।।
जो तुम हमको लाए कृपा करि सिर चढाय हम लीन्है।
सूरदास नरियर जो विष को करहि बंदना कीन्हें।।[36]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल में नारी का स्तर पुरुष की तुलना में निम्नातिनिम्न रहा है। लगभग हर कवि ने नारी की कमजोरी, अबला स्थिति का चित्रण कर उसे ही दोष दिया है। कहीं तो भक्तिकाल में पुरुष द्वारा नारी निंदा हुई है, कहीं पुरुष कवियों ने अपने काव्यों में नारी पात्रों के द्वारा ही नारी की निंदा करवाई और नारी के मानवीय रूप की उपेक्षा की है। क्या सूरदास अपने काव्य में बहरी स्त्री के बजाय बहरे पुरुष का उदाहरण नहीं दे सकते थे? तो भी सुधि पाठकगण उसे आसानी से समझ लेते लेकिन सूरदास ने भी पूर्व में चलती आ रही स्त्री विरोधी परम्परा को नहीं तोड़ा और नारी के विषय में हलके शब्द लिखे। एक ओर तो सूरदास की गोपियाँ अपनी मानसिक सशक्तता से उद्धव के ज्ञान मार्ग का खण्डन करती है दूसरी ओर वे ही गोपियाँ स्त्री जाति के लिए हलके शब्दों का प्रयोग करती है।

नारी ,मात्र भाव सत्ता की प्रतिनिधि (सूरदास के संदर्भ में)

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में कृष्ण भक्तिकाव्य के प्रतिनिधि कवि सूरदास ने अपने काव्य में जो नारी का चित्रण किया है उसमें नारी की भावनाओं का विभिन्न प्रकार से चित्रण किया गया है। सूरदास के काव्य में नारी मात्र भाव सत्ता की प्रतिनिधि है। सूरदास के सम्पूर्ण काव्यों में नारी मात्र अपनी भावनाओं को व्यक्त करती है। वह तो मात्र अपनी इच्छाओं व भावनाओं की प्रतिनिधि मात्र है। वह अपनी भावनाओं को तो व्यक्त करती है लेकिन उन्हें पूरा करने के लिए सशक्तता से अड़ी नहीं रह सकती। सूर के काव्य में गोपियाँ रो-पीटकर रह जाती हैं। उनके मन में कृष्ण प्राप्ति की तीव्र इच्छा है लेकिन कृष्ण उन्हें मिलते नहीं है। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु गोपियाँ मात्र प्रतिनिधि हैं। वे

सशक्तता से अपना पक्ष नहीं रख पाती हैं। वे विभिन्न तरीकों से अपने भाव ही प्रकट कर सकती है जो स्थूल रूप से वे कभी पूरे नहीं हुए।

सूरदास के लिए प्रेम या श्रीकृष्ण की माधुर्य भक्ति, जिसमें उसकी लीलाओं का वर्णन है, धर्म का सार है, वह सब प्रकार की सामाजिक एवं नैतिक सीमाओं का अतिक्रमण कर सकता है। एक सच्चे भक्त के लिए वे वर्ण जाति या कुल भेद को महत्त्व नहीं देते फिर भी सूरदास समाज में वर्ण–व्यवस्था को स्वीकार करते हैं और उच्च वर्ण या ब्राह्मणों का शूद्रों या निम्न वर्ग के लोगों के साथ बैठकर भोजन करना हँस और कौए या लहसुन और कपूर के योग के समान है।

सूरदास ने ब्रज में रहने वाले पशुपालक अहीरों के सादे और निश्चल जीवन और उसी क्षेत्र में रहने वाले किसानों एवं स्त्रियों के अभावग्रस्त जीवन को चित्रित किया है। सूरदास एक तरफ तो स्त्री के लिए पति सेवा को महत्त्व देते हैं, दूसरी ओर उनके काव्य में गोपियाँ विवाहित होते हुए भी कृष्ण से प्रेम करती हैं और कृष्ण को प्राप्त नहीं कर पाने पर जान देने को तत्पर दिखायी देती हैं।

सूरदास के काव्य में गोपियों की कृष्ण के प्रति मानसिकता वैसी ही है कि 'जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी'। सूरदास के काव्य में हर उम्र और स्थिति की गोपियाँ कृष्ण को उसी प्रकार चाहती हैं जैसे उनके भाव हैं। सारी की सारी गोपियाँ अपने भावों के अनुसार कृष्ण से प्रेम करती है लेकिन यह प्रेम अलग–अलग तरीके का है। जो गोपियाँ कृष्ण से उम्र में बड़ी हैं वे कृष्ण के प्रति वात्सल्य का भाव रखती है। कृष्ण के समवयस्क विवाहित गोपियाँ उनके प्रेमी भाव रखती हैं। उनमें से कुछ गोपियाँ कृष्ण से सखा भाव रखती हैं लेकिन कुछ गोपियाँ कृष्ण से घोर काम भाव रखती है। आश्चर्य यह है कि ये गोपियाँ चाहे विवाहित हों या अविवाहित, उन्हें तो कृष्ण प्रेमी रूप में काम तृप्ति के साधन के रूप में चाहिए। हर गोपी के मन में अलग–अलग प्रकार की भावनाएँ कृष्ण के प्रति विराजमान है।

सूरदास ने अपने काव्य में कई जगह घोर काम भावना से प्रेरित पद लिखे हैं जो पाठकों को कामुकता के लिए प्रेरित करते हैं। न जाने कैसे उनमें भक्ति की गंध समीक्षकों को आ जाती है।

संसार में प्रीति के विभिन्न सम्बन्धों में स्त्री–पुरुष के प्रेम में विशेष आकर्षण माना गया है। स्त्री–पुरुष की परस्पर प्रीति को शृंगार रस की संज्ञा दी गई है। संसार द्वारा अनुभूत स्त्री–पुरुष के प्रेम संबंधों की व्यापकता को देख कर भक्तों ने भी ईश्वर के प्रति अपने आध्यात्मिक सम्बन्ध की अनुभूतियों को लौकिक शृंगार की भाषा में प्रकट किया है। लोक पक्ष में जो शृंगार रस है वह भक्ति के क्षेत्र में मधुरा रस या माधुर्य भाव की भक्ति कहलाता है। भारतीय मनीषियों का मत यह है कि भक्त में परमात्मा के प्रति उतना प्रेम होना चाहिए जितना कि स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति। ज्ञानमार्गी भक्त कवियों—कबीर आदि ने भी अपने को स्त्री रूप में कल्पित कर परमात्मा पुरुष के लिए अपनी भावनाएँ प्रकट की है।

शृंगार शब्द शास्त्रीय है। शृंगार में जीवन का मधुर भाव स्थित रहता है। शृंगार में नायक और नायिका दोनों पक्षों से सम्बन्ध भाव व्यक्त होता है। सूर की गोपियाँ और राधा के भाव इसी प्रकार के हैं। लेकिन जब स्त्री–पुरुष के बीच शृंगार भावना की बात आती है तो वहाँ भक्ति के लिए कहाँ स्थान रह जाता है? सूरदास की भक्ति में स्त्री–पुरुष विषयक काम भावना के स्पष्ट दर्शन होते हैं हालाँकि वात्सल्य भाव भी दूसरे स्थान पर आया है। सूरदास की गोपियाँ अपने मन के भावों को व्यक्त तो कर सकती हैं लेकिन कृष्ण उन भावों को कितना महत्त्व देंगे, यह निश्चित नहीं है क्योंकि कृष्ण तो पुरुष हैं और गोपियाँ और राधा स्त्री हैं। कृष्ण उन पर मनमानी कर सकते हैं और गोपियाँ कृष्ण की मनमानी को वात्सल्य, सखा भाव से सहती रहती है। सूरदास के लिए यह भक्ति है लेकिन क्या यथार्थ और आधुनिकता के लिहाज से क्या यह सही है?

सूरदास द्वारा चित्रित नारी पात्रों की अपनी–अपनी विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करती हैं। सबसे पहले देखते हैं कि सूरदास की गोपियाँ और कृष्ण की धाय यशोदा अपने कृष्ण के लिए कैसे भाव रखती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि, **"शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक किसी और कवि की नहीं।"** [37] सूरदास का वात्सल्य वर्णन व्यापक है। वह गहराई लिए हुए है। उसमें बाल जीवन के विविध पक्षों की झाँकी है। उन्होंने न केवल बाल चेष्टाओं का ही वर्णन नहीं किया अपितु बालकों की अन्त:प्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है। सूरदास के काव्य में शैशवावस्था और कौमार्य अवस्था तक के क्रम में लगे हुए ना जाने कितने ही चित्र मौजूद हैं। लेकिन इन

भावनाओं को व्यक्त करने वाली अंतत: नारी ही है चाहे वह यशोदा के रूप में हो या अन्य गोपियों के रूप में। वात्सल्य भाव का उदाहरण देखिए—

जागी महरि पुत्र मुख देख्यौ आनंद तूर बजायौ।
कंचन कलस होम द्विज पूजा, चंदन चौक लिपायौ।।
दसदुं दिसि तै वरषि कुसुम, अति फूलन गोकुल छायौ।
नंद जू की इच्छा मन पूजी, मनवांछित फल पायौ।।
आनंद भरे करत कोलाहल उदित मुदित नर-नारी।
निरभय भये निसान बजावत, देत निसंक है गारी।
नाचत महर मुदित मन कीये, हाथ बजावत तारी।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रकटे मथुरा कंस प्रहारी।।[38]

और भी देखिए—

पिय पहिलै पहुँची जाय अति आनंद भरी।
तहं भीतर भवन बुलाई सब सिसु पाई परी।।
इक वदन उघारिनिहारि देहि असीस खरी।
चिरजीवौ जसुदानंद, पूरन काम करी।।[39]

नारी मन का वात्सल्य भाव देखिए—

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराई, मलहावै, जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निदरिया, काहै न आनि सुनावै।
तू काहे नहि बेगि ही आवै तोकों कान्ह बुलावै।।
कबहुं पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि करि सैन बतावै।।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै।।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ, सो नंद भामिनी पावै।।[40]

माता यशोदा अपने मन की अभिलाषा के भावों को इस प्रकार व्यक्त कर रही है—

जसुमति मन अभिलाष करे।
कब मेरो लाल घुटुवनि रैगे, कब धरती पग द्वैक धरै।
कब द्वै दाँत दूध के देखौ कब तोतरे मुख बचन झरै।
कब नंदहि बाबा कहि बोले, कब जननी कहि मोहि ररै।।
कब मेरो अंचरा गहि मोहन, जोई सोई कहि मोसौ झगरै।।
कब हंसि बात करैगौ मोसौ, जा छवि ते दुःख दूरि हरै।
स्याम अकेले आँगन छांडै, आप गई कछु काज धरै।।
इहि अंतर अधवाई उठयौ इक गरजत गगन सहित घहरै।
सूरदास ब्रज लोग सुनत धुनि, जो जहं तहं सब अतिहि डरै।।[41]

कृष्ण अब थोड़े बड़े हो गए हैं। वे हठ करने लगते हैं और अपनी बाल हठ की भावनाओं को अपनी माँ को बताने लगते हैं।

मैया मैं तो चंद खिलौना लैहौं।
जैहो लोट धरनि पर अवही, तेरी गोद ना ऐंहौ।
सुरभि कौ पय पान न करिहौं वेनी सिर न गुहैहौ।।
ह्वै-ह्वै पूत नंद बाबा कौ तेरौ सुत न कहैंहौं।।
आगै आए वात सुनि मेरी, बलदेवहि न जनैहों।
हंसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहौ।
तेरी सौ, मेरी सुनि मैया, अवहि वियाहन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बाराती, गीत सुमंगल गैहौं।।[42]

सूरदास जी ने वियोगिनी माता के भावों का भी अत्यन्त मार्मिक चित्र खींचा है। जब कृष्ण मथुरा जाने लगे तो यशोदा की स्थिति पागलों जैसी हो गई। उसे ब्रज में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई देता जो उसके गोपाल को जाने से रोक ले और इस प्रकार उसका हितैषी बने। वह बार-बार व्याकुल होकर कहती है कि अरे इस ब्रज में क्या कोई भी ऐसा नहीं है जो मेरे प्रिय गोपाल को मथुरा जाने से रोक सके। देखिए—

जसोदा बार-बार यों भाखै।
है कोई बृज में हितु हमारौ जो चलत गुपालहि राखै?[43]

यशोदा अपने प्राणों की भर्त्सना करती हुई कहती है कि कृष्ण के जाने की बात सुनकर भी मैं जीवित क्यों हूँ?

जिहिं मुख तात कहत ब्रजपति सौ मोहि कहत है माई।
तेहि मुख चलन सुनत जीवति हौ, विधि सौ कहा बसाई।।[44]

नंद बाबा भी व्याकुल तो बहुत हैं किन्तु यशोदा को समझाते हैं—

भरोसौ कान्ह को है मोहि।
सुनहि जसोदा कंस नृपति भय तू जनि व्याकुल होई।।[45]

उधर माता रोहिणी भी व्याकुल होकर भूमि पर गिर पड़ती है और निराश हो उठती है। मानो इस समय उनका कोई सहायक नहीं है—

ये दोऊ भैया जीवन हमरे, कहति रोहिणी रोई।
धरनि गिरति उठति अति व्याकुल कहि रखत नहि कोई।।[46]

जब किसी भी प्रकार कृष्ण को कोई रोक नहीं सका तो माता यशोदा तथा अन्य ब्रजवासियों की दशा अनाथ जैसी हो गई। कृष्ण तो स्वयं ही जाना चाहते थे। कृष्ण का रथ चलने को तैयार हुआ और अक्रूर जी भी उस पर बैठे तो ब्रजवासियों के आँसू रूक ना सके। उनके कण्ठ अवरुद्ध हो गए। विरह की इस चरमावस्था का चित्र सूरदास ने इस प्रकार खींचा है। देखिए—

तब रसना हरिनाम भाषिकै लोचन नीर बढ़े।
महरि पुत्र कहि सोर लगायौ, तरू ज्यों धरनि लुटाई।
देखति नारि चित्र सी ठाढी, चितए कुँवर कन्हाई।।[47]

यों तो सारा ब्रज ही कृष्ण के वियोग में दुःखी है पर ममता मयी माता यशोदा में वात्सल्य भाव की पूर्ण निष्पत्ति हुई है। वे वसुदेव और देवकी की दासी बनकर रहने को तैयार हैं। वहाँ तो कृष्ण के नित्य दर्शन होंगे ही—

हौ तो माईं मथुरा ही पै जैहों।
दासी ह्वै वसुदेव राई की दरसन देखत रैहो।।
मोहि देखिकै लोग हसैंगे अरु किन कान्ह हंसै।

सूर असीस जाई पैहो, जनि न्हा तहु बार खसै।।[48]

वास्तव में वात्सल्य भाव के निरूपण में सूर अद्वितीय सिद्ध हुए हैं। नारी मन के वियोग वात्सल्य रूपी झंझावत सूर ने बड़े मनोयोग से चित्रित किये हैं। बाल स्वभाव और कृष्ण की बाल लीलाओं का इतना सरल और स्वाभाविक चित्रण कोई अन्य कवि नहीं कर पाया है। यह सूर की अपनी विशेषता है। सूर के वात्सल्य वर्णन में अनुभूति, अभिव्यक्ति और नारी मन की भावनाएँ प्रमुख रूप से विद्यमान हैं।

वास्तव में सूरदास जी ने शृंगार के साथ-साथ वात्सल्य भावों का सुंदर समन्वय किया है। जब कृष्ण गो दोहन के योग्य हो जाते हैं तब वे गायें चराने हेतु वृंदावन मेंजाने की कामना प्रकट करते हैं। इस समय से पूर्व की कृष्ण की चेष्टाएँ वात्सल्य भाव को जागृत करने वाली थी। कुछ आलोचकों ने कृष्ण की बचपन की माखन आदि से सम्बन्धित लीलाओं को भी शृंगार रस से सम्बन्धित माना है। देखिए वात्सल्य और शृंगार रस के भावों का कितना सुन्दर मिश्रण किया है——

मोहि कहत जुवती सब चोर।
बोलि लेत भीतर घर अपनै, मुख चूमति भरि लेति अंकोर।
माखन हेरि देति अपनै कर, कछु कहि विधि सौं करति निहोर।।
जहाँ मोहि देखति तंह टेरति, मैं नहि जात दुहाई तोर।।[49]

जहाँ भी ये गोपियाँ मुझे देखती हैं, मुझे पुकारने लगती है। मैं अपने आप ही (अपनी इच्छा) से इनके पास नहीं जाता हूँ। मैं असत्य नहीं बोल रहा हूँ। मैं आपकी सौगन्ध खाता हूँ।

कृष्ण की जो भी क्रियाएँ हैं वे सब नारी मन के भावों को उद्वेलित करती हैं। मूल रूप में कृष्ण नारी मन की भावनाओं से खेलते हैं। सूरदास भी अपने काव्य में नारी मन की भावनाओं से खेलते हैं। नारी मन के तारों को छेड़ना ही सूरदास की कृतियों का मूल तत्त्व है।

सूरदास जी ने राधा का चरित्र-चित्रण जिस रूप में किया है वह सूर की अपनी विशेषता है। राधा, कृष्ण चरित की प्रधान नायिका है। राधा और कृष्ण का परिचय खेल-खेल में होता है। कृष्ण उनके रूप से प्रभावित हुए और पूछने लगे——बूझत स्याम कौन तू गोरी? राधा ने कृष्ण को कुछ रूखा-सा उत्तर दिया किंतु रसिक शिरोमणि बड़े चतुर थे।

बातों–बातों में राधा को भुलावा देकर अपना बना लिया। साथ–साथ खेलने लगे। प्रेम बढ़ा तो प्रतिदिन कुंजों में एकान्त मिलन के दिन भी आए। सूरदास जी ने इसे गुप्त रति कहा है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि "शृंगार के अन्तर्गत भाव पक्ष और विभाव पक्ष दोनों के अत्यन्त विस्तृत और अनूठे वर्णन इस सागर के भीतर लहरें मार रहे हैं।[50] राधा का समर्पण कृष्ण के प्रति और भी बढ़ता जाता है। दान लीला में पूर्ण समर्पण की स्थिति आ जाती है। वहाँ राधा सम्पूर्ण मर्यादाओं को तोड़ देती है। इस अवस्था में पहुँच कर राधा को कृष्ण समझा देते हैं कि उन दोनों का वास्तविक सम्बन्ध प्रकृति और पुरुष का है। इस समय तक राधा का चरित्र–चित्रण कृष्ण की बाल सहचरी के रूप में हुआ था। उसमें सरलता और निष्कपटता के भाव विशेष रूप से परिलक्षित होते हैं। सूरदास जी ने राधा के रूप का अनुपम चित्रण किया है।

राधा का चित्रण कृष्ण की ऐसी बाल सहचरी के रूप में हुआ है, जिसको कृष्ण का सर्वाधिक सान्निध्य प्राप्त हुआ है।

सैननि नागरी समुझाई।
खरिक आवहु दोहनी लै यहै मिस छल जाई।।
गाई गनती करन जैहे मोहि लै नंद राई।
बोलि वचन प्रमान कीन्हो दुहुनि आतुरताइ।।
कनक बरन सुढार सुंदरि, सकुचि बदन दुराई।।
स्याम प्यारी नैन राचे, अति विसाल चलाय।।
गुप्त प्रीति न प्रकट कीन्हीं हृदय दुहुनि छिपाय।
सूर प्रभु के वचन सुनि सुनि रही कुंवरि लजाय।।[51]

सूरदास ने राधा कृष्ण विषयक कई घोर शृंगारिक पद लिखे हैं जिनसे भक्ति के बजाय कामुकता के भाव पैदा होते हैं। एक साधारण स्त्री–पुरुष की तरह राधा और कृष्ण के प्रेम को उन्होंने चित्रित कर दिया। ऐसा लगता है कि स्वयं सूरदास अपनी कामुकता को राधा कृष्ण के प्रेम के माध्यम से चित्रित कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि सूरदास भक्ति करते–करते काम भावना उत्पन्न होने पर राधा और कृष्ण का नग्न शृंगार का चित्रण किया

हो क्योंकि इस संसार में जन्म लेने पर काम भावना हर मनुष्य में जाग्रत होती रहती है। सूरदास भी इससे अछूते नहीं रहे।

रीतिकाल के कवि भिखारीदास ने शायद इनका ही अनुसरण करके कहा है—

सुकवि बूझि है तो कविताई।
न तौ राधिक कन्हाई के सुमिरन को बहानौ है।

निश्चित ही सूरदास ने अपनी भक्ति के बहाने राधा और कृष्ण को याद किया है। निर्गुण मत के संत कवियों ने तो नारी से दूर रहने का उपदेश दिया और यहाँ सूरदास जी स्वयं ही ईश्वर रूप राधा और कृष्ण का नग्न शृंगार चित्रण कर रहे हैं। देखिए—

नीबी ललित गई जदुराई।
जबहि सरोज धर्‌यौ श्रीफल पर तब जसुमति गई आइ।।
ततछन रुदन करत मनमोहन मन में बुधि उपजाई।।
देखौ दीठि, देत नहि माता राख्यौ गेंद चुराई।।
तब वृषभानु सुता हंसि बोली, हमपै नाहि कन्हाई।
काहे को झकझोरत नोखे, चलहु न देहु बताई।
देखि विनोद बाल सुतकौ तब महरि चली मुसुकाई।
सूरदास के प्रभु की लीला, को हरि जानै इहि भाइ।।[52]

और भी देखिए—

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया।।
क्रीडा करत तमाल तरुन तर, स्याम स्याम उमंग रस भरिया।।
यौ लिपटाई रहे उर उर, ज्यौ मरकत मनि कंचन करिया।।
उपमा काहि देऊ, को लायक, मन्मथ कोटि बारने करिया।।
सूरदास बलिबलि जोरी पर, नंद कुँवर वृषभानु कुंवरिया।।[53]

हमने देखा कि सूरदास ने राधा और कृष्ण का एक सामान्य स्त्री-पुरुष की भाँति कामुक चित्रण किया है। शायद रीतिकाल के कवियों ने भी अपना स्त्री चिंतन का मार्ग

सूरदास से ही प्रशस्त किया क्योंकि किसी भी युग के बीज उसके पूर्व युग में अवश्य पाए जाते हैं।

कृष्ण राधा से ही प्रेम नहीं करते अपितु ब्रज की गोपियों की भावनाओं से भी खेलते हैं तथा उनसे ओछी हरकते करते हैं और सूरदास को यह भक्ति लगती है।

कैसे बनै जमुना न्हान।
नंद कौ सुत तीर बैठौ, बडौ चतुर सुजान।।
हार तोरै, चीर फारै, नैन चलौ चुराय।
काल्हि धोखे कान्ह मेरी पीठि मींजी आई।।
कहत जुवति बात सुनि सब थकित भएँ ब्रज नारि।
सूर प्रभु कौ ध्यान धरि मन रविहि बाँह पसारि।।[54]

कृष्ण ने गोपियों से हर तरह की शरारत की। ऐसा कोई कार्य नहीं छोड़ा जो कहा ना जा सके। नहाती हुई गोपियों के कपड़े लेकर वृक्ष पर बैठ गए। नीचे से गोपियाँ चिल्ला रही हैं। निम्न पद देखिए—

हा–हा करति घोष कुमारी।
सीस तै तन कंपत थर–थर, बसन देहु मुरारि।।
जो पुरुष तिय अंग देखे, कहत दूषण झारि।
नैकु नहि तुम छोअ आनत, गई तिय सब मारि।
मनहि मन अतिहि भयौ सुख देखि कै गिरधारि।
सूर प्रभु अति ही निठुर भए, नंद सुत बनवारि।।[55]

सूरदास ने ब्रज की गोपियों, राधा, माता यशोदा, नंदबाबा, गोकुल के ग्वाल बाल आदि सभी की कृष्ण के प्रति भावनाओं का सुंदर चित्रण किया है।

लेकिन जब कृष्ण कंस को मारने हेतु मथुरा चले जाते हैं तो गोपियाँ पीछे से रो–रो कर बेहाल हो जाती है। उधर कृष्ण के मित्र और सखा उद्धव गोपियों को कृष्ण को भूलने का संदेश देने के लिए ब्रज में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार भ्रमरगीत की रचना होती है। सम्पूर्ण भ्रमरगीत एक उपालंभ काव्य है जिसमें ब्रज की गोपियों के रूप में नारी मन की भावनाओं का सुंदर प्रदर्शन हुआ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि, "सूरसागर का

सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यन्त मनोहारिणी है, ऐसा सुन्दर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता।"[56]

सूरदास का भ्रमरगीत जहाँ विरहिणी ब्रज गोपियों के करुण क्रंदन से परिपूर्ण है और उनके निराश एवं भग्न हृदय में छिपे हुए अनगिनत भावों का अक्षय कोष है। सबसे बड़ी बात यह है कि विरह सागर में डूबी हुई नारी की मौन वेदना को मुखरित करने में वह अद्वितीय है। जब उद्धव ज्ञान का संदेश देने ब्रज पहुँचते हैं तो गोपियाँ कृष्ण के रूप साम्य की वजह से उद्धव को कृष्ण समझ कर दौड़ी चली आती है। देखिए—

कोऊ आवत है तन स्याम।
वैसेई पट, वैसिय रथ बैठनि, वैसिय है उर दाम।।
जैसी दुति, उठि वैसिय दौरी, छोडि सकल गृह काम।।
रोम पुलक, गदगद भई तिहि छिन, सोचि अंग अभिराम।।
इतनी कहति आए गए ऊधो, रही ठगी तिहि ठाम।
सूरदास प्रभु हयां क्यों आवै, बँधे कुब्जा रस स्याम।।[57]

सूरदास ने चित्रित किया कि पुरुष नारी की भावनाओं से खेलने में स्वार्थ का उपयोग करता है।

अपने स्वारथ को सब कोऊ।
चुप करि रहौ मधुर रस लंपट, तुम देखे अरु बोऊ।।
औरो कछु संदेस कहन कौ कहि पठयौ किन सोऊ।।
लीन्हे फिरत जोग जुवतिन को बड़े सयाने दोऊ।।
तब कत मोहन रास रचाई जो पै ज्ञान हुतोऊ।।
अब हमरे जिय बैठो यह पद, होनी होऊ सो होऊ।।
मिटि गयो मान परेखौ ऊधो हिरदय हतो सो कोऊ।।
सूरदास प्रभु गोकुल नायक चित् चिन्ता अब खोऊ।।[58]

सूरदास की गोपियाँ कृष्ण के प्रति अपनी दृढ़ निष्ठा कर रही हैं। देखिए—

उर में माखन चोर गढ़े।
अब कैसेहु निकसत नहि ऊधो। तिरछे ह्वै जो अड़े।

जबपि अहीर जसोदानंदन तदपि न जात छंडे।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहि न लगत बड़े।
को वसुदेव देवकी है को ना जानै और बूझै।
सूर स्याम सुंदर बिन देखे और न कोऊ सूझै।।[59]

सूरदास के भ्रमरगीत में नारी मन का कृष्ण के प्रति सच्चा मोह और उससे जुड़ी हुई आसक्ति भावना चित्रित हुई है। भ्रमरगीत में नारी मन के सौतिया डाल (जलन) को बखूबी चित्रित किया गया है। नारी अपने प्रेमी पुरुष पर अपने एकाधिकार के अलावा किसी भी पर स्त्री की दखल नहीं चाहता है। इसके लिए वह चाहे जो कुछ भी कर सकती है। गोपियाँ भी कृष्ण की पत्नी कुब्जा को इसी जलन भरी दृष्टि से ताने देती है। लेकिन सिर्फ ताने दे सकती है कर कुछ भी नहीं सकती। स्वयं विरह में जल सकती है लेकिन इस विरह से कुब्जा का कुछ भी नहीं बिगड़ेगा क्योंकि ये नारियाँ मात्र भाव सत्ता की प्रतिनिधि हैं। इन गोपियों में कृष्ण के प्रति असीम भाव भरे हुए हैं लेकिन वे मात्र व्यक्ति के रूप में विचार व्यक्त करने वाली व्यक्तिरूपी प्रतिनिधि हैं। देखिए गोपियों का कुब्जा के प्रति सौतिया डाह (जलन) का एक उदाहरण—

ऊधो! जाके माथे भाग।
कुबजा को पटरानी कीन्ही हमहि देत वैराग।।
तलफत फिरत सकल ब्रजवनिता चेरी चुपरि सोहाग।
बन्यो बनायो संग सखी री! वैरे! हँस वै काग।।
लौंडी के घर डौंडी बाजत स्याम राग अनुराग।
हांसी कमल नयन संग खेलति बारहमासी फाग।।
जोग की बेलि लगावन आए, काटि प्रेम को बाग।
सूरदास प्रभु ऊख छांडि कै चतुर चिचोरत आग।।[60]

'लौंडी' शब्द इस पद में आया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूरदास ने उर्दू शब्द यदाकदा अपने काव्यों में ले लिए हैं। मुगलकाल में लौंडी शब्द का अर्थ दासी से लिया गया है। मुगलकाल में स्त्रियों को गुलाम बनाकर दासी के रूप में उनसे सेवाकार्य लिया जाता था। ज्यादातर लौंडियां सुलतानों की काम पिपासा को शांत करने का साधन मात्र थीं।

सूरदास का मन्तव्य भी यही है कि कुब्जा श्रीकृष्ण की रखैल से ज्यादा कुछ भी नहीं है। यही भाव ब्रज की गोपियों के हैं।

सूरदास की गोपियाँ स्पष्ट रूप से कहती हैं कि कृष्ण तो चोर हैं क्योंकि बचपन में तो वे दही माखन चुराते थे और युवावस्था में उन्होंने हमारा हृदय चुरा लिया है। वे उद्धव से कहती हैं—

मधुकर स्याम हमारे चोर!
मन हरि लियो माधुरी मूरति चितै नयन की कोर।।
पकर्‌यो तेहि हृदय उर अन्तर प्रेमप्रीति के जोर।
गए छंडाय छोरि सब बन्धन दै गए हंसनि अंकोरि।।
सोवत ते हम उचकि परी है दूत मिल्यौ मोहि भोर
सूर स्याम मुसकानि मै मेरौ सर्वस लै गए नंद किसोर।।[61]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि नारी चाहे युग कोई भी हो हमेशा पुरुष सत्ता द्वारा प्रताड़ित रही है। नारी मन की भावनाओं से हमेशा पुरुष सत्ता खेली है। स्वयं नारी अपने भावों को मात्र व्यक्त कर सकती है लेकिन भावों की क्रियान्विति करने के लिए हमेशा पुरुष वर्ग का मुँह ताकना पड़ा है। नारी का हमेशा पुरुष ने उपभोग किया है और काम में लेने के पश्चात् पुरुष नारी को महत्त्वहीन समझता है। सूरदास की गोपियाँ बचपन से ही कृष्ण के प्रति भाव रखती हैं। गोपियों की उम्र के अनुसार अलग-अलग प्रकार के भाव हैं। कोई कृष्ण को वात्सल्य रूप में देखती हैं, कोई उन्हें सखा रूप में देखती है और कोई उन्हें रति भाव से देखती है। सारी गोपियों की निजी भावनाएँ कृष्ण के प्रति ही हैं। लेकिन कृष्ण इन सारी भावनाओं को ठुकरा कर मथुरा चले जाते हैं और लौट कर नहीं आते हैं। जरा गौर करे जिस नारी मन में बचपन से लेकर युवावस्था तक जिस पुरुष को अपना सर्वस्व माना हो वही उसे छोड़ जाए तो उस पर कैसी गुजरेगी। इस प्रकार नारी मात्र भाव सत्ता की प्रतिनिधि है। वह सिर्फ प्रतिनिधि है। मानवीय निर्णय लेने की क्षमता को पुरुष वर्ग ने दबा दिया।

नारी की सामाजिक निष्क्रियता

भक्तिकाल (मध्यकाल) में नारी की सामाजिक निष्क्रियता का चित्रण भी मिलता है। चूँकि मध्यकाल में शासन मुगलों का था अत: समस्त स्त्री वर्ग पर्दा-प्रथा से पीड़ित था। नारी कहीं खुले में चैन की साँस भी नहीं ले सकती थी। जहाँ जायें तो पुरुष उसके पीछे साये की तरह लगा रहता था। वह सामाजिक क्रियाकलापों में स्वतंत्र रूप से हिस्सा नहीं ले सकती थी क्योंकि सामाजिक रूप से निर्णय के समस्त अधिकार पुरुष वर्ग के हाथ में थे। वह तो घर की चूल्हा चक्की सँभालने तथा बच्चा पैदा करने की मशीन से ज्यादा कुछ भी नहीं थी। पुरुष वर्ग के लिए यह छुट्टी थी कि वह परस्त्री से नैन मटक्का कर सकता था और अपनी पत्नी को घर की मुर्गी दाल बराबर समझता था। कृष्ण भक्त मीरां हालाँकि कृष्ण के प्रेम में पागल है लेकिन उसकी कविताओं में सांसारिक नारी मन की भावनाएँ व्यक्त होती हैं—

पिया इतनी विनती सुनो मोरी।
औरन सूं रस बतियां करत हो हमसे रहे चित् चोरी।
तुम बिन मेरे और न कोई मैं सरणागत तोरी।
आवन कह गए अजहुं ना आये दिवस रहे अब थोरी।
मीरां के प्रभु! कबरे मिलोगे अरज करै कर जोरी।।[62]

इस पद से यह पता चलता है कि मीरां की तो कृष्ण से रही है लेकिन तत्कालीन नारी शोषण की गंध स्पष्ट मिलती है। उस युग में पुरुष एक स्त्री के अलावा अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध रखता था। बेचारी घर की स्त्री घर में बैठी चूल्हा चक्की में व्यस्त होती थी और पुरुष बाहर तांकझांक करता रहता था। उस समय नारी समस्त समाज से कटे रह कर घर पर ही अपने पति का इंतजार करती रहती थी। यह पति की इच्छा थी कि वह कब आवे। नारी की इच्छा नगण्य थी और पुरुष की इच्छा सर्वोच्च। देखिए—

आओ मनमोहन जी! जोऊ थारी बाट।
खान-पान मोहि नेक न भावै नैण न लगे कपाट।
तुम आयां बिन सुख नहि मेरे दिल में बहोत उचाट।
मीरां कहे मैं भई बावरी छांडो नाहि निराट।।[63]

जब कोई नारी अपने जीवन में नितांत अकेली रह जाती है तो सारे सगे सम्बन्धी उसका सामाजिक बहिष्कार कर देते हैं। मीरां का दर्द देखिए—

तुम सुनो दयाल म्हारी अरजी।
भौ सागर में बही जात हूँ काढो तो थारी मरजी।
यो संसार सगो नहि कोई साँचा सगा रघुवर जी।
माता-पिता और कुटंब कबीलो सब मतलब का गरजी।
मीरां रे प्रभु! अरजी सुण ल्यो, चरण लगाओ गिरधर जी।।[64]

सब स्वार्थ के साथी हैं। यदि कोई सच्चे सम्बन्धी हैं तो वे हैं एकमात्र राम! अन्यथा माता-पिता तथा कुटुम्ब परिवार तो सब अपने मतलब के गरजी हैं। हे प्रभु! हे गिरधर लाल आप मीरां की प्रार्थना सुन लो और मुझे अपने चरणों में स्थान दे दो।

सूरदास ने भी कृष्ण के माध्यम से चित्रित किया है कि पुरुष वर्ग बड़ा स्वार्थी होता है और वह घर की स्त्री को तो घर में ही रखता है और परस्त्री के साथ स्वतंत्र रहना चाहता है। देखिए—

ऊधो! सब स्वारथ के लोग।
आपुन केलि करत कुब्जा संग हमहि सिखावत जोग।।
भ्रमि बन जात सांवरी मूरति, नित देखहि वह रूप।
अब रस रास पुलिन जमुना, के करत लाज भए भूप।।
अनुदिन नयन निमेष न लागत, भयो बिरह अति रोग।
मिलबहुं कान्ह कुमार अस्विनी मिटै सूर सब रोग।।[65]

इसी प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने ग्रंथ पद्मावत में नारी की सामाजिक निष्क्रियता का चित्रण किया है। जब राजकुमार पद्मावती बारह साल की हुई तथा युवावस्था की ओर बढ़ने लगी तो उसके पिता ने उसे अलग से महल बनवा कर तथा कुछ सखियों को उसके साथ रखकर सामाजिक रूप से अकेला कर दिया। वहाँ पहरेदारों की कठोर व्यवस्था थी तथा जिसमें पद्मावती बिल्कुल अकेली रहती थी। देखिए—

बारह बरस मांह मै रानी। राजै सुना संजोग सयानी।।
सात खण्ड धौराहर तासू। सो पदमिनी कंह दीन्ह निवासू।।

जग कोई दीठि ना आवै आछहि नैन अकास।
जोगी जती संयासी तप साधहि तेहि आस।।[66]

राजकुमारी पद्मावती को महल के सबसे ऊँचे सातवे खण्ड पर रखा गया, जहाँ से संसार के उसे दर्शन नहीं हो सकते थे। वह हर समय आकाश को ही निहारा करती थी। वह जोगी, जती, संन्यासियों की तरह तप करने के प्रारूप से और उसकी आशा से अंतरिक्ष को देखती रहती थी।

पद्मावत के इस संदर्भ से सिद्ध होता है कि नारी संपत्ति के रूप में पहचानी जाती थी। पिता के लिए अपनी पुत्री की रक्षा करना जरूरी तो था लेकिन पुत्री की रक्षा हेतु उसका सामाजिक वातावरण काटना जरूरी नहीं था। फिर भी पद्मावत में इसका जिक्र किया गया है। जब पद्मावती को अकेले ही उसके पिता ने महल के सातवें खण्ड में रख दिया तो सोचने की बात है कि पद्मावती की क्या हालत हुई होगी और विशेष बात यह है कि नारी के प्रति ऐसी धारणाएँ राज प्रासादों में प्रचलित थी तो जन सामान्य भी उन्हीं का अनुकरण करता था। असंख्य स्त्रियाँ ऐसी ही सोच और निम्न व्यवहार को युगों से सहती आ रही है। पता नहीं नारी को सामाजिक रूप से दूर रखने का ये व्यवहार कब खत्म होगा।

पद्मावत में ही पद्मावती से उसकी सहेलियाँ कह रही हैं कि जब तक हम पिता के राज्य में हैं, उसकी छत्रछाया में हैं तब तक अपनी इच्छानुसार कार्य कर लो फिर जब हम ससुराल चले जायेंगे तब हमें अपनी इच्छानुसार कोई कार्य नहीं करने देगा। देखिए—

जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू।।
पुनि सासुर हम गवनव काली। कित हम कित यह सरवर पाली।
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलिकें खेलव इक साथा।।[67]

निश्चित ही यह उस समय के काल की झलक बताता है जब यातायात के साधनों में सिर्फ बैलगाड़ी और घोड़ा गाड़ी हुआ करती थी। जब कन्या का विवाह कई मीलों दूर हो जाता था तो वह शीघ्र ही अपने मायके नहीं आ पाती थी। अपनी पीड़ा को भी किसी से साझा नहीं कर सकती थी। बेचारी स्त्री अन्दर ही अन्दर घुटती रहती थी।

कबीर दास जी ने भी नारी के लिए अपने ऐसे विचार व्यक्त किये हैं। जब तक कन्या को पति के दर्शन नहीं होते वह कुँवारी ही रहती है। लेकिन विवाह के पश्चात् वह घर के कामों के बोझ तले मुसीबत में पड़ जाती है। देखिए—

जब लग पीव परचा नहीं कन्या कँवारी जाण।
हथ लेवा हौंसे लिया मुसकिल पड़ी पिछाणि।।[68]

महाकवि तुलसीदास ने भी नारी को सामाजिक रूप से क्रियाशील चित्रित नहीं किया है। सिर्फ सीता जी के क्रियाकलापों पर ही उनकी दृष्टि लगी हुई है। रामचरित मानस में और भी नारी पात्र हैं, उनकी सामाजिक क्रियाशीलता का चित्रण रामचरित मानस में नहीं मिलता है। तुलसीदास जी ने पुरुष चरित्रों के बारे में तो बहुत चित्रण किया है लेकिन नारी पात्रों के चित्रण में जैसे तुलसी की कलम की स्याही खत्म हो जाती है।

प्रसंग बालिवध का है, श्री राम और बालि के युद्ध का पूर्ण वर्णन तुलसी करते हैं और बालि की मृत्यु श्रीराम के हाथों दिखाई जाती है लेकिन बालि की पत्नी तारा का पति मृत्यु का महान दु:ख तुलसी एक चौपाई में ही समेट कर इतिश्री कर लेते हैं। क्या नारी के लिए अपने पति की मृत्यु से बढ़कर और कोई दु:ख हो सकता है? शायद कदापि नहीं। फिर भी तुलसी बालि पत्नी तारा का विरह वर्णन सामाजिक दृष्टि से चित्रित नहीं करते। बेचारी नारी क्या करे वह अपने पति के हत्यारे के सामने झुक जाती है। देखिये—

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा।।
नाना विधि विलाप कर तारा। छूटे केस न देह संभारा।।
तारा विकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया।।
छिति पावक जल गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।
प्रगट सो तनु तब आगे सोवा। जीव नित्य केहि लागे तुम रोवा।।
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भक्ति बर माँगी।।[69]

तारा को व्याकुल देख कर श्री रघुनाथ जी ने ज्ञान दिया और उसका अज्ञान हर लिया। उन्होंने कहा—पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच तत्त्वों से यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है। यह बालि का शरीर तो प्रत्यक्ष रूप में तुम्हारे सामने

सोया हुआ है और जीव नित्य है फिर तुम किसके लिए रो रही हो? तब वह भगवान् के चरणों में लगी और उसने परम भक्ति का वर माँग लिया।

विडम्बना देखिए कि एक नारी अपने पति के हत्यारे से ही वर माँग रही है और उसके समक्ष नतमस्तक हो रही है। यही नारी मन की कमजोरी है कि उसे सीधे साधे भाव से जो कुछ समझा दिया जाय वही ग्रहण कर लेती है। नारी के मन में हमेशा कोमल भाव विराजे होते हैं और यही नारी की विशेषता होती है लेकिन नारी मन के कोमल भावों को क्रीड़ा का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए। मध्यकाल (भक्तिकाल) में नारी सामाजिक सक्रियता की आकांक्षी थी लेकिन पुरुष प्रधान समाज ने उसे घर की चारदीवारों में कैद कर दिया। उसे देवी तो कहा गया लेकिन देवी नारी को मंदिर तक ही सीमित कर दिया। सामाजिक सरोकारों से उसका कोई वास्ता नहीं था। वह अपना निर्णय लेने में स्वतंत्र नहीं थी। इस प्रकार सिद्ध होता है कि नारी की सामाजिक निष्क्रियता उस काल में निश्चित रूप से विद्यमान थी।

नारी जीवन की यांत्रिकता

भक्तिकाल (मध्यकाल) में स्त्री जाति के लिए निश्चित नियम कायदे कानून थे। जिस प्रकार कोई यंत्र चलता तो है लेकिन वह सजीव नहीं होता तथा वह बाह्य शक्ति से चालित होता है। स्त्री की यांत्रिकता में पुरुष बाह्य शक्ति है। जिस प्रकार कोई यंत्र (मशीन) अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकता है उसी प्रकार मध्यकाल में स्त्री की भावनाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। मान लो कोई यंत्र तीव्र गति से चालित है तो वह ताप की वजह से जल सकता है लेकिन वह अपनी भावना व्यक्त नहीं कर पाता कि वह तप्त हो रहा है। अंतत: उसे बंद न करने पर आखिर वह जल ही जाता है।

इसका केन्द्रीय भाव यह है कि परिवार तथा समाज में स्त्री की भावनाओं का कोई आदर नहीं था। उससे सलाह लेना तो दूर उसे तुच्छ वस्तु माना गया। जिस प्रकार यंत्र उपयोग और उपभोग की वस्तु होता है। नारी शरीर को भी उपयोग और उपभोग की वस्तु माना गया। नारी जीवन की यांत्रिकता का अर्थ नारी हृदय की भावनाओं की अवहेलना के संदर्भ में लिया जाना उचित है। कई बार ऐसा भी होता है कि जब नारी हृदय के भावों की लगातार उपेक्षा की जाती है तो नारी मन पत्थर की तरह जड़वत हो जाता है। भावना शून्य

हो जाता है और वह यंत्रवत हो जाती है। वह कार्य तो करती है लेकिन स्वचालित रूप से नहीं बल्कि बाह्य चालित रूप से।

श्री राम के चरण कमलों द्वारा अहिल्या का पत्थर से स्त्री रूप में आना भी नारी जीवन की यांत्रिकता को प्रकट करता है। ऋषि गौतम ने अपनी पत्नी अहित्या को व्यभिचार के दण्ड स्वरूप पत्थर हो जाने का शाप दे दिया। यह गौतम के मत से व्यभिचार था जबकि अहिल्या के मत से दुहतिना थी। बेचारी अहिल्या बिना किसी प्रतिरोध किए हुए पति के शाप को आशीर्वाद मानकर पत्थर बन गई। अहिल्या की गलती क्या थी? इन्द्र और चन्द्रमा ने छल करके उससे व्यभिचार किया। इन्द्र ने मुनि गौतम का वेष धारण अहिल्या से व्यभिचार किया। अहिल्या इन्द्र को पहचान नहीं पाई। जब इन्द्र अहिल्या से व्यभिचार कर रहा था तो चन्द्रमा द्वार पर पहरा दे रहा था। उधर मुनि गौतम जब वापस लौटे तो उन्हें कुछ दाल में काला नजर आया। उन्होंने चन्द्रमा और इन्द्र को पहचान लिया। वे तो भाग गए लेकिन मुनि गौतम ने अपनी पत्नी अहिल्या को पत्थर हो जाने का शाप दे दिया।

विडम्बना देखिये कि स्त्री छली भी पुरुष द्वारा गई, फिर भी गलती उसी की मानी गई और अन्त में पत्थर भी उसे ही बनना पड़ा। बाद में पुरुष रूपी राम के पैरों से ही उसका उद्धार हुआ। क्या सीता के पैरों से अहित्या का उद्धार नहीं हो सकता था। देखिये— अहिल्या उद्धार का तुलसी द्वारा वर्णन जिसमें नारी स्वयं कुछ नहीं कर सकती, सब कुछ पुरुष द्वारा ही संचालित है—

राम पद पदुम पराग परी।
ऋषि तिय तुरत त्यागि, पाहन तनु छबिमय देह धरी।।
प्रबल पाप पति साप, दुसह दव दारून जरनि जरी।
कृपा सिंधु सिंचि बिबुध बेलि ज्यौ फिरि सुख फरनि फरी।।
निगम अगम मूरति महेस मति जुवति बराय बरी।
सोई मूरति भई जानि नयनपथ इकटकतें न टरी।।
बरनति हृदय स्वरूप, सील गुन प्रेम प्रमोद भरी।
तुलसीदास, अस केलि आरत की आरति प्रभु न हरी।।[70]

और भी देखिए—

भूरि भाग-भाजनु भई।
रूप रासि अवलोकि बंधु दोउ प्रेम सुरंग रई।।
कहा कहै केहि भाँति सराहैं, नहि करतूत नई।।
बिनु कारन करुनाकर, रघुवर केहि केहि गति न दई।।
करि बहु विनय, राखि उर मूरति मंगली मोद भई।।
तुलसी ह्वै बिसोक पति, लोकहि प्रभुगुन गनत गई।।[71]

विडम्बना देखिए, जिस पति ने अहिल्या को पत्थर हो जाने का शाप दिया तुलसी द्वारा उसी महिला को परलोक में भेजे जाने का चित्रण किया है जो पति उसे पूर्व में सुख नहीं दे पाया स्त्री मुक्ति के पश्चात् भी उसी पतिलोक की कामना करती है। स्त्री अपने मस्तिष्क से कुछ नहीं सोचती? सत्य तो यह है कि उसे सोचने का मौका नहीं दिया जाता है। स्त्री को बार-बार पुरुष के ही बंधन में बांधा जाता है और सिद्ध करने की कोशिश की जाती है कि नारी का पुरुष के बिना अस्तित्व ही नहीं है। जबकि जन्म से ही नारी एक स्वतंत्र मानवी सत्ता है। उसके स्वयं के स्वतंत्र विचार है लेकिन पुरुषवादी समाज उसके व्यक्तिगत विचारों पर कब्जा कर उसे अकर्मण्य बना देता है। अपनी मर्जी से नारी को चलाता है और उसे यंत्रवत बना देता है।

कबीरदास जी भी नारी की भावनाओं पर ध्यान नहीं देते और बेवजह उससे दूर रहने का उपदेश देते हैं। देखिए—

कांमणि अंग विकरत भया, रत भया हरि नांइ।
साषी गोरखनाथ ज्यू, अमर भरे कलि माहि।।[72]

अर्थात् कामिनी से विरक्त होना चाहिए एवं प्रभु के नाम में अनुरक्त होना ही श्रेष्ठ है। इसके साक्षी गुरु गोरखनाथ हैं जिन्होंने कलियुग में भी इस आचरण से अमरता प्राप्त कर ली।

कबीरदास जी के अनुसार स्त्री को हर समय अपने पतिदेव के लिए ही शृंगार करना चाहिए। बिना पति के शृंगार करना नितान्त अनुचित है। देखिए—

जौ पै पिय के माने नहीं भांये तौ को परोसनि कै हुलराये।

का चूरा पाइल झमकाए, कहा भयौ बिछुआ ठमकायै।।
का काजल स्यंदूर कै दीयै सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयै।
अंजन मंजन करै ठगौरी का पति मरै निगौड़ी भोरी।
जो पै पतिव्रता ह्वै नारी, कैसे ही रहो सो पियहि पियारी।।
तन–मन जीवन सौपि शरीरा ताहि सुहागन कहै कबीरा।।[73]

कबीर कहते हैं कि सुहागिन का एकमात्र लक्षण यह है कि वह तन–मन जीवन से अपने आपको पति के हवाले कर दे।

कबीरदास जी का शायद आशय यह है कि स्त्री स्वयं तो यंत्रवत भावना शून्य हो जाये और अपने पति की ही मान मनुहार में लगी रहे। शायद कबीर समझते थे कि नारी में तो संवेदना ही नहीं होती तभी तो उन्होंने ऐसा वर्णन कर डाला। कबीर दास जी बिना पुरुष सत्ता के स्त्री को अपूर्ण समझते हैं। वे तो पुरुष के बिना स्त्री को शृंगार करने की भी अनुमति नहीं देते। उलटे वे यह कहते हैं कि स्त्री अगर बिना पति के शृंगार करेगी तो पड़ोसियों की कामुक दृष्टि का शिकार होगी। कबीरदास जी स्त्री के पातिव्रत्य धर्म को सभी आभूषणों से बढ़ कर मानते हैं। वे कहते हैं कि अगर नारी पतिव्रता होगी तो उसका पति उससे प्रेम करेगा। भाव यह है कि बिना पतिव्रत धर्म के स्त्री प्रेम करने योग्य नहीं है। कबीर अपने इस पद से नारी द्वारा अपने आपको सम्पूर्ण रूप से अपने पति पर न्यौछावर होने की प्रेरणा देते हैं। पर यही अपेक्षा कबीर पुरुष से क्यों नहीं करते? यही सारे मानदण्ड क्या पुरुष के लिए नहीं हो सकते? क्या पुरुष को स्वतंत्र विचरण का अधिकार है? क्या पुरुष यथेच्छाचार अधिकार प्राप्त है। कबीर के स्त्री संबंधी विचारों से तो ऐसी ही ध्वनि आती है। कबीरदास जी ने तो जैसे ठान ही लिया है कि स्त्री को पुरुष से एक कदम भी आगे नहीं बढ़ने देना है। वे हर दोहे में इस बात का जरूर ध्यान रखते हैं कि स्त्री की प्रस्थिति पुरुष से कमतर ही होनी चाहिए जहाँ थोड़े स्त्री को आगे बढ़ाने के विचार आते हैं वहाँ उसे पातिव्रत्य धर्म के द्वारा प्रतिबन्धित कर दिया जाता है। यहाँ कबीरदास जी यह कहना चाहते है कि स्त्री अपने पति के लिए ही 'सजे संवरे, अपनी खुशी के लिए नहीं'। इस प्रकार कबीर के काव्य में नारी की सामाजिक निष्क्रियता सिद्ध होती है।

पुरुष स्त्री के मनोभावों का स्पष्ट रूप से उल्लंघन करता है। मध्यकाल में पुरुष स्त्री को भोग की भौतिक वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं समझता था। वह तो घर आता और यंत्रवत अपनी पत्नी से अपनी काम तृप्ति कर सो जाता और ऐसा भी होता था कि पुरुष अन्य स्त्रियों से रात्रि भर व्यभिचार में व्यस्त रहता और उसकी पत्नी रात भर अपने पति की याद में तड़पती रहती थी। सुबह होने पर पति जब रंगरेलियाँ मनाकर घर आता तो वह उससे कठोर शब्दों में बल्कि बहुत ही नरमाई भरे शब्दों में कहती थी——

भलि भलि दरसन दीनेहु सब निसि टारि।
कैसे आवन कीनेहु हौं बलिहारि।।[74]

अब्दुर्रहीम खानखाना कहते हैं कि एक स्त्री अपने पति से कह रही है कि आपने सारी रात्रि व्यतीत कर दी और अब प्रात: आपने अपने शुभ दर्शन दिये हैं। चलो जैसे भी सही हो आए तो सही मेरे पास। मैं आप पर बलिहारी जाती हूँ।

मुगलकाल में इस तरह के बहुत उदाहरण मिलते हैं। सुलतानों के हरम (रनिवास) स्त्रियों से भरे रहते थे। हर रानी अपनी–अपनी बारी का इंतजार करती रहती थी। अब सुलतान तो एक होता था और उसकी बेगमें और रखैलों की संख्या बहुत ज्यादा होती थी। सुलतानों के लिए काम तृप्ति करना सहज और सरल था लेकिन उनकी बेगमों और रखैलों के लिए अपनी काम तृप्ति करना बड़ा कठिन था। इसलिए तत्कालीन सुलतानों के हरम (रनिवास) व्यभिचार के अड्डे बने हुए थे। बेगमें और रनिवास की स्त्रियाँ सुलतान के मंत्रीगणों और महल के दासों से अपना सम्बन्ध बनाती फिरती थी। इसका अर्थ है कि जब नारी को यंत्रवत समझा जायेगा तो वह नारी रूपी यंत्र स्वचालित अवस्था में तप्त हो जायेगा और व्यभिचार रूप में स्वयं को ही भस्म करने लगेगा।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी नारी की सामाजिक निष्क्रियता का उल्लेख करते हैं। उनकी कृति रामचरित मानस में पार्वती शंकर से कहती है कि मैं स्त्री होने के कारण सार्वजनिक रूप से रामकथा सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ फिर भी मैं पत्नी रूपी दासी हूँ अत: मुझे राम कथा का श्रवण करावें।

बंदहु पद धरि धरनि सिरू बिनय करऊँ कर जोरि।
बरनऊ रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि।।

जदपि जोषिता नहि अधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी।।
गूढउ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहं पावहि।।[75]

विडम्बना यह है कि तुलसीदास पार्वती जैसे ईश्वरीय पात्र को पुरुष सत्ता के समक्ष दास्य भाव से चित्रित करते हैं। स्त्री को पुरुष के सामने हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर विनम्र रहकर, चित्रित किया गया है। रामचरित मानस को भारत में बड़े चाव से पढ़ा जाता है तथा इसके विचारों को जन सामान्य द्वारा ग्रहण किया जाता है। निश्चित ही स्त्री सम्बन्धी निम्न विचार जन सामान्य में प्रचलित करने हेतु रामचरित मानस और तुलसीदास को ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। आज भारत के घर-घर में रामचरित मानस की पुस्तक हिन्दुओं का कण्ठहार बनी हुई है। जन सामान्य इससे आदर्शवाद सीखता है लेकिन स्त्री के प्रति जो दृष्टिकोण तुलसी ने व्यक्त किया है वह भी जन सामान्य सीखता है। इसमें परम सावधानी की आवश्यकता है। कोई भी कृति हो वह अपने तत्कालीन युग से प्रेरित होती है। उस युग की प्रवृत्तियाँ और परिस्थितियों की झलक उसमें मिलती है। अत:

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि लहे थोथा देय उड़ाय।।[76]

किसी भी कृति को तटस्थ भाव से आलोचनात्मक दृष्टि से पढ़ा जाना चाहिए। उसमें वर्णित उच्च और निम्न भाव वाले विचारों का ध्यान कर लेना चाहिए। उस कृति को पाठक को वर्तमान युग के संदर्भ में देखकर ही समझना चाहिए आँख बंद करके उस पर भरोसा नहीं करना चाहिए क्योंकि हर युग की परिस्थिति और प्रवृत्ति नितान्त भिन्न होती है।

स्त्री की केवल जैविक सत्ता की स्वीकृति

मध्यकाल (भक्तिकाल) में स्त्री को केवल जैविक इकाई के रूप में स्वीकृति प्राप्त थी। जिस प्रकार इस संसार में दूसरे जन्तु अपना अस्तित्व रखते हैं उसी प्रकार स्त्री नामक पशु भी अपना अस्तित्व बनाए हुए थी। स्त्री नामक जीव हमेशा पुरुष के प्रभाव को ढोती हुई दिखाई दी। इसके पीछे मोटे तौर पर एक बड़ा कारण जैविक संरचना है। जैविक से होकर आगे बढ़ती हुई सामाजिक संरचना स्त्री को पुरुष द्वारा मानसिक नियंत्रण के लिए विवश करती दिखती है। अधिकांशत: स्थितियों में वह प्राकृतिक रूप से नियंत्रित रहती है और कुछ में उसे जबरन नियंत्रित किया जाता है। विवाह संस्था, परिवार और सामाजिकता

में स्त्री की स्थिति इसी नियंत्रण का परिचायक है। शायद इसलिए मध्यकाल से पहले भी और आज तक स्त्री की हैसियत एक उत्पीड़ित और नियंत्रित मनुष्य की है। अलग-अलग तरीके से इसको हम विमर्श में भी देखते हैं। अगर कहीं इस खांचे से अलग किसी स्त्री को हम देखते हैं तो हमारी पुरातन पंथी सोच समाज के रसातल में जाने की दुहाई देने लगती है। अक्क महादेवी से लेकर मीरां तक ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिन्हें स्त्री की आजादी के खिलाफ पुरुषवादी समाज क्रोध से घूर कर देखता है।

भक्तिकालीन स्त्री चिंतन भी दरअसल पुरुष की मानसिकता, व्यवहार और व्यवस्था का आकलन ही रहा है। तत्कालीन सामाजिक संरचना भी पितृसत्तात्मक रही है जिसमें सारा अधिकार पुरुष के हाथों में होता था। यह अधिकार उन्हें नारी का शोषण और प्रताड़ना का हक दे देता था। जाहिर है कि वे किसी भी रूप में स्त्री द्वारा अपनी हुक्म उदूली (आदेश न मानना) बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। किसी भी स्त्री के इनकार और प्रतिरोध के कारणों की तह तक जाएँ तो सारा असामंजस्य और असंतुलन सामाजिक व्यवस्था में ही निकलेगा, जिसके कारण पुरुष अपनी वर्चस्ववादी सोच से बाहर आकर स्त्री के प्रति समानतापूर्ण व्यवहार ही नहीं कर पाता। मध्यकाल में पुरुष को बचपन से ही सत्ता, ताकत और स्त्री से बेहतर होने की घुट्टी इस कदर पिला दी जाती थी कि जिसका असर पुरुष के युवा होने पर उसके जेहन में स्त्री के प्रति नकारात्मक रूप से बरकरार रहता था और अपने परिवार के लिए वह ऐसा त्रासद माहौल खड़ा कर देता था कि जो केवल ध्वंस की ओर ही ले जाता था।

सीमोन द बोउवार ने कहा है "पुरुष जब नारी को अपनी संपत्ति के रूप में प्राप्त करता है तो उसकी यही इच्छा रहती है कि नारी केवल 'देह' ही रहे। पुरुष नारी के शरीर में नारी के व्यक्तित्व का विकास नहीं देखना चाहता। वह अपने में सीमित रहे। संसार में अन्य किसी से संलग्न न रहे, वह जिस कामना को जाग्रत करती है, उसे तृप्त करे।"[77]

सीमोन की ही विख्यात पंक्तियाँ हैं—"जिस तरह लड़की पैदा नहीं होती उसे बनाया जाता है, वैसे ही लड़का भी पैदा नहीं होता, उसे बचपन से ही ठोकपीट कर लड़का बनाया जाता है।"

जब से परिवार बना शायद तभी से स्त्री के लिए दोयम दर्जा तय हो गया। पुरुष ने स्त्री को घर की दासी मानते हुए उसे घर के काम दिए, वह खुद बाहर गया। आने-जाने के बीच उसके काम के घण्टे निश्चित हुए लेकिन स्त्री के काम के घण्टे तय नहीं हुए क्योंकि वह तो बाहर ही नहीं गई इसलिए एक स्त्री के कार्य के घण्टे जागने से शुरू होते हैं और सोने तक चलते हैं। चूँकि पुरुष के काम के घण्टे तय थे इसलिए उसका परिश्रमिक भी तय था लेकिन स्त्री का कुछ भी तय नहीं था बल्कि उस पर सब कुछ थोपा हुआ था इसलिए उसका दर्जा शुरू से ही कमतर हो गया जो पारिवारिक रूप से वैसा ही चला आ रहा है। यह तो बात हुई स्त्री के जैविक अस्तित्व के बारे में। देखना यह है कि मध्यकाल के विभिन्न कवियों ने किस प्रकार स्त्री को सिर्फ जैविक सत्ता के रूप में देखा और चित्रित किया।

अब्दुर्रहीम खानखाना को मध्ययुग के प्रमुख भक्त कवियों में गिना जाता है। जन्म से भले ही वे मुसलमान हो लेकिन कर्म से सर्वधर्म समभाव की जीवंत मिसाल थे। उन्हें हिन्दू धर्म से विशेष लगाव था लेकिन मुगलकाल में जो हालत स्त्री की थी उससे वे भी अछूते नहीं रह पाये। नारी को मात्र संभोग की वस्तु के रूप में उस समय देखा जाता था। स्त्री की सुन्दरता की परिभाषा यही थी कि वह पुरुष को मनभावन हो, उसके शरीर के उतार चढ़ावों, रूप-रंग, नैन-नक्श की वजह से उसे सुन्दर माना जाता था। रहीमदास जी ने नारी के दैहिक चक्रव्यूह में नीति को फँसा कर व्यक्त किया है।

कुटिलत संग रहीम कहि साधु बचते नांहि।
ज्यौ नैना सैना करे, उरज उमेठे जाहि।।

रहीमदास जी ने नीतिगत दोहे में अश्लीलता भरा हुआ उदाहरण रख दिया। इसमें उदाहरण तो और भी रखा जा सकता था पर दोहे में बिना नारी का चित्रण किये शायद वह रोचकता नहीं होती। इससे पता लगता है कि नारी तो पुरुष की रुचि की वस्तु रही है और रुचि की वस्तु यहाँ तक रही है कि उसे रुचि के अनुसार पुरुष बार-बार बदल देता था।

रामचरित मानस में तुलसी नारी को त्याज्य मानकर चित्रित करते हैं। नारद श्री राम से पूछते हैं कि मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया? राम बोले—हे मुनि! सुनो मैं तुम्हें हर्ष के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा

भरोसा छोड़कर मुझे ही भजते हैं मैं सदा उनकी रखवाली करता हूँ। आश्चर्य है कि तुलसीदास ईश्वर रूपी राम के मुख से स्त्री की निंदा करवाते हैं और नारी के समस्त गुणों को छोड़कर सिर्फ जैविक सत्ता को महत्त्व देते हैं। राम नारद जी को सीख देते हुए कहते हैं कि—

काम क्रोध, लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महं अति दारून दुःखद माया रूपी नारि।।
सुन मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह विपिन कहुं नारि वसंता।।
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होई ग्रीषम सोषई सब नारी।।
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारी निविड रजनी अंधियारी।।
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी समत्रिय कहहि प्रवीना।।
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुःख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियं जानि।।[78]

निश्चित है तुलसीदास ने अपनी व्यक्ति स्त्री विरोधी भावना अपने प्रमुख पात्र राम से व्यक्त करवाई हैं। यह सुन्दर संसार जो शिवशक्ति द्वारा रचित है वह शक्ति स्वरूपा नारी अवगुणों की खान कैसे हो सकती है, यह समझ में नहीं आता। शिव शक्ति को ही प्रकृति और पुरुष कहा जाता है। स्वयं तुलसीदास भी तो नारी गर्भ से उत्पन्न हुए। ये कैसे वे भूल गये। जिस विद्वतापूर्ण मस्तिष्क के वे मालिक थे वह भी तो किसी नारी के रक्त से निर्मित हुआ होगा? लेकिन तुलसीदास भी संत काव्य में नारी विरोध की परिपाटी पर चल पड़े और मनमाना स्त्री विरोध वर्णन कर दिया।

सूफी काव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी नारी का नारी की विरोधी के रूप में वर्णन किया है। पद्मावत में देवपाल दूती खण्ड में राजा देवपाल चाहता है कि किसी तरह से पद्मावती उसकी कामपिपासा का शिकार बने। इसके लिए वह एक दूती को तैयार करता है। वह दूती बूढ़ी स्त्री थी और दूसरी सुन्दर स्त्रियों को लोभ लालच देकर फँसाने का काम करती थी। उसका नाम कुमोदिनी था। उसको बुलाकर राजा देवपाल ने पद्मावती को फंसाकर लाने की जिम्मेदारी दी और कहा चित्तौड़ में जो पद्मावती रानी है उसे किसी प्रकार छल–बल करके मुझे प्राप्त करवाओ।

चितउर मंह जो पदुमिनी रानी। कर, बर, छर, सो देहि मोहि आनी।
रूप जगत माने मोहनि और पदुमावति नाऊं।
कोटि दरब तोहि देहूँ आनि करसि एक ठाऊं।।
कुमुदिनि कहा देखु मै सो हौ। मानुस काह देवता मोहौं।
जस कांवरु चमारी लोना। को न छरा पाढित औ टोना।।
बिसहर नाचहि पाढित मेरे। औ धरि मूंदहि घालि पेटारे।।
बिरिख चले पाढित की बोला। नदी उलटि बह परबत डोला।।
पाढित हरै पंडित मति गहरें। औरू को अंध गूंग औ बहिरे।
पाढित औसि देवतन्ह लागा। मानुस का पाढित हुति भागा।
पाढित कै सुढि काढत बानी। कहाँ जाई पदुमावति रानी।।[79]

इस प्रकरण से यह पता चलता है कि उस समय स्त्री शरीर का पुरुष के लिए कितना बड़ा लालच था। सुन्दर स्त्री को प्राप्त करने के लिए हर समय पुरुष अधीर रहता था और यही कोशिश में लगा रहता था कि येन-केन-प्रकारेण उसे सुन्दर औरतें मिले और वह अपनी काम पिपासा को शांत कर सके। इस प्रकार केवल एक जैविक सत्ता के रूप में ही सिद्ध होती है। उसे सिर्फ भोग की वस्तु मानता है। वह समझता है कि भावनाएँ सिर्फ उसी में है, स्त्री तो भावनाशून्य है।

कृष्ण भक्तिकाव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि सूरदास जी भी नारी को दासी से ज्यादा कुछ नहीं मानते हैं और उसे सिर्फ भावना शून्य जैविक सत्ता के रूप में देखते हैं—

ऊधो हम है तुम्हारी दासी।
काहे को कटु बचन कहत हो करत आपसी हांसी।।
हमरे गुनहि गांठि किन बांध्यो, हम पै कहा बिचार?
जैसी तुम कीन्ही सो सब ही जानतु है संसार।।
जो कुछ भली-बुरी तुम कहिहों सो सब हम सहि लैहै।
अपनौ कियौ आपु भुगतैगी, दोष ना काहू दैहें।।
तुम तौ बड़े-बड़े कै पठए अरू सबके सरदार।
यह दुःख भयो सूर के प्रभु सुनि कहत लगावन छार।।[80]

सूरदास जी ने स्पष्ट रूप से कलियुग आने का वर्णन किया है जिसमें पिता भी अपनी पुत्री को बेचकर धन कमाने की फिराक में रहता है। देखिए—

अब तौ सांचौई कलियुग आयो।
पुत्र पिता कौ कह्यौ ना मानत, करत आप मन भायौ।।
पुत्री बेचि पिता धन पावत दिन–दिन मोल सवायौ।
तातै बरषा अलप भई है कालै सब जुग खायौ।।
घटत गुबर्धन, छिनत बृंदावन, कालिंदी रूप छिपायौ।
सूरदास प्रभु यहि कलिजुग में काहे मोहि जिवायौ।।[81]

इस पद में उस काल में कन्या मूल्य का स्पष्ट चित्रण हुआ है। मध्यम और गरीब परिवार अपनी बेटियों को उस समय धन लेकर रईस जागीरदारों और सुलतानों की कामपिपासा तृप्त करने हेतु बेच दिया करते थे। हालाँकि विवाह का तो आयोजन होता था पर वह मात्र दिखावा होता था। पिता चुपचाप बेटी की कीमत को जेब में रख लिया करता था।

कबीरदास जी भी नारी को सिर्फ उसकी जैविक स्थिति में ही स्वीकार करते हैं। वे माया के बहाने से नारी को तुच्छ बताने से बाज नहीं आते। वे तो स्त्री को सिर्फ पशु के समान जीवित समझते हैं और लात डंडों की मार से नारी की खबर लेना चाहते हैं। देखिए—

माया दासी सन्त की ऊभी देई असीस।
बिलसी अरू लातौ छडी, सुमरि सुमरि जगदीस।।[82]

यहाँ यह भी बात कही गई है कि संत लोग नारी रूपी माया का उपयोग करते हुए प्रभु को भजते हैं। इसका तो अर्थ यह हुआ कि नारी को पास भी रखो और जरूरत पड़ने पर दूध की मक्खी की तरह दूर भी कर दो। यह कैसा विधान है? और बाद में जब स्त्री रूपी माया पुरुष को अपनी आवश्यकता बताए तो पुरुष उसकी लात डण्डों से पिटाई भी करे। इससे सिद्ध होता है कि नारी सिर्फ जैविक इकाई के रूप में ही समझी जाती थी। कृष्ण की प्रेम दीवानी मीरां अपने ह्दय की गहराइयों से राणा जी से पूछ रही है कि आप मुझे

तुच्छ वस्तु मानकर मुझसे वैर क्यों किए हुए हो। क्या नारी को इस जगत में जीने का भी अधिकार नहीं? देखिये—

राणाजी! थे क्यां नै राखो म्हाँ सूं बैर।
थे तो राणाजी म्हानै इसडा लागो, ज्यू बिरछन में कैर।।
महल अटारी हम सब त्यागां त्याग्यो थारो सहर।।
काजल टीको हम सब त्यागा, भगवी चादर पहर।
थारै रूस्यां राणा! कुछ नहि बिगडै अब हरि कीन्ही महर।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर इमरत कर दियो जहर।।[83]

मीरां के इस आत्मस्वीकारोक्तिपूर्ण पद से यह बात पता चलती है कि उस युग में साधारण नारी की तो बात ही क्या राजकुल की नारियों को भी पुरुष की दया पर जीवित रहना पड़ता था नहीं तो वे मारी जाती थी। उनका अस्तित्व मात्र जैविक ईकाई के रूप में था, अन्य किसी रूप में नहीं।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 22
2. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रंथावली, कामी नर कौ अंग, पृ. 173
3. डॉ. हरिचरण शर्मा (समीक्षक) : सूरदास — भ्रमरगीत सार, पद 34, पृ. 204
4. वही, पद 41, पृ. 211
5. डॉ. शंभुसिंह मनोहर (सम्पादक) — मीरां पदावली, पद 47, पृ. 148
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) : मलिक मुहम्मद जायसी— पद्मावत, जन्म खण्ड, पृ. 20
7. वही, जन्म खण्ड, पृ. 21
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) : मलिक मुहम्मद जायसी— पद्मावत, मानसरोदक खण्ड, पृ.23
9. तुलसीदास — गीतावली, बालकाण्ड, पृ. 106
10. तुलसीदास — रामचरित मानस, पृ. 186
11. वही, पृ. 187
12. वही, पृ. 203

13. तुलसीदास — कवितावली, सम्पा. प्रो. राजेश शर्मा (एम.ए.), बालकाण्ड, पद 17, पृ. 86
14. वही, सुंदरकाण्ड, पद 17, पृ. 297-298
15. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रंथावली, पृ. 405
16. वही, कामी नर कौ अंग, पृ. 178
17. वही, कुसंगति कौ अंग, पृ. 194
18. सम्पा. डॉ. राघव रघु — तुलसी दोहावली (तुलसीदास), पृ. 51
19. वही, पृ. 51
20. वही, पृ. 51
21. सम्पा. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रंथावली, कामी नर कौ अंग, पृ. 178
22. तुलसीदास — रामचरित मानस, बालकाण्ड, पृ. 51
23. वही, पृ. 54
24. वही, पृ. 55
25. वही, पृ. 57
26. वही, अयोध्या काण्ड, पृ. 298
27. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रंथावली, सूरा तन कौ अंग, पृ. 254
28. वही, पृ. 254
29. वही, विरह कौ अंग, पृ. 94
30. डॉ. शंभुसिंह मनोहर (सम्पादक) — मीरां पदावली, पृ. 124
31. वही, पृ. 126
32. वही, पृ. 126
33. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) : मलिक मुहम्मद जायसी — पद्मावत, चित्तौड़ आगमन खण्ड, पृ. 178
34. डॉ. हरिचरण शर्मा (समीक्षक) : सूरदास — भ्रमरगीत सार, पद 36, पृ. 206
35. वही, पद 37, पृ. 207
36. वही, पद 35, पृ. 206
37. आचार्य रामचंद्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 134
38. डॉ. किशोरी लाल गुप्त (सं.) सम्पूर्ण सूरसागर (लोकभारती टीका), पद 276, पृ. 160
39. वही, पद 5, पृ. 168
40. वही, पद 300, पृ. 178

41. वही, पद 317, पृ. 186
42. वही, पद 401, पृ. 234
43. प्रो. शिवशंकर सारस्वत (सं.) — सूरदास, पृ. 125
44. वही, पृ. 125
45. वही, पृ. 125
46. वही, पृ. 126
47. वही, पृ. 126
48. वही, पृ. 126
49. वही, पृ. 129
50. आचार्य रामचंद्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 135
51. डॉ. किशोरी लाल गुप्त (सं.) सम्पूर्ण सूरसागर (लोकभारती टीका), पद 662, पृ. 372
52. वही, पद 666, पृ. 374
53. वही, पद 671, पृ. 376
54. वही, पद 710, पृ. 394
55. वही, पद 715, पृ. 396
56. आचार्य रामचंद्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 136
57. डॉ. हरिचरण शर्मा (समीक्षक) : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) : सूरदास — भ्रमरगीत सार, पद 13, पृ. 177
58. वही, पद 39, पृ. 209
59. वही, पद 95, पृ. 271
60. वही, पद 106, पृ. 284
61. वही, पद 146, पृ. 334
62. डॉ. शंभुसिंह मनोहर (सम्पादक) — मीरां पदावली, पद 99, पृ. 202
63. वही, पद 91, पृ. 198
64. वही, पद 92, पृ. 198
65. डॉ. हरिचरण शर्मा (समीक्षक) : सूरदास — भ्रमरगीत सार, पद 196, पृ. 391
66. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) : मलिक मुहम्मद जायसी— पद्मावत, जन्म खण्ड, पृ. 20
67. वही, मानसरोदक खण्ड, पृ. 23
68. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रंथावली, भेष कौ अंग, पृ. 193

69. तुलसीदास — रामचरित मानस, किष्किन्धा काण्ड, पृ. 596

70. तुलसीदास — गीतावली, बालकाण्ड, पृ. 90

71. वही, पृ. 91

72. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रंथावली, साध साषी भूत कौ अंग, पृ. 205

73. वही, पद 139, पृ. 367

74. वाग्देव (सं.) : अब्दुर्रहीम खानखाना — रहीम दोहावली, पृ. 124

75. तुलसीदास — रामचरित मानस, बालकाण्ड, पृ. 94

76. पद 58 PDF कबीरदास upload wikimedia.org/wikipedia>Internet.Google.

77. सीमोन द बोउवार — स्त्री उपेक्षिता (प्रस्तुति - डॉ. प्रभा खेतान), पृ. 85

78. तुलसीदास — रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, पृ. 580-581

79. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं.) : मलिक मुहम्मद जायसी— पद्मावत, देवपाल दूती खण्ड, पृ. 547

80. डॉ. हरिचरण शर्मा (समीक्षक) : सूरदास — भ्रमरगीत सार, पद 200, पृ. 396

81. डॉ. किशोरी लाल गुप्त (सं.) सम्पूर्ण सूरसागर (लोकभारती टीका), पद 243, पृ. 148

82. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रंथावली, माया कौ अंग, पृ. 157

83. डॉ. शंभुसिंह मनोहर (सम्पादक) — मीरां पदावली, पद 20, पृ. 119

पंचम अध्याय

स्त्री विमर्श की अन्तर्विरोधात्मकता

सामन्तवादी जीवन के परिप्रेक्ष्य में विकसित नारी चेतना

भारतीय समाज में नारी की समानता व स्वतन्त्रता का समाप्त होना कब शुरू हुआ, इसका ठीक–ठीक समय निर्धारित करना कठिन है। परन्तु वैदिककाल और ऋषि–मुनियों के आश्रमों के जमाने में नर–नारी के बीच भेद के प्रकरण लगभग नहीं के बराबर मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सामन्तवाद और जातिवाद के उद्भव के साथ ही नारी को भी दास, सम्पत्ति और भोग्या मानने का चलन आरम्भ हुआ होगा। सामन्तवादी व्यवस्था और जातिवादी व्यवस्था ने, जो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिस प्रकार समाज की बहुसंख्या शूद्र को, कमाने वाले दास के रूप में बदल दिया गया। उसी प्रकार नारी को भी एक कमजोर पुरुष–सेवक जैसी दासी के रूप में बदल दिया, उनके नीति ग्रन्थों में यह सिद्धान्त निरूपित किए गए कि पति परमेश्वर के समान है। भले ही वह कितना ही पतित और अवगुणी क्यों न हो, पत्नी के लिए पूज्य है। कुछ लोगों ने औरत को उस लता के समान निरूपित कर दिया जो पति रूपी पेड़ के सहारे ही टिक सकती है वरना गिर जाएगी। इन सब कथानकों और शिक्षणों ने नारी के मन में हीनता की ग्रन्थि पैदा कर दी और वह स्वत: अपने आपको कमजोर और पुरुष के अधीन समझने लगी। एक समान होने का उसका एहसास समाप्त हो गया और फिर क्रमश: स्वत: महिलाओं ने महिलाओं को प्रताड़ित करने की परम्परा विकसित कर दी जो सास बहू को कष्ट न दे, वह सास कैसी? औरत को दण्ड शक्ति से ही ठीक रखा जाना चाहिए। उसके न केवल चेहरे को ढका जाना चाहिए बल्कि मर्यादाओं की चादर भी इतनी लम्बी होनी चाहिए कि उसके पैर भी नजर न आएँ। वह परदे की ओट से दुनिया को देख सकती है। यही उसकी मर्यादा और नैतिकता है। यहाँ तक कि कतिपय प्रकरणों में पुरुषों के द्वारा बाहर जाने पर घर को बाहर से बन्द

करके जाना, फिर विधवाओं को सती होने को प्रेरित करना अन्यथा पति की मृत्यु पहले होने पर औरत को कलंकिनी कहकर बनारस और मथुरा के मन्दिरों में भिखारी का जीवन जीने को बाध्य करना जैसी अमानुषिक परम्परा विकसित हुई। नारी की सफलता पति के प्रति अंधश्रद्धा और अंधानुगमन नारी की उम्र पति की मृत्यु के पूर्व तक ही जिन्दा रहना, यहाँ तक कि मृत्यु की सम्भावना के पूर्व नैतिकता और चरित्र के नाम पर औरत की शीलता को बंदी कसौटी बना दी गई थी। 14वीं-15वीं सदी के समाज की इन कुपरम्पराओं को स्वत: तुलसीदास ने वर्णन करते हुए लिखा 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी।'

सामन्तवादी काल में समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग विकसित थे। समाज के उच्च जातियों के बीच शूद्र कहे जाने वाले मजदूरों के घरों में चूँकि नारी को काम करने जाना होता था, अत: इस श्रम तथा कृषि संस्कृति ने नारी को अनेक बंधनों से मुक्त रखा। ऐसा नहीं है कि श्रमिकों या कृषि मजदूरों के घरों में आम आदमी व औरत की समानता थी, परन्तु कमाऊ श्रम की बाध्यता ने कुछ बंधन कमजोर कर दिए थे वे घरों से निकल कर खेतों में, जंगल में वनोपज संग्रह जैसे कार्यों में खुलकर बगैर किसी परदे के काम कर सकती थी। धान की फसल बोते समय महिलाएँ घुटनों तक धोती बाँध कर रोपाई और निराई-गुड़ाई का काम भी करती थी। यह नारी बंधन और नारी को आधा इंसान समझने की परम्परा सामन्ती समाज की परम्परा ही थी।

देश के आदिवासी समाज इस अर्थ में समता का श्रेष्ठ उदाहरण माने जा सकते हैं। जहाँ लड़कियाँ मन से वर चुनती थीं, साथ-साथ जंगल खेतों में काम करती थीं। रात में साथ जाकर सामूहिक नृत्य करती थीं, जहाँ सम्पत्ति का कोई संचय नहीं था, जहाँ शृंगार के नाम पर सोना-चाँदी-मोती की बजाय वनपुष्प होते थे, जहाँ नारी इतनी बलशाली होती थी कि शेरों और जंगली जानवारों का मुकाबला करती थीं।

सामन्तवादी जीवन के परिप्रेक्ष्य में विकसित नारी चेतना का सबसे अच्छा उदाहरण मिलता है। शिवाजी की माता जीजाबाई का। शिवाजी के पिता मुसलमान राजा के दरबार में नौकरी करते थे ओर उसकी अधीनता को मानते थे पर जीजाबाई अपने पुत्र को स्वतन्त्र योद्धा के रूप में ही विकसित करना चाहती थीं। इसके लिए उन्होंने सभी

आवश्यक सतर्कताएं बरतीं। जीजाबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को अपने पति के प्रभाव और मुगलों के प्रभाव से बचाया। उसी स्वतन्त्र व्यक्तित्व के साँचे में ढाला। यह आश्चर्यजनक हो सकता है कि पिता जिसके प्रति कृतज्ञ हों, जिसकी रोटी खाते हों, और यह भी चाहते हों कि पुत्र भी उन्हीं की तरह निकले लेकिन पुत्र विपरीत दिशा में ही विकसित हो, और अलग ही मनोभूमि वाला बन जाय लेकिन माँ के महत्त्व और व्यक्तित्व को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं है।

पुराने समय में पुरुष के साथ चलने वाली स्त्री मध्य काल में पुरुष की सम्पत्ति समझी जाने लगी परन्तु पुराने समय से ही जब-जब सामाजिक धार्मिक-आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण की शिकार नारियों ने जब-जब खुद अपनी एक अलग पहचान की तलाश की है तब-तब उसको सफलता मिली। मुगलकाल में नूरजहाँ, रजिया बेगम उस वक्त की उदाहरण हैं। मध्यकाल में अकेली मीरा ने ही उस वक्त की शोषक व्यवस्था को बदलने का साहस किया था। परन्तु बाद की आने वाली शताब्दी में नारी को हर जगह पीछे धकेला गया। जब मुगल साम्राज्य का उदय हुआ तब ही परदा प्रथा ने हिन्दू परिवारों पर भी इसका असर दिखाना शुरू किया। फिर कुछ वहशी शासकों के आ जाने से बाल-विवाह के ताण्डव शुरू हुए ताकि लड़की की जिम्मेदारी जितनी जल्दी खत्म हो सके उतना ही अच्छा है। और उसके बाद तो नारी को परदे में रखने की परम्परा इतनी सख्ती से लागू की जाने लगी कि महिला शिक्षा ही समाप्त होने लगी।

मध्यकाल में नव सामन्ती युग आया तो दुर्बल लोगों का शोषण किया जाने लगा इसके लिए जंगली कानून बने और उन्हीं कानूनों के घेरे में नारी भी आ गई। नारी जाति के सामूहिक रूप से पतिता, अनाधिकारी बताया गया। उसी विचारधारा ने नारी के मूल अधिकारों पर प्रतिबंध लगा कर पुरुष को हर जगह बेहतर बता कर उसको इतना शक्तिहीन, विद्याहीन और साहसहीन कर दिया कि नारी समाज के लिए क्या उपयोगी सिद्ध होती, उलटे वह तो अपनी आत्मरक्षा के लिए पुरुष पर आश्रित हो गई। कुछ नियम समाज के ठेकेदारों और पुरोहितों ने मिल कर बनाये जिसमें पुरुष को देवता और औरत का ईश्वर बता कर उसको भाग्य का लेखा, ईश्वर की इच्छा विधि का विधान आदि नाम दे दिए। इसी प्रकार समाज ने कहा कि स्त्री का पति ईश्वर तुल्य है। उसके पाँव छुओ, उसकी झूठन खाओ, पुरुष ने अपनी समस्त इच्छाओं के संसाधन जुटा कर बदले में सिर्फ नारी को

संरक्षण दिया। नारी दया, ममता, सेवा आदि गुणों से सम्पन्न होते हुए भी एक पदार्थ बन कर रह गई।

लेकिन मध्यकाल में नारी के प्रति ऐसे कुत्सित वातावरण में एकमात्र कृष्ण भक्त मीरा नारी चेतना को जीवित रखे हुए थी। उनके पदों में हमें नारी चेतना और नारी चेतना की सुगन्ध मिलती है। मीरा के समकाल में दरबारी या सामन्तवादी व्यवस्था अपने पूर्ण उत्कर्ष पर थी जो अपने परम्परागत आचार-विचारों, रूढ़ियों, जातिभेद तथा वर्गगत वैशिष्ट्य को प्रश्रय देती हुई व्यक्ति स्वातन्त्र्य, व्यक्ति समत्व एवं नारी समानाधिकार आदि लोकतान्त्रिक मूल्यों का हनन कर रही थी, उस वर्ग भेद की पोषक ह्रासोन्मुखी सामन्तवादी संस्कृति के विरुद्ध व्यष्टि के विद्रोह का स्वर जन संस्कृति की उत्कर्षमूलक चेतना का ही प्रमाण है। मीरा जिसकी ज्वलन्त प्रतीक थी। मीरा के काव्य में उस चेतना के स्पष्ट तत्त्व विद्यमान हैं। मध्ययुग के उस रूढ़िग्रस्त समाज को मीरा की यह चुनौती क्रान्तिकारी स्वर में है, देखिए—

हेली म्हासूं हरि बिनि रह्यो न जाय।
सास लड़ै ,मेरी ननद खिजावै ,राणा रह्या रिसाय।
× × ×
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, और न आवै म्हारी दाय।[1]

मीरा की जीवनी से यह स्पष्ट है कि उसकी सास और ननद ने उस पर कठोर नियन्त्रण लगाने की चेष्टा की लेकिन वह अपने कृष्ण प्रेम में उनसे भी विपरीत हो गई।

मीरा अपने कृष्ण के प्रेम में संसार की परवाह नहीं करती है। निश्चित रूप से मीरा सामन्तवादी जीवन के परिप्रेक्ष्य में विकसित नारी चेतना की ध्वज-वाहक है। देखिए—

अंख्यां तरसां दरसण प्यासी।
मग जोवा दिण बीतां सजणी ,रैण पड्या दुःख राशी।
× × ×
मीरां रे हरि हाथ बिकाणी जणम जणम री दास।[2]

इस पद्य से सिद्ध होता है कि उस समय नारी अगर पुरुष के विपरीत चलती थी तो उस पर ताने कसे जाते थे तथा उसे हेय नजरों से देखा जाता था।

मध्यकाल में स्त्री को दैहिक सुन्दरता को धारण करने हेतु प्रेरित किया जाता था जिससे कि नारी पुरुष की काम तृप्ति का साधन मात्र बने लेकिन मीरा ने सुन्दर बनने के लिए सभी आभूषण त्याग दिए। यह पुरुष समाज के लिए सीधी सीधी चुनौती थी। देखिए—

सांवलियां म्हारो छाय रहृया परदेस
म्हारा बिछड्या फेर ना मिल्या भेज्या णा एक सन्नेस।
रतन, आभूषण भूषण छांड्या खोर किया किर केस।
भगवां भेष धर्यां थे कारण, ढूंढ्यां चर्यां देस।[3]

मीरा ने कृष्ण रूपी ईश्वरीय आलम्बन को पति–पत्नी के मानवीय सम्बन्धों में बाँधकर उसे लोकमानस के लिए सुलभ बना दिया। इतिहास मीरा का विवाह और पति की मृत्यु दर्शाता है, लेकिन विद्वान् उसे वैराग्य परिभाषित करते हैं पर मीरा तो इस विवाह से ही इनकार करती है। वह वैरागन को कुसुम्भी साड़ी पहनकर गिरध के रंग राची है। उनका गिरधर तो उसकी साड़ी की कोटा किनारी है 'सांवरा म्हारौ सालूड़ा री कोर' भगवा वस्त्र मीरा के केसरिया रंग के अर्थ में आता है तो एक ओर दुनिया से नाता तुड़ाता है तो दूसरी ओर केसरिया बालम से लगाव भी दर्शाता है। देखिए—

मैं तो सांवरे रंग राची।
साजि सिंगार, बांधि पग घुंघरू, लोक–लाज तज नाची
गई कूमति, लई साधां संगत, भगत रूप भई सांची।
गाई गाई हरि के गुन निसिदिन, काल व्याल सो बांची।
उण बिन सब जग खारो लगात, और बात सब काँची।
मीरा श्री गिरधरलाल सूं, भगति रसीली जांची।[4]

मीरां और श्याम के इस मानवीय सम्बन्ध ने भक्ति को नया आयाम और नया रूप दिया तथा धर्म की रहस्यवादिता एवं घोर आध्यात्मिकता के स्थान पर भक्ति साधारण मनुष्य जीवन का अंग बन गई।

स्त्री के लिए संघर्ष का आह्वान

वर्तमान देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, विकास को गति देने में नारी का भी अहम स्थान है। द्रुत गति से विकास में सहायक आज की नारी मध्यकालीन नारी से कहीं आगे हो चुकी है। भरपूर आत्मविश्वास के साथ नारी अस्मिता की पहचान के लिए निरन्तर संघर्षरत है। जीवन्तता के साथ नारी स्वयं के लिए मानवीय दृष्टिकोण की जमीन तलाशती समाज को मानवीय बनाने की कोशिश में है। सरल सहज समर्पण, सेवा, त्याग के बाद भी नारी सदियों से उत्पीड़ित है। उत्पीड़न के खिलाफ नारी हर युग में खड़ी हुई है। विरोध की शक्ति होने के बाद भी शक्ति का ह्रास होता है और हर युग में वह सिर्फ खड़ी ही है, एक निश्चित स्थान की चाह में, स्त्री मुक्ति माँग रही है, गृहिणी घर में काम करती स्त्री, दफ्तर में काम करती स्त्री, कारखाने में कामरत स्त्री, मानवीय रिश्तों में बँधी स्त्री, पुरुष प्रेम के द्वन्द्व में दुविधाग्रस्त स्त्री, बौद्धिक बनती स्त्री, अक्षर ज्ञान से रहित स्त्री, साक्षर स्त्री...स्त्री? ...स्त्री? मुक्ति चाहती है। हर वर्ग, हर जाति, हर धर्म की स्त्री श्रमिक है, श्रम मानसिक हो या शारीरिक, नारीवाद का नारा पूरे विश्व को चकित कर रहा है।

इतिहास इस बात का गवाह है कि सिद्धान्त और कार्य में दोनों की स्थिति में पर्याप्त अन्तर तो था, परन्तु नारी विषयक सिद्धान्तों में नारी को देवी का दर्जा दिया, पर स्थिति दासी जैसी ही रही। दास और नारी की स्थिति एक समान थी। नारी दासी थी, अनुचर थी पुरुष की, पुरुष स्वामी था, रहनुमा था, जो पुरुष देखेगा, वही नारी देखेगी, पुरुष सोच, पुरुष दृष्टि पर नारी आश्रित थी। आश्रिता नारी, समाज परिवर्तन के साथ पुरुष की निजी सम्पत्ति बन गई, सन्तान पैदा कर उसका पालन-पोषण करना, और गृह कार्य करना ही नारी की नियति बना दी गई। सदियों तक नारी की यथास्थिति ने उसे और अधिक लाचार बना दिया। पति की अर्द्धांगिनी स्त्री, मात्र छाया बन कर रह गई। वैदिक काल की उच्च स्थिति प्राप्त नारी का सच पुरुष व्यवहार के समक्ष उजागर हो जाता है। और नारी मध्यकाल (भक्तिकाल) में संरक्षण के नाम पर कैद कर दी जाती है। मध्यकाल में नारी के समस्त अधिकारों को पुरुषवादी सोच ने संरक्षित कर दिया। चाहे चीर हरण हो, पटरानी की भूमिका हो, कामिनी हो, आमोद-प्रमोद का साधन हो, गणिका हो, देवदासी हो, हर स्थिति में नारी की भूमिका को भोग लिप्सा की वस्तु के रूप में आंका गया। रीतिकाल की नारी भक्ति काल की नारी से सर्वथा भिन्न थी। हालाँकि मध्यकाल में भी नारी

को गरिमामय स्थान प्रदान करने का प्रयास किया गया। मध्यकालीन नारी की असहाय स्थिति को देखते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने रेखांकित करते हुए 'अबला' कहा, लेकिन अबला किस रूप में? शारीरिक? या मानसिक?

"मध्यकालीन नारी ने अपने आपको असहाय और निरुपाय रूप को सच मानकर दासता को अपना प्रारब्ध मान लिया। मध्यकाल की कंचन (धन) का पर्यायवाची बन चुकी नारी के सामन्ती सोच का विरोध सन्त कवियों द्वारा किया गया।"[5] भक्तिकाल के कवियों के द्वारा सामन्तों के भोग-लिप्सा की आलोचना की गई। भक्तिकाल में ब्राह्मणवाद, कुलीनता और धार्मिक अनाचारों का संगठित होकर विरोध किया गया है। सामन्ती संस्कृति को जनविरोधी बताते हुए समानतामूलक दर्शन का सूत्रपात किया गया "जाति पाँति पूछै नहिं कोई हरि को भजै सो हरि का होई" का अलख जगाते हुए सन्तों के द्वारा नवजागरण का सूत्रपात किया गया। इसी समानतामूलक दर्शन से नारी को गरिमामय स्थान प्रदान करने का प्रयास किया गया। भक्तिकाल में सर्वप्रथम नारी मुक्ति और समानता का पहला प्रयास सूरदास ने अपने काव्य के माध्यम से किया। सूरदास ने अपने काव्य में गोपियों को एक वस्तु के स्थान पर व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। नारी के स्वाभिमान और गरिमा की रक्षा जिस प्रकार सूरदास ने की है, भारतीय साहित्य में ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। सामन्ती नैतिकता और जड़ संस्कृति, पतिव्रत धर्म के बंधनों का गोपियाँ अतिक्रमण करती हैं। वे पुरुषों के समान ही (धार्मिक आवरण में ही सही) सामाजिक क्रिया-कलापों में हिस्सा लेती हैं। कृष्ण को वे सखा, मित्र और सहयोगी के रूप में स्वीकार करती हैं। लेकिन मथुरा के राजा के रूप में वे अस्वीकार करती हैं। गोपियों को राजा की नहीं, सखा कृष्ण की आवश्यकता है। गोपियाँ मथुरा को काजल की कोठरी बताती हैं, जहाँ रहकर कृष्ण दोष युक्त हो गए हैं, देखिए—

बिलग जनि मानहु ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजल की कोठरी जे आवहि ते कारे।।
×　　　×　　　×
ता गुन स्याम भई कालिन्दी सूर स्याम गुन न्यारे।।[6]

नारी सत्ता के लिए संघर्ष का उद्घोष सूरदास के काव्य में स्पष्ट रूप से चित्रित है। गोपियों को कृष्ण से मिलने के लिए अपनी सास और ननद की फटकार को भी सहना पड़ता है, देखिए—

सास ननद घर त्रास दिखावैं।

× × ×

सुनहुँ सूर यह उन्हीं फाबै, ऐसी कहति डरावै।[7]

उपर्युक्त पद से यह भी सिद्ध होता है कि उस काल में भी उच्च वर्ग की स्त्री और निम्न वर्ग की स्त्री सत्ता में भेद था। कुलीन वर्ग की स्त्री के लिए लोग कहते डरते थे लेकिन हीन जाति की स्त्रियाँ सबकी दया और उपहास का पात्र थीं। इसमें निम्न जाति की स्त्रियों को उच्च कुल की स्त्रियों से भी दूर रहने की सलाह दी गई है ताकि वे कुलक्षणों से बची रहें, लेकिन फिर भी नारी मन बार-बार स्वतन्त्रता का अभिलाषी है। गोपियाँ अपने परिवार की प्रताड़ना और त्रास के बावजूद कृष्ण से मेल-मिलाप जारी रखती हैं।

स्त्री साहित्य या स्त्रीवादी साहित्य स्त्री रचित होने के कारण स्त्री हितों एवं स्त्री मुक्ति का पक्षकार होता है। स्त्रीवादी चिन्तन की दृष्टि से लिंगभेद, स्त्री-पुरुष के बीच की संरचनात्मक असमानता की बुनियाद मानी जाती रही है। स्त्रीवादी पक्षधरों ने स्त्री-पुरुष के शारीरिक अन्तर को बहस का मुद्दा बनाया है। स्त्री प्रकृति की स्वाभाविकता तथा पुनरुत्थान की प्रकृति ही उसे पुरुष की तुलना में समर्पणकारी बनाती है। हकीकत में स्त्री एक जैसी कभी नहीं रही एक संस्कृति की स्त्रियों में विभिन्नताएँ मिलेंगी। एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति के बीच में भी भिन्नता को सहज ही देखा जा सकता है। वस्तुत: स्त्री अस्मिता को माँ, बहन, बेटी, बीवी, रखैल, वेश्या की कोटियों से बाहर लाकर एक स्त्री के रूप में देखे जाने की मानसिकता का प्रादुर्भाव स्त्री साहित्य से ही हुआ है। स्त्री साहित्य की सृजन की प्रथम कड़ी के रूप में मीरा नारी मुक्ति का प्रतीक बन कर सामने आई। एक सामन्ती परिवार में जन्म लेने के बाद भी मीरा ने सामन्ती जड़ नैतिकता और नारी को दासी समझने वाली संस्कृति को सिद्धान्त और व्यवहार में चुनौती दी। मीरा का साहित्य नारी मुक्ति का सबसे जीवन्त उदाहरण है। आभूषण नारी को सबसे ज्यादा प्रिय होते हैं, क्योंकि आभूषणों

से नारी अधिक सुन्दर प्रतीत होती है, लेकिन मीरा तो आभूषणों के बंधन में ही नहीं रहना चाहती, वह तो उनसे मुक्त होना चाहिती है, देखिए—

मुज अबला ने मोटी नीरांत थई रे।
शामलो हारेणु मारे सांचु रे।
× × ×
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर, हरि ने चरणे जांचू रे।[8]

मीरा ने आभूषणप्रियता को नकार कर यह सिद्ध किया है कि स्त्री की सत्ता को समाप्त करने के लिए उसके नाक में, कान में छेदकर गहने पहनाए जाते हैं। उसे स्त्री बनाया जाता है। स्त्री समझती है कि मैं सुन्दर लग रही हूँ, लेकिन पुरुष वर्ग बड़ी चतुराई से उसे स्वर्णमय आभूषणों के रूप में बेड़ियाँ पहना देता है। मीरा इन्हीं बेड़ियों को तोड़ती है और सारे आभूषणों को नकार देती है।

मीरा स्वतन्त्रता की आकांक्षा को दिल में लिए कृष्ण के समक्ष सारे संसार को फीका समझती है—

चालां वाही देस प्रीतम पावां चालां वाही देस।
कहो कसूमल साड़ी रंगांवा, कहो तो भगवां भेस।
कहो मोतियन माँग भरांवां कहो छिडकावां केस।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर सुणज्यो विडद नरेस।[9]

मीरा आज भी सबसे ज्यादा स्त्री सत्ता के संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है। जब मीरा को राणा, जैसे राजा कहें या पूरे सामन्ती समाज ने कष्ट व उलाहना दिए तब मीरा ने आत्महत्या की कोशिश नहीं की बल्कि उनके खिलाफ संघर्ष किया। मीरा को आज से कहीं ज्यादा बर्बर सामन्ती समाज मिला था। मीरा के पति भोजराज की मृत्यु के बाद समूचा राणा राजपरिवार उनका अभिभावक बन बैठा। मीरा की कृष्ण भक्ति व साधु-संगति उन्हें रास नहीं आई और वे मीरा के प्रति निर्मम होते चले गए। किन्तु मीरा एक निर्भीक चेतनापूर्ण नारी थी। उन्होंने अडिग रह कर राणा के अत्याचारों का सामना किया।

आज के सन्दर्भ में कहते हैं कि स्त्री का रूप बदला है, स्त्री नई व बदली हुई नजर आती है, लेकिन स्त्री की नई छवि में एक पुरानी दबी, ढकी, डरी हुई स्त्री उसके साथ

खड़ी रहती है तथा कदम-कदम पर उस पुरानी स्त्री को संघर्ष करते हुए चलना पड़ता है। विख्यात लेखिका सीमोन द बोउवार का कथन—"स्त्रियोचित दायित्वों से बँधी रहने के कारण स्त्री के जीवन का इतिहास पुरुष के जीवन के इतिहास की अपेक्षा उसकी शारीरिक बनावट पर अधिक निर्भर करता है। उसके भाग्य के मोड़ पुरुष के भाग्य के मोड़ों की अपेक्षा अधिक ऊबड़-खाबड़ और कटे-फटे रहते हैं। जीवन के एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुँचने की प्रक्रिया में स्त्री को हठात् और भयंकर परिवर्तन झेलने पड़ते हैं। हर स्थिति में मानो उसके लिए एक चरम सीमा आ जाती है।"[10]

सीमोन द बोउवार ने यह भी कहा है कि—"मुक्ति की शुरुआत बटुए से होती है।" इसका अर्थ सिर्फ आर्थिक स्वतन्त्रता ही नहीं है। आज स्त्री यह नहीं चाहती कि वह मुक्त होकर अकेली रहे आज नारी स्वतन्त्रता का गलत अर्थ में लिया जाता है कि नारी मुक्त होकर अकेली रहना चाहती है। भारत में नारी मुक्ति को पश्चिम की नारी मुक्ति से जोड़ कर देखा जाता है। जैसे अमेरिका में स्त्रियों ने स्वतन्त्रता के लिए अपनी ब्रा को हाथ में लेकर प्रदर्शन किया था, भारत में वैसी स्वतन्त्रता की माँग नहीं है, वैसा उन्मुक्त जीवन तो भारत की स्त्रियों को ही मंजूर नहीं है। भारत की सामाजिक परिस्थितियाँ पश्चिम के समाज से भिन्न है। हम मीरा के संघर्ष को क्यों नहीं देखते हैं? नारी के संघर्ष को यदि हम मीरा के सन्दर्भ में देखेंगे तो ही समझ पाएंगे कि मीरा जैसी राजघराने की बेटी, और राणा के परिवार की पुत्रवधू ने संघर्ष का जो रास्ता अपनाया और उसी पर अडिग रही। कृष्ण भक्ति के अपने मनचाहे रास्ते पर चलने के लिए उन्होंने राणा का भेजा हुआ विषपान भी किया। क्यों? क्योंकि उनमें कृष्ण के प्रति सच्ची श्रद्धा थी, कृष्ण की लगन थी। राणा ने उन्हें तरह-तरह से बांधने की कोशिश की, लेकिन मीरा में मुक्ति की छटपटाहट इतनी तीव्र थी कि वे किसी बन्धन में न बँध सकी और कृष्ण में ही लीन रही। आज उनकी वही चेतना आज की स्त्री के लिए प्रेरक है।

सीमोन द बोउवार का कथन है कि—"औरत पैदा नहीं होती, औरत बनाई जाती है।" लेखिका का यह कथन मीरा पर सटीक बैठता है। समाज परिवार ने उन्हें भी संस्कार में बँधी, मर्यादा में रहने वाली औरत ही बनाया था, लेकिन मीरा ने इस स्थिति को अस्वीकार कर दिया। यदि मीरा सामन्ती समाज की रूढ़ियों के नीचे दब कर औरत बन जाती तो मीरा न बन पाती, लेकिन मीरा को सामन्ती समाज में औरत बनाने का काम तो

करती ही है। कहते हैं कि औरत के लिए जमाना, समाज कभी नहीं बदलता लेकिन मीरा जैसी दृढ़ प्रति स्त्रियाँ आज इसे बदल कर दिखा रही हैं। जिस तरह तत्कालीन सामन्ती प्रथाओं और जड़ पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरोध में मीरा का स्वर विद्रोही हुआ, आज की समकालीन स्त्रियों का स्वर क्यों मुखर नहीं हो सकता। मीरा भगवद प्रेम के द्वारा क्रान्ति का बिगुल बजाना चाहती थी। मुक्ति की चाह ने ही मीरा को एक विद्रोही स्त्री का रूप दिया। उन्होंने न परिवार की न समाज की परवाह नहीं की। हर रचना अपने परिवेश व युग का आईना होती है। मीरा भी अपने उसी सामन्ती युग की देन है। स्त्रियों के प्रति क्रूर समाज में ही मीरा का निर्माण हुआ था तथा उन्होंने सामन्ती समाज से लोहा लिया था। और अपने परिवेश की स्त्रियों में नृशंस व्यवस्था से छुटकारा पाने की अलख जगाई थी। राणा का कोई भी यत्न उन्हें अपने स्वतन्त्र आचरण से नहीं रोक पाया। राणा ने स्वतन्त्र आचरण की घोषणा करने वाली मीरा को बदनाम करने की पूरी कोशिश की लेकिन कृष्ण भक्ति की अनुरक्ति ने मीरा के व्यक्तित्व को अद्भुत, आत्मविश्वास दिया। तभी मीरा ने कहा—

राणा जी म्हाने या बदनामी लागे मीठी।
कोई निन्दो, कोई बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अनूठी।
सन्त संगति मा ग्यान सुणै छी दुरजन लोगां ने दीठी।
मीरां रो प्रभु गिरधर नागर दुरजन जलो जाग अंगीठी।[11]

इस पद में मीरा ने अपने जीवन में प्राप्त होने वाली बदनामी का स्पष्ट निर्देश किया है। श्रीकृष्ण की भक्ति के कारण सामाजिक रूप से राज परिवार में उसे बदनामी सहनी पड़ी। दुर्जनों के जो कड़वे वचन सुनने पड़े, उन सबका उल्लेख यहाँ किया गया है।

मीरा अपने समय के समाज का सामन्ती पतनशीलता से संघर्ष करती हुई एक निर्भीक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में भक्तिकाल में अपनी अलग छाप छोड़ती है। स्पष्ट है कि मीरा भक्तिकाल में स्त्री सत्ता के लिए संघर्ष का आह्वान करती है।

स्त्री शोषण की प्रतिरोधहीनता

भक्तिकाल विदेशी आक्रमणकारियों के सामने भारत की पराजय का काल है जिसके कारण तत्कालीन कवि, और सामान्य मनुष्य घबराकर भगवान् की शरण में जाने के लिए तड़प उठता है। इस काल के काव्य में नारी मुख्यत: दो रूपों में अंकित हुई है—

1. सामान्य नारी के रूप में निन्दा एवं उपेक्षा का पात्र।

2. आराध्य देवों की संगिनी के रूप में सम्मानित पात्र।

इस काल के निर्गुण मार्गी संत कवियों ने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा और पुरुष को विनाश पथ पर ले जाने वाले कारक के रूप में प्रस्तुत किया। कबीर ने उसे नरक का द्वार बताकर यहाँ तक कहा है कि नारी की छाया से तो साँप भी अँधा हो जाता है (नारी की झाईं पड़त अँधा होत भुजंग) फिर उन पुरुषों की गति क्या होगी, जो नित्य ही नारी के संसर्ग और सम्पर्क में रहते हैं। मलूक दास नारी के नेत्रों को भयानक तथा सन्त धरनीदास बिजली की तरह बताते हैं इससे यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल में स्त्री का शोषण चरमोत्कर्ष पर था। लगभग हर कवि नारी के लिए मनमाने ढंग से लेखनी चला रहा था, लेकिन इसका प्रतिरोध करने की शक्ति किसी भी नारी में नहीं थी। हालाँकि कबीर के गुरु रामानन्द के शिष्यों में पद्मावती नामक स्त्री शिष्या भी थी, लेकिन उसके काव्य में भी स्त्री शोषण की प्रतिरोधहीनता नहीं मिलती। शायद भक्तिकाल स्त्रीनिन्दा काव्य रूढ़ि के रूप में निश्चित सी हो गई। हर कवि अपने-अपने हिसाब से नारी निन्दा करने लगा और स्त्री वर्ग चुपचाप देखता रहा। भक्तिकाल में कबीर तुलसी, सबने स्त्री की उपेक्षा की है। शृंगार काल में वह केवल दैहिक काया बनकर रह गई। उस काल के नख-शिख वर्णन में स्त्री के अंग-प्रत्यंग विवेचित हुए।

भक्ति काल में सूरसागर के प्रथम खण्ड में कृष्ण कथा वर्णन के पूर्व कवि नारी को नागिन से अधिक भयंकर कहा गया है और तो और मनुष्य की विवाहित अवस्था भी अहंकार के समान त्यागने योग्य सूरदास ने बताई है—

रे मन जग पर जानि ठगायौ।
धन मद, कुल मद, तरुनी कै मद भव मद हरि बिसरायौ।।
कलिमल हरन कालिका टारन रसना स्याम न गायौ।
रसमय जानि सुवा सेमर कौ चोंच घालि पछतायौ।।[12]

मध्यकाल के कवि अब्दुर्रहमी खानखाना ने स्त्री की नजर को बाण की चोट की संज्ञा दी है जिससे पुरुष को बचना चाहिए, देखिए—

जो रहीम जग मारियो नैन, बान की चोट।

भगत भगत कोऊ बच गए, चरन कमल की ओट।[13]

सिर्फ भक्त ही इस संसार में नारी मोह से दूर रह सकते हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि लगातार कवि नारी के लिए नकारात्मक शब्दों का प्रयोग करते रहे और जनता भी भ्रमित होकर उनके नारी चिन्तन को अपनाती रही। इसलिए सामान्य जन का स्वभाव भी नारी के प्रति दूषित हो गया और नारी पर अत्याचार होने लगे। सूरदास की गोपियाँ पुरुष सत्ता के समक्ष खुद को ही पागल कह रही हैं। यही स्त्री की प्रतिरोधहीनता है। देखिए—

ऊधो! हम ही हैं अति बौरी!
सुभग कलेवर कुंकुम खोरी, गुंजमाल अरु पीत पिछौरी।।
रूप निरखि दृग लागे ढोरी, चित चुराय लयो मूरति सो री।।
गहियत सो जा समय अंकोरी! यही ते बुधि कहियत बौरी।।
सूर स्याम सों कहिय कठोरी! यह उपदेस सुनें तैं बौरी।।[14]

सूरदास के इस पद से सिद्ध होता है कि जिस प्रकार गोपियाँ कृष्ण को दोष नहीं देकर स्वयं को ही पागलपन का शिकार बता रही हैं, वह उनके संघर्ष के प्रतिरोधहीनता का स्पष्ट सूचक है। मध्यकाल की नारी इतनी दबी कुचली अवस्था में भी कि संघर्ष करना तो दूर उसकी आवाज तक नहीं उठा पाती थी।

मध्यकाल की स्त्री का अपना कुछ भी नहीं था। वह अधिकारपूर्वक किसी भी क्षेत्र में अपना हक नहीं जमा सकती थी। गोपियाँ स्वयं ही स्वीकार करती हैं कि कृष्ण अपनी मर्जी से मथुरा चले गए और वे कुछ नहीं कर पाईं। यही स्त्री जाति के शोषण की प्रतिरोधहीनता है, देखिए—

ऊधो! मन नहिं हाथ हमारे।
× × ×
सूर, सपथ हमें कोटि तिहारी, कहौ करैगी सोय।[15]

भक्तिकाल के रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास जी ने भी अपने नारी चिन्तन में स्त्री के शोषण की प्रतिरोधहीनता को व्यक्त किया है।

रामचरित मानस में शिव जी, पार्वती को सीता का वेष रख कर राम की परीक्षा लेने की सजा देते हैं और उसे त्याग देते हैं। बेचारी पार्वती जी नारी स्वरूप होने के कारण कुछ भी नहीं कह पातीं, न ही कोई प्रतिरोध करती हैं, बस सिर झुका कर पति शंकर जी का फैसला मान लेती हैं, देखिए—

सती हृदय अनुमान किय सब जानेऊ सर्बग्य।
कीन्ह कपट मैं सम्भु सन, नारि सहज जड़ अग्य।।
जलु पथ सरिस बिकाई देखहु प्रीति की रीति भलि।
बिलग होई रसु जाई कपट खटाई परत पुनि।
हृदय सोच समुझत निज करनी। चिन्ता अमिट जाई नहिं बरनी।।
कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा।
संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेऊ हृदय अकुलानी।।
निज अध समुझि न कछु कहि जाई। तपई अवां इन उर अधिकाई।।[16]

स्त्री के शोषण की प्रतिरोधहीनता का एक अन्य उदाहरण रामचरितमानस में ही मिलता है जब रावण सीता का अपहरण करता है उस समय भी तुलसीदास ने सीता की ओर से कोई विशेष प्रतिरोध का चित्रण नहीं किया। एक ओर तो तुलसीदास सीता को जगज्जननी के रूप में सर्वशक्तिमान कहते हैं, दूसरी ओर वह रावण द्वारा ही बिना किसी कठिनाई के अपहृत कर ली जाती हैं, देखिए—

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा।।
कह सीता धरि धीरजु गाढा। आई गयउ प्रभु रहु खल ठाढा।।
जिमि हरि बधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा।।
सुनत वचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना।।
क्रोध बंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाई।
चला गगन पथ आतुर भयं रथ हांकि न जाई।।
हा जग एक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया।।
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिन नायक।।
हा लछमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायऊं कीन्हेऊं रोसा।।
बिबिध विलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही।।

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा।।

सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी।।[17]

उपर्युक्त दोहों एवं चौपाइयों में तुलसीदास जी ने किंचित मात्र भी सीताजी का रावण के विरुद्ध प्रतिरोध व्यक्त नहीं किया है। क्या सीता जी रावण के समक्ष थोड़ा भी बल प्रदर्शन करके खुद को बचाने की कोशिश नहीं कर सकती थीं। शायद सीताजी ने ऐसा किया भी हो, लेकिन तुलसीदास जी का ध्यान इस ओर नहीं गया और तुलसीदास जी ने सीता जी के बिना किसी शारीरिक प्रतिरोध के रावण द्वारा अपहरण करवा दिया। इसलिए यहाँ भी स्त्री शोषण की प्रतिरोधहीनता सिद्ध होती है।

तुलसीदासकृत गीतावली के उत्तरकाण्ड में राम द्वारा सीता के परित्याग का वर्णन है। राम ने बड़ी आसानी से सीता का त्याग कर दिया और देखिए! सीता ने उसका विरोध भी नहीं किया और शायद सीता ने किया भी हो लेकिन पुरुषवादी सोच ने हमेशा स्त्री को बलपूर्वक अपनी इच्छाओं के अधिकार में रखा। राम की इच्छा को देखते हुए सीता जी ने बिना किसी प्रतिरोध के वन में जाना स्वीकार कर लिया। स्पष्ट है कि यही मध्यकाल की स्त्री शोषण की प्रतिरोधहीनता है, देखिए—

चरचा चरनिसों चरची, जानमनि रघुराई।
दूत मुख सुनि लोक धुनि घर घरनि बूझी आई।।
प्रिया निज अभिलाष रुचि कहि कहति सिय सकुचाई।
तीय-तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाई।।
जानि करुनासिंधु भाबी बिबस सकल सहाय।
धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लखन बोलाई।।
तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय लेहु चढ़ाई।
बालमीकि मुनीस आश्रम आइयहु पहुँचाई।।
भलेहि नाथ सुहाय माथे राखि राम-रजाइ।
चले तुलसी पालि सेवक धरम अवधि अघाइ।।[18]

सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपनी कृति पद्मावत में स्त्री शोषण की प्रतिरोधहीनता को चित्रित किया है।

पद्मावत में राजा रतनसेन पद्मावती को प्राप्त करने के लिए समस्त राज वैभव त्याग कर जोगी का वेष धारण करके चलने के लिए तैयार होता है तो रानी नागमती उन्हें रोकने हेतु विनय करती है, लेकिन राजा रतनसेन पूर्ण रूप से नागमती की उपेक्षा कर देता है और उसके प्रतिरोध को कोई महत्त्व नहीं देता। उलटा वह तो उसी को डाँट-डपट कर चुपा कर देता है और बेचारी रानी पद्मावती रोती-कलपती रह जाती है, देखिए—

तुम तिरिया मतिहीन तुम्हारी। मूरख सो जो मत धर नारी।।

× × ×

जूड़ कुरकुटा पै भखु चाहा। जोगिहि तात भात दहुं काहा।।

कहा न मानै राजा तजी सबाई भीर।

चला छाड़ि सब रोवत फिरि कै देइ न धीर।।[19]

उपर्युक्त प्रसंग से पता चलता है कि उस समय स्त्री शोषण कितना भयंकर था कि कोई भी पुरुष पर-स्त्री को प्राप्त करने के लिए जब चाहे तत्पर हो जाता था और अपनी विवाहित पत्नी के प्रतिरोध को नहीं मानता था। उस समय पुरुषों में एक आमधारणा बन गई थी कि अगर स्त्री का साथ होगा तो वह सफलता में बाधक होगी। इसके अलावा नारी शोषण का घृणित रूप जायसी रतनसेन के मुख से कहलवाते हैं कि राजा भर्तृहरि अपनी रानियों के स्तनों द्वारा अपने पाँव सहलवाते थे और अपनी घृणित कामवासना की तृप्ति करते थे लेकिन योगी बनने के लिए उन्होंने सारी स्त्रियों को तिलांजलि दे दी। इस प्रसंग से स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है कि पुरुष अपनी मंजिल को पाने के लिए स्त्री को रास्ते का पत्थर समझता था तथा नारी का उपयोग कर छोड़ देने की प्रवृत्ति उस समय के पुरुषवादी चिन्तन में थी। इसी कारण तत्कालीन काव्य में स्त्री शोषण की प्रतिरोधहीनता थी। स्त्री का सबसे बड़ा गुण कहें या अवगुण कि विद्रोह की अपेक्षा समझौता करना अधिक पसन्द करती है। नारी यह सोच कर अपने मन को समझा लेती है कि वेदना सहन करने के लिए ही उसका जीवन है, वह पुरुष की तरह आक्रामक नहीं होती।

स्त्री की विद्रोहात्मकता

भारतीय संस्कृति अपनी विशिष्ट पहचान के कारण सदैव विश्व के लिए आदरणीय एवं वन्दनीय रही है। प्राचीन भारत की लोक कल्याणकारी भाइचारे और

समन्वय की भावना ने विश्व को शान्ति, समता और अहिंसा का मार्ग दिखाया। विश्व में जगत गुरु के नाम से भारत की पहचान रही है। यहाँ के लोगों को अपनी एक आध्यात्मिक सोच रही है 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना जनमानस के लिए प्रेरणा की आदर्श रही है। इसके प्रमुख कारण यह हैं कि समाज सामाजिक सम्बन्धों का कठिन जाल होता है और इन सम्बन्धों का निर्माता स्वयं मनुष्य है। सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य ही समाज में संगठन एवं व्यवस्था स्थापित करते हुए इसे प्रगति एवं गतिशीलता की दिशा में ले जाने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहा है। इसलिए पुरुष स्वभावत: अहंकारी हो गया और वह अपनी स्थिति सामाजिक परिवेश में सर्वोच्च स्तर पर रखने के लिए उत्सुक हो गया। यही मनोभाव पुरुष को वर्चस्ववाद की ओर ले गया। उसने यदि स्त्री को अपने से अधिक पढ़ी-लिखी, जागरूक, तर्कशील, बुद्धिमान् पाया तो अपने को अन्दर ही अन्दर खतरा महसूस करने लगा। यही सर्वोच्चता के खतरे का झूठा डर एक झूठा अहंकारवाद का शिकार व्यक्ति बर्दाश्त नहीं कर पाया, क्योंकि पुरुष स्वभावत: अहंकारी है। वह अपने आपको सामाजिक स्थिति में सर्वोच्च रूप में देखना चाहता है और स्त्री को निम्न स्तर पर देखना चाहता है। पुरुष यह सहन नहीं कर पाता है कि स्त्री की सामाजिक, आर्थिक स्थिति उससे सर्वोच्च हो जाए या उसके बराबर हो जाए।

मध्यकाल में भी ठीक यही सोच अपने चरम बिन्दु पर प्रकट हुई है कि स्त्री पुरुष की निजी सम्पत्ति है, लेकिन अपनी इस सम्पत्ति की गुणवत्ता को वह कतई आगे नहीं बढ़ाना चाहता। वह नारी को कमजोर रखने में ही अपनी सुरक्षा समझता है। बस यहीं से स्त्री और पुरुष का वैचारिक टकराव शुरू होता है और स्त्री के भीतर छिपी विद्रोहात्मकता बाहर आने लगती है। पुरुष किसी भी रूप में अपनी अवमानना को स्त्री का विद्रोह मानता है। पुरुष अपनी इच्छा को सर्वोपरि मानता है। स्त्री को दबा कर कुचल कर नियन्त्रण में रखने की स्त्री विरोधी दृष्टि सदियों से काम कर रही है। इसके प्रतिरोध में पुरुष तन्त्रात्मक समाज के बन्धनों के खिलाफ उसने विद्रोह किया। स्त्री के क्रान्तिवीर तेवर से परिवार की बुनियाद हिल गई और पारिवारिक विघटन भिन्न-भिन्न रूपों में समाज में पसरता गया। पुरुष का परम्परागत मानस स्त्री के मौलिक अधिकारों को स्वीकार ही नहीं कर पाया। इसके बावजूद स्त्री ने अपनी गुलाम मानसिकता वाली छवि, सती साध्वी या पति परमेश्वरी को तोड़कर स्वतन्त्र वजूद बनाना चाहा। मध्यकालीन समाज में स्त्री—माँ, बहन, पत्नी,

प्रेमिका, दासी आदि के रूप में थी, उसका अपना अलग वजूद नहीं था। उस समय पुरुष स्त्री में परम्परागत कुल लक्ष्मी या कुलवधू वाले स्वरूप को ही ढूँढ़ता था। वह उसी का आकांक्षी था। उसे भक्तिकाल में स्त्री का प्रगतिशील होकर आधुनिक होना बर्दाश्त नहीं था। कोई स्त्री यदि अपने (पुरुष द्वारा नियमित) दायरों से बाहर निकलती दिखाई देती थी तो पुरुष प्रधान समाज उसे कुलटा, बदमाश आदि शब्दों से अलंकृत करता था।

मीराबाई भक्तिकाल में नारी विद्रोह की ध्वजवाहिका मानी जाती है। "मीरा की कविता नारी अन्तर्मन की उस घुटन और तड़प का प्रतिनिधित्व करती है जो स्त्री के विद्रोह के लिए उत्तरदायी है।"[20] हमारी परम्परा धार्मिक नियमों के चलते जो बन्धन नारी को दिए गए हैं, वे हमेशा से ही नारी के अन्तर्मन में विद्रोह के लिए उमड़ते घुमड़ते रहते हैं। भक्तिकाल में मीरा का जीवन और साहित्य नारी विद्रोह का रचनात्मक आगाज (शुरुआत) है। मीरा ने इस कथन को सिद्ध कर दिया कि विरोधी जन्मजात नहीं होते, वे तो देशकाल एवं परिस्थितियों द्वारा बनाये जाते हैं। मीरा का कृष्ण के प्रति पूर्ण एकात्म भाव के साथ व्यवस्था से विद्रोह एक अद्भुत और विरल संयोग है। मीरा ने नारी जीवन की सर्वमान्य व्यवस्था विवाह रूपी संस्था और उसके नियमों से विद्रोह करके बताया है।

मीरा का सम्बन्ध मेड़ता के राजपरिवार से था। इस बात पर लगभग सभी विद्वान् सहमत हैं कि वे राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ विवाहत थीं। विवाहोपरान्त वे ससुराल आईं और मेड़तणी कहलाने लगीं। मीरा बचपन से ही कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थीं। लोकगीतों की मधुरता एवं राजसी कलाप्रियता ने उन्हें अनायास ही संगीत प्रेमिका बना दिया तो साधु संगति के प्रभाव से उनका हृदय भक्ति एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट हुआ जिसकी गूँज उनकी रचनाओं में सुनी जा सकती है।

मीरा के विधवा होने के पश्चात् मीरा के अन्तर्मन में स्थित अप्रकट अन्तसंघर्ष प्रकट रूप में उनके जीवन का अंग बन गया। मीरा ने स्पष्ट रूप से तत्कालीन व्यवस्था से विद्रोह किया था, क्योंकि उस समय सती-प्रथा अपनी चरम सीमा पर थी। पति के मरने पर स्त्री को भी उसके साथ मरना पड़ता था, लेकिन मीरा ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार देह त्याग नहीं किया, क्योंकि वे स्वयं को अजर-अमर स्वामी की चिर सुहागिनी मानती थी, देखिए—

स्याम सुन्दर पर बारां जीवणा डारां स्याम।

× × ×

मीरां के प्रभु दरसण दीज्यो ये चरणां आधारां।[21]

तुझे देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ता है तथा मेरे नेत्रों से आँसुओं की धारा बहती है। मैं अपनी विरह व्यथा किसे सुनाऊँ? कौन इसे शान्त कर सकता है? हे सखी विरह की पीड़ा अत्यन्त दुसह्य है। हे प्रभु मुझे शीघ्र ही दर्शन दो, क्योंकि मुझे आपके चरणों का ही आश्रय है।

मीरा ने अपने विद्रोहात्मक स्वर में सांसारिक कुरीतियों तथा आडम्बर पर चोट की है, देखिए—

लेतां लेतां राम नाम रे लोकडियां तो लाजा मरे छै।

× × ×

मीरां ना प्रभु गिरधर नागर चरण कमल चित्त हाम रे।[22]

इस पद में स्पष्ट होता है कि उस समय वेश्या, रण्डियां, तवायफ आदि का खुले में नृत्य होता था तथा ये स्त्रियाँ अपने अंग्र प्रदर्शन एवं कामुक हाव-भावों से पुरुषों की कामपिपासा को शान्त करती थीं। मीरा ने अपने पद में सम्पूर्ण पुरुष समाज से इस बिन्दु पर विद्रोह किया है तथा उन्हें सलाह दी है कि अपने चारित्रिक पतन से बचें।

सूरदास के लिए प्रेम या श्रीकृष्ण की माधुर्य भक्ति जिसमें उनकी लीलाओं का वर्णन है, धर्म का सार है। वह सब प्रकार की सामाजिक और नैतिक सीमाओं का अतिक्रमण कर सकता है। एक सच्चे भक्त के लिए वे वर्ण, जाति या कुल भेद को महत्त्व नहीं देते, फिर भी सूरदास समाज में वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार करते हैं और उच्च वर्ण या ब्राह्मणों का शूद्रों या निम्न वर्ण के लोगों के साथ बैठ कर भोजन करना हंस और कौए या लहसुन और कपूर के योग के समान है।

सूर ने ब्रज में रहने वाले पशुपालक अहीरों के सादे और निश्छल जीवन तथा उसी क्षेत्र में रहने वाले किसानों के कठिन और अभावग्रस्त जीवन को चित्रित किया है। सूरदास नारी को काम या वासना का प्रतीक नहीं मानते, लेकिन फिर भी कई जगह उन्होंने नारी के कामिनी रूप का चित्रण कर दिया है। वे मानते हैं कि नारी मुख्यत: कोमलता, प्रेम, भक्ति

और संवेदनाओं की मूर्ति हैं। सूरदास नारी के लिए भक्ति का मार्ग खोलते हैं, किन्तु मुख्य रूप से सूरदास नारी के लिए पति सेवा को ही महत्त्व देते हैं। सूरदास के काव्य में विरह पीड़ित नारी अपने प्रिय के लिए बौद्धिक तर्क देती हैं, उपालम्भ देती हैं, लड़ती हैं। चाहे अपने पुत्र कृष्ण कन्हैया के लिए यशोदा हो या अपने प्रियतम कृष्ण के लिए राधा सहित गोपिकाएँ हों। सूरदास के उपालम्भ काव्य में तो स्त्री की विद्रोहात्मकता खुलकर सामने आती है, देखिए—

मधुकर! छांडु अटपटी बातें!
फिरि फिरि बार-बार सोई सिखवत हम दुःख पावति जाते।।
× × ×
सूरदास जो रँगी स्याम रंग फिरि न चढ़त अब राते।[23]

कृष्ण के प्रेम में आकण्ठ निमग्न हैं, उद्धव की योग साधना का उद्देश्य निरन्तर चलता रहा। गोपियाँ कभी झुंझलाती, कभी उद्धव को मूर्ख कहती हैं तथा उद्धव की बातों का विद्रोह करती हैं। ऐसी ही खीज और झुँझलाहट से भरी हुई गोपियाँ इस पद में उद्धव से कह रही हैं कि तुम उलटी सीधी एवं अटपटी बातें करना बन्द कर दो। तुम जो बार-बार हमें निर्गुण ब्रह्म की बातों को स्वीकार करने की शिक्षा देते हो, उससे हमें बेहद कष्ट होता है। गोपियों का भाव यह है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उद्धव ने गोपियों को पीड़ा पहुँचाना कर्त्तव्य धर्म मान लिया हो।

गोपियाँ स्पष्ट रूप से कहती हैं कि उन पर श्याम के अलावा किसी भी प्रकार का रंग नहीं चढ़ पायेगा। यही गोपियों का विद्रोहात्मक स्वर है। गोपियों के हृदय में आक्रोश विद्यमान है, वे किसी भी कीमत पर अपने कृष्ण को ही पाना चाहती हैं। उद्धव के समझाने पर वे उससे विद्रोह कर बैठती हैं और अपना आपा खो देती हैं, देखिए—

मधुकर बादि वचन कत बोलत
तनक न तोहि पत्याऊं कपटी अन्तर कपट न खोलत।।
× × ×
अमृत रूप आनन्द अंग निधि अनमिल अगम अमोलत।।[24]

महाकवि तुलसीदास जी भी नारी की विद्रोहात्मकता को अपनी लेखनी से स्वर देते हैं। वे कहते हैं कि—

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग काल न खाइ।।[25]

इस दोहे में तुलसी ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि नारी स्वभाव में विद्रोह के अंकुर फूटने लगे हैं, क्योंकि अग्नि महाविनाशकारी है। वह अगर अपना प्रचण्ड रूप ले ले तो सम्पूर्ण नगर को तबाह कर सकती है। समुद्र में जब ज्वार भाटे या विभिन्न तरह के तूफान आते हैं तो वह तटवर्ती इलाकों में भारी तबाही मचाते हैं और अगर स्त्री भी अपने रौद्र रूप में आ जाये तो वह भी सर्वनाश करने में सक्षम होती है। तुलसी ने स्त्री को काल के समान प्रलयंकारी और विनाशकारी बताया है, जो शान्त रूप में तो देवी स्वरूपा है और रौद्र रूप में विनाशक होती है। निश्चित रूप से तुलसी का यह दोहा नारी के विद्रोही स्वरूप को प्रखर करता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भक्तिकाल में स्त्री की विद्रोहात्मकता के स्वर भी विद्यमान थे। हालाँकि ये स्वर बहुत धीमे सुनाई देते हैं, लेकिन परवर्ती कालों के स्त्री विद्रोह की नींव स्वरूप है।

नारी स्वतन्त्रता का उद्घोष

भक्तिकाल के प्रमुख कवि तुलसीदास, सूरदास आदि के काव्यों में स्त्री स्वतन्त्रता का उद्घोष हुआ है। तुलसीदास जी और सूरदास जी का भारतीय संस्कृति की रक्षा में अनुपम योगदान है। इन दोनों महान् कवियों ने राम और कृष्ण को उस समय भारतीय जनमानस में भगवान् के रूप में स्थापित किया जब ईसाई ईसा को और मुस्लिम मुहम्मद साहब को, महामानव के रूप में स्थापित कर रहे थे और हिन्दुओं के समक्ष एक चुनौती पेश कर रहे थे कि तुम्हारे पास क्या है? तब युगीन आवश्यकता के अनुरूप इन दोनों कवियों ने राम और कृष्ण की स्तुति में ग्रन्थ लिखे और चमत्कारों के नाम पर इन महापुरुषों के साथ कई अलौकिक बातें जोड़ दीं। बाद में इन ग्रन्थों की गलत व्याख्या प्रारम्भ हो गई। इन दोनों कवियों के कारण राम और कृष्ण तो पूजनीय हो गये लेकिन

भारतीय धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप गंदला हो गया। इन दोनों ही भक्त कवियों के काव्य में हमें स्त्री स्वतंत्रता की झलक मिलती है।

प्रसंग यह है कि जब राम का विवाह होता है, तब समस्त स्त्रियाँ अपने परदे को छोड़ कर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार राम और उनके स्वयंवर को देखने आ जाती हैं। स्त्री स्वतन्त्रता यहीं से प्रारम्भ होती है, देखिए—

नारि बिलोकहि हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप।।[26]

विशेष बात यह है कि तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम-सीता के विवाह वर्णन में कहीं भी सीता को घूँघट में नहीं दिखाया है जबकि मध्यकाल का युग तो मुस्लिम प्रभाव से परदा प्रथा की वकालत करता था। तुलसीदास ने उस समय जो सीता जी का विवाह वर्णन किया है उसे पढ़ कर हमें वर्तमान दूल्हा-दुलहन के स्टेज सिस्टम की याद आ जाती है, देखिए—

चलीं संग लै सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बानी।।
× × ×
मुनि समीप देखे दोऊ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई।।
गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि।।[27]

तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में नारी के समान अधिकारों का चित्रण कर स्त्री स्वतंत्रता की अवधारणा को पुष्ट किया है। जब जनक जी के यहाँ से दशरथ के सुकुमार पुत्र राम और लक्ष्मण आदि के विवाह की पत्रिका (चिट्ठी) आती है तो राजा दशरथ रनिवास की सारी रानियों को वह पत्रिका बड़े हर्षपूर्वक दिखाते हैं, देखिए—

राजा सबु रनिवास बोलाईं। जनक पत्रिका बांचि सुनाई।।
× × ×
दिए दान आनन्द समेता। चलें विप्रवर आसिष देता।।[28]

उपर्युक्त चौपाइयों से यह सिद्ध होता है कि मध्यकाल में भी पुरुष वर्ग अपनी खुशी को स्त्रीवर्ग के साथ बाँट लिया करता था। राजा दशरथ, राम के विवाह की पत्रिका आने

की खुशी को अपनी पत्नियों के साथ बाँटते हैं। इससे निश्चित रूप से स्त्री स्वतन्त्रता सिद्ध होती है।

मध्यकाल के कृष्ण भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास ने भी अपने काव्यों में स्थान-स्थान पर स्त्री स्वतंत्रता का चित्रण किया है। सूरदास द्वारा चित्रित गोपियाँ निश्चित रूप से स्वतन्त्रता की अभिलाषा है। गोपियों ने कृष्ण के प्रेम में सारी लोक लाज त्याग दी है, देखिए—

जवहि बन मुरली स्रवन परी।
चकित भईं गोप कन्या सब काम धाम बिसरीं।
× × ×
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी।[29]

सूरदास कहते हैं कि चतुर तथा सुन्दर कृष्ण ने गोपियों के मन को हर लिया। सूरदास की गोपियों की स्वतन्त्रता की पराकाष्ठा और भी देखिए—

चली बन बेनु सुनत जब धाई।
मातु पिता बांधव अति त्रासत, जाति कहाँ अकुलाइ।
× × ×
सूर स्याम के हाथ बिकानी अलि अम्बुज अनुरागे।[30]

इस पद से यह पता चलता है कि सूरदास की गोपियाँ इतनी प्रगल्भ हैं कि वे कृष्ण प्रेम में सारे रीति-रिवाज और सामाजिक मान-मर्यादा को तोड़ने के लिए तैयार हैं। वे इतनी निडर भी हैं कि कृष्ण से मिलन हेतु रात्रि के डरावने अंधकार की भी परवाह नहीं करती हैं। गोपियों का प्रेम प्रवाह इतना तीव्र है कि उसकी तुलना भादौ मास के तेज वर्षा जल से की है। निश्चित रूप से सूरदास ने गोपियों के बहाने से स्त्री स्वतंत्रता का उद्घोष किया है।

गोपियाँ उद्धव को बुरी तरह से डाँटते हुए कहती हैं कि तुम्हारा योग रूपी ठगने का स्वभाव यहाँ ब्रज में नहीं चलेगा, देखिए—

जोग ठगौ री ब्रज न बिकैंहै।
यह ब्यौपार तिहारो ऊधो ऐसेई फिर जैहैं।।
× × ×

सूरदास प्रभु गुनहि छांडि कै को निर्गुन निरबैहे।[31]

पद्मावत में मलिक मुहम्मद जायसी ने भी नारी स्वतन्त्रता का चित्रण किया है। जब रानी पद्मावती गोरा-बादल के पास अलाउद्दीन के खिलाफ युद्ध करने का आदेश देने जाती है, तब गोरा-बादल विनम्र भाव से पद्मावती की आज्ञा स्वीकारते हैं, देखिए—

सखिन्ह बुझाई दगधि अपारा। गै गोरा बादल के बारा।

× × ×

उलटि बहा गंगा कर पानी। सेवक बार न आवै रानी।

का अस कीन्ह कस्ट जिय जो तुम्ह करत न छाज।

अग्यां हाई वेगि कै जीव तुम्हारे पास।[32]

इन चौपाइयों में मलिक मुहम्मद जायसी ने गोरा-बादल द्वारा अपने बालों से पद्मावती के पैरों को साफ करने का चित्रण किया है, जो निश्चित ही नारी स्वतन्त्रता का परिचायक है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल में स्त्री स्वतन्त्रता का चित्रण भी किया गया है। हालाँकि वह काल पूर्ण रूप से सामन्तवादी एवं स्त्री स्वतन्त्रता विरोधी था, लेकिन इन कवियों ने अपने युग से विपरीत चल कर स्त्री स्वतन्त्रता का चित्रण किया।

स्त्री की प्रतिरोधी चेतना का विस्तार

जब स्त्री अपनी उम्मीदों अपनी उमंगों को पूरा नहीं कर पाती तो उसके मन में भी ये भावना उत्पन्न होती है कि इसके मूल में क्या ऐसा है जो उसकी इच्छाओं को पूरा नहीं होने दे रहा है। स्त्री की इच्छाओं और भावनाओं को जब दबाया जाता है तो नारी मन प्रतिकार करने के लिए प्रेरित हो उठता है। नारी मूल रूप से पुरुष और पुरुष द्वारा थोपी गई विरोधी तथ्यों के विपरीत होती है। नारी अपनी इच्छा पुरुष से व्यक्त करती है लेकिन पुरुष जब नारी की भावनाओं का सम्मान नहीं दे तो उसमें विद्रोह की भावना आ जाती है। नारी द्वारा अपने ऊपर होने वाले अत्याचार अनाचार को रोकने के लिए कमर कसती है, वही उसका प्रतिरोध होता है।

प्राचीनकाल से ही पुरुष स्त्री को दोयम दर्जे की समझता आया है। जब नारी अपने अधिकारों की बात करती है तो वह उसका विद्रोह और प्रतिकार माना जाता है।

भक्तिकाल में नारी अपनी इच्छाओं पर अंकुश लगाने की स्थिति में प्रतिरोध करती है और मुक्त होने की आकांक्षा रखती है। कृष्ण भक्त कवयित्री मीरा ने जीवन्त मनुष्य होना स्वीकारा और उसकी हर कसौटी पर अपने आपको खरा साबित किया। वह रानी थी, वैभव, पद, अधिकार, सम्मान और भी बहुत कुछ; जिसकी आशा-अपेक्षा की जा सकती है। वह सब उसके पास था सिर्फ एक चीज नहीं थी मानव हितों के लिए कुछ कर गुजरने की छूट; झूठी मर्यादाओं; लोक प्रचलनों की दुहाई देकर देवर, ननद, समूचा राजपरिवार आत्मा का गला घोटने को तत्पर थे। उन्हें सब कुछ स्वीकार था, सिवाय इसके कि मीरा जनक्रान्ति का बीज बोए। राजपरिवार नहीं चाहता था कि मीरा नारी चेतना को झकझोरने के लिए आगे आए। प्रेतों और मनुष्यों की सारी बातें ही उलटी हैं। एक को अँधेरा अच्छा लगता है, दूसरे को उजाला। एक का दूसरों को परेशान करना भाता है, दूसरे को सहयोग करना। पहले के झुण्ड में दूसरों का रहना बड़ी दुःखद स्थिति है। एक तरह अवरोध दूसरी ओर अन्दर की तड़प, बेचैनी, आकुलता। मीरा के मन पर अत्यधिक भार था। उसे कोई अनुभवी ही समझ सकता था। वह महलों में पड़ी बिलखा करती। मीरा की बेचैनी प्रथा-प्रचलनों के जला-जंजाल में जकड़े समाज के लिए थी। उनका दुःख-दर्द समूची नारी जाति का था। मीरा का हृदय तो करुणा और वेदना से भरा था। बंधन तोड़े और महलों को ठुकरा दिया और स्वयं कूद पड़ी भावों की संजीवनी लेकर अनेकों में प्राण संचार करने हेतु। मीरा का विरोध करने के लिए षड्यन्त्रकारियों के प्रयास चलते रहे। साँपों की पिटारी, जहर का प्याला, शूलों की सेज आदि से मीरा कृष्ण प्रेम की बदौलत बचती रही, लेकिन इस समय तक मीरा के हृदय में एक प्रतिरोधी चेतना ने जन्म ले लिया था।

मीरा घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर द्वारिका और वृंदावन के मन्दिरों में घूम-घूम कर भजन सुनाया करती थी। मीरा जहाँ जाती वहाँ इनका देवियों जैसा सम्मान होता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि अपने राजपरिवार से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास जी को यह पद लिख कर भेजा था——

स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषण दूषण हरन गोसाईं।
बारहि बार प्रनाम करहुं अब हरहु सोक समुदाई।।
घर के स्वजन हमारे जेते सवन्ह उपाधि बढ़ाई।।
साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई।।

मेरे मात पिता के सम हौ, हरि भक्तन सुखदाई।।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समझाई।।[33]

इस पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका का यह पद लिख कर भेजा था। इस पद से निश्चित होता है कि मीरा में प्रतिरोधी चेतना का प्रस्फुटन इसी प्रकार हुआ, देखिए—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो छांडि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
× × ×
अंजन कहा आंखि जेहि फूटै बहुतक कहौ कहाँ लौं।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारौ।
जासौं होय सनेह राम पद एतो मतौ हमारो।।[34]

तुलसीदास कहते हैं जिसके कारण श्रीराम के चरणों में प्रेम हो, वही सब प्रकार से परम हितकारी है एवं पूजनीय और प्राणों से प्यारा है। हमारा तो यही मत है।

मीरा अपने कृष्ण के प्रेम में घूमती घूमती वृंदावन जा पहुँची। ये उस समय साधु–सन्तों की टोली के साथ थीं जिसमें कई स्त्रियाँ भी थीं। शाम हो जाने के कारण सभी ने आगे जाना उचित नहीं समझा। मीरा ने कहा पास ही जीव गोस्वामी जी का आश्रम है। सभी लोग उस आश्रम में पहुँच गये। गोस्वामी जी के सेवन ने मीरा की टोली को आश्रम के बाहर ही रोक दिया। सेवक ने कहा कि गोस्वामी जी किसी स्त्री से नहीं मिलते हैं। सेवक की बात सुन मीरा मुस्कराईं और एक पत्र लिखकर सेवक को दिया। सेवक उस पत्र को लेकर गोस्वामी जी के पास पहुँचा। पत्र पढ़ते ही गोस्वामी जी दौड़ कर बाहर आये और मीरा से क्षमा माँगने लगे। मीरा ने पत्र में लिखा था—"मैंने तो सुना है कि वृन्दावन में सिर्फ एक पुरुष है श्रीकृष्ण। बाकी सब तो गोपिका भाव से श्रीकृष्ण की भक्ति करते हैं। मुझे नहीं पता है कि कृष्ण के अलावा भी कोई दूसरा पुरुष वृंदावन में मौजूद है।"[35] यह उल्लेख डॉ. शम्भुसिंह मनोहर द्वारा सम्पादित कृति मीरां पदावली, पृष्ठ 15 पर भी किया गया है। मीरा के इस कथन का सार गीता में भी मिलता है। श्रीकृष्ण कहते हैं—"यह संसार प्रकृति अर्थात् स्त्री है और मैं परमात्मा ही एकमात्र पुरुष हूँ। मैं ही प्रकृति में बीज की स्थापना

करके सृष्टि चक्र का संचालन करता हूँ। इसलिए स्त्री और पुरुष का भेद करना मूर्खता है। मृत्यु के बाद स्त्री हो या पुरुष, सभी लिंग भेद से मुक्त हो जाते हैं।"

भगवान् शिव का अर्धनारीश्वर रूप भी यह ज्ञान देता है कि स्त्री और पुरुष का भेद अज्ञानता है। जो इनमें भेद करता है वह ईश्वर का अपमान करता है। ईश्वर को पाने के लिए यह जरूरी है कि स्त्री-पुरुष का भेद-भाव त्याग सभी में समभाव रखें।

तुलसीदास जी ने भी स्त्री की प्रतिरोधी चेतना को चित्रित किया है लेकिन तुलसी ने इस चेतना में स्त्री के दीन भाव को प्रमुख स्थान दिया है। स्त्री यह तो चाहती है कि वह विरोध करे पर उसक स्थिति इतनी कमजोर है कि वह पुरुष सत्ता के समक्ष निर्बल हो जाती है और उसका प्रतिरोधी स्वर प्रबल नहीं हो पाता। प्रसंग यह है कि मन्दोदरी रावण को समझाती है एवं दीन भाव से उसका प्रतिरोध करती है कि सीता को वापस लौटा कर श्रीराम से सुलह कर लो, लेकिन रावण नहीं मानता, देखिए—

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहुं प्रानपति बिनती मोरी।

× × ×

मन्दोदरि मन महुं अस ठयऊ। पियहि काल बस मतिभ्रम भयऊ।

एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।

सहज असंक लंकपति सभ गयऊ मद अंध।।[36]

उपर्युक्त प्रसंग से यह पता चलता है कि मन्दोदरी रावण की नीतियों का प्रतिरोध करना चाहती थी। वह रावण से बार-बार विनती करती रही कि राम से वैर मत करो लेकिन रावण ने पुरुषवादी समाज का प्रमुख प्रतिनिधि होने के नाते उसकी एक न सुनी। लेकिन यह स्पष्ट है कि मन्दोदरी रूपी स्त्री सत्ता में गलत मानसिकता के विरुद्ध प्रतिरोधी चेतना विद्यमान थी।

पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देने वाले चित्रण रामचरिमानस में अन्य स्थानों पर भी मिलते हैं। प्रसंग यह है जब हनुमान लंका के लिए प्रस्थान करते हैं तो समस्त देवगण हनुमान के बल बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए सर्पमाता सुरसा राक्षसी को भेजते हैं। वह हनुमान के मार्ग में प्रतिरोध उत्पन्न करती है। यह स्त्री शक्ति का प्रतिरोध ही माना जा सकता है, देखिए—

जात पवन सुत देवन्ह देखा। जानै कहुं बल बुद्धि बिसेषा।

×　　　　×　　　　×

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पाबा।

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।

आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान।।[37]

उस समय नारी सत्ता प्रतिरोध करने की स्थिति में थी क्योंकि एक महाबलवान से टकराने का साहस स्त्री करे यह तो दुस्साहस ही था। हनुमान जी उसे मार भी सकते थे लेकिन इस चित्रण में पुरुष द्वारा स्त्री को आदर और सम्मान दिए जाने का भी उल्लेख है जब हनुमान सुरसा राक्षसी के सम्मुख सिर नवा कर खड़े हो जाते हैं और विनम्रता से उनसे विदा माँगते हैं। इस प्रकरण से यह भी सिद्ध होता है कि अगर स्त्री प्रतिरोध करेगी या प्रतिरोध करने की स्थिति में आ पायेगी तो पुरुष द्वारा सम्मान पाने की अधिकारिणी बन सकती है, जिस प्रकार सुरसा ने हनुमान का प्रतिरोध करके सम्मान पाया।

पुरुष के सामाजिक वर्चस्व को चुनौती

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन अपने समय का एक महान् सांस्कृतिक आन्दोलन था। अपने युग के सन्दर्भों में व एक क्रान्तिकारी तथा जनआन्दोलन भी था। मीरा इसी भक्ति आन्दोलन की अनूठी देन हैं, जो पुरुष प्रधान समाज के वर्चस्व को चुनौती देती हुई दिखाई देती है। मीरा की काव्य साधना ही उनकी भक्ति साधना है। उनके काव्य का एकमात्र स्वर भक्ति ही है, लेकिन वे मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था की पीड़ित नारी भक्त कवयित्री है। इस पीड़ित नारीत्व को भूलकर उनकी कविता को हृदयंगम नहीं किया जा सकता है। भगवत विरह की पीड़ा को कम बहुत कम कवियों ने इतना मादक और प्रभावोत्पादक बनाकर प्रकट किया होगा। मीरा बाई की भक्ति युग सापेक्ष होते हुए भी अपने और परवर्ती युग के लिए मार्ग–प्रदर्शक है। मीरा अपने लौकिक जीवन में एक क्रान्तिकारी अथवा विद्रोही प्रवृत्ति की नारी के रूप में सामने आती है। मध्यकाल का पुरुष कवि भक्त होने के लिए जाति–पाँति, धन, धर्म, बड़ाई छोड़ता था तो स्त्री को लोक लाज कुल शृंखला तोड़नी पड़ती थी। मीरा की रचनाओं में लोक लाज कुल परम्परा को तोड़ने की बात बहुत बार आई है। तत्कालीन सामाजिक बन्धनों को तिनके के समान तोड़ देने वाली इस नारी रत्न ने भक्ति क्षेत्र में रूढ़ हुई अनेक मान्यताओं, मर्यादाओं अथवा बन्धनों

को बड़े साहस से तोड़ा था। मीरा की कविता नारी के अन्तर्मन की उस घुटन और तड़प का प्रतिनिधित्व करती है, जो पुरुष के सामाजिक वर्चस्व को चुनौती देने का कारण बनी। हमारी परम्परा और वेदशास्त्र द्वारा निर्देशित हमारे विधि विधानों के चलते जो सदियों से नारी के अन्तर्मन में उमड़ती घुमड़ती रहती है और जिसे ढोना नारी की नियति बन गया है या मान लिया गया है।[38] भक्ति के अन्तर्गत जो सामाजिक समानता का जो भाव निहित था, वही मीरा को आकर्षित कर रहा था।

मीरा के भावों की अनुभूति किसी दर्शन या सम्प्रदाय के खांचे में नहीं बिठाई जा सकती। जिस तरह कबीर के विद्रोही व्यक्तित्व को किसी सम्प्रदाय में नहीं रखा, ठीक उसी प्रकार मीरा के पदों के माध्यम से मीरा के आत्म-निवेदन को, उनके मन की कचोट को, उनके मन-मस्तिष्क में जल और पक रही समाज तथा सत्ता के महाप्रभुओं के प्रति उनकी गहरी वितृष्णा को तथा राजवधू होने के बावजूद, नारी होने के नात अपने तथा नारी मात्र की असहाय स्थिति को पढ़ना मुश्किल नहीं है। मीरा की भक्ति हमें दो रूपों में दिखाई देती है, एक ओर मीरा अपने युग के सम्पूर्ण धार्मिक बन्धनों से जुड़ी हुई दिखाई देती है तो दूसरी ओर उस युग में पूर्ण प्रचलित, अनिवार्य एवं रूढ़ मान्यताओं को तिनके समान तोड़ने वाले साहसिक व्यक्तित्व की धनी लगती है। मीरा ने लम्बी आयु नहीं पाई, किन्तु जितने समय वे जीवित रहीं, एक शीतल ज्वाला की भाँति जलती धधकती रहीं, बहुत-से लोग उनके तेज और ताप को न सह सकने और न झेल पाने के कारण भयभीत और आतंकित हुए, किन्तु अधिसंख्य भावुक जनों को उनके तेज और ताप ने सुख और सन्तोष ही प्रदान किया। जिस लोक लाज और कुल की मर्यादा को छोड़ने के लिए उन्हें धिक्कारा गया, उन्होंने उस प्रताड़ना तथा लांछन को सिर मारे रखा, और प्रभु के प्रसाद की तरह ग्रहण किया। मीरा ने सामाजिक प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं रखा और समाज द्वारा स्त्रीत्व के सीमित दायरे को उन्होंने तोड़ा। जब मीरा के सामने विष का प्याला आया तो निडर होकर आत्म-विश्वास के साथ पी लिया और पुरुष वर्चस्व को चुनौती दे डाली। इस सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है—"विषपान मीरा का, मध्यकालीन नारी का स्वाधीनता के लिए संघर्ष है। और अमृत उस संघर्ष से प्राप्त तोष है जो भाव सत्य है। मीरा का संघर्ष जागतिक, वास्तविक है। मृत उनके हृदय या भाव जगत में ही रहता है।"[39] मीरा के पदों में अपने समय के रूढ़िग्रस्त समाज से टकराने का स्वर काफी मात्रा में सुनाई पड़ता

है, मीरा जब बार–बार लोक लाज कुल की मर्यादा को तोड़ने की बात करती हैं, तब वह उसी सामाजिक बाधा का संकेत करती हैं।[40]

मीरा ने ईश्वरीय आलम्बन को मानवीय सम्बन्धों से जोड़ा। मीरा ने पति की परम्परागत सत्ता एवं अधिकार को स्वीकार नहीं किया और न ही पति के देहान्त के बाद सती होकर परम्परा को आगे बढ़ाया। उस युग के सामन्ती परिवेश तथा पुरुष प्रधान समाज में पति परमेश्वर मानने वाली हिन्दू स्त्री का परमेश्वर को पति मानने का अधिकार प्राप्त करना आसान नहीं था। यह एक प्रकार से राजनीतिक सामन्तवाद तथा धार्मिक परम्पराओंके विरुद्ध मीरा के रूप में युग की नारी का मूल विद्रोह था।[41]

प्रो. रामबक्षसिंह का आलेख 'मीरां का मर्म' बताता है कि मीरा की असली समस्या स्त्री के मूल अधिकार 400 साल पहले माँग लेना थी और इसी माँग के कारण उसे बावरी (पागल) करार दिया गया। द्रौपदी, अहिल्या, कुब्जा, शबरी और गोकुल की अहीरनों की पीड़ा को, उनकी कसक को मीरा ने अनुभव किया और अपने काव्य के माध्यम से उसे अभिव्यक्त किया। मीराबाई ने पुरुषवादी सत्ता को बड़े कलात्मक एवं कौशलपूर्ण ढंग से चुनौती दी और वैकल्पिक दृष्टिकोण का निर्माण किया। मसलन मीरा जिस राणा राजपरिवार की सदस्या थी, उसमें एकलिंग और भवानी की पूजा का विधान था। इन दोनों कुल देवताओं की उपासना के बजाय उसने गिरधर नागर की उपासना पर जोर दिया। मीरा के गिरधर नागर में मनुष्य एवं ईश्वर का अन्तर मिट जाता है। ईश्वर एवं मनुष्य के बीच का फर्क तभी गायब होता है जब धर्म का मानवतावादी बोध हो। धर्म का मानवतावादी ज्ञान ही ईश्वर की जड़ पूजा और अंधभक्ति से मुक्ति दिलाता है। रूढ़ियों से संघर्ष की प्रेरणा देता है। मीरा ने अवैध साधनों वाली रागानुगा भक्ति का मार्ग अपनाया, जो स्त्रियों के लिए अमान्य माना जाता था। और परम भाव का निर्वाह करती हुई मीरा उन्मुक्त विचरती रहीं। वह समाज द्वारा लांछित भी हुई किन्तु उन्होंने अपना आत्म–मुक्तता का मार्ग नहीं छोड़ा।[42]

मीराबाई ने आज्ञाकारी बनने से इनकार किया। पिता का घर छोड़ा, ससुराल छोड़ा, राजपाट छोड़ और सन्त बनना पसन्द किया। यह एक तरह से समूचे सामन्ती परिवेश का परित्याग था। सामन्ती परिवेश आज्ञाकारिता पर टिका होता है और

आज्ञाकारिता को ही मीरा ने ठुकरा दिया। यह मूलत: स्त्रीवादी चेतना है। स्त्री का दुःख, उत्पीड़न एवं दमन हमेशा निजी रहा है। स्त्रियाँ इसे छिपाती रही हैं। इससे पुंसवादी वर्चस्व को हमेशा लाभ होता है। मीरा ने जो कुछ व्यक्तिगत था, वह सब सामाजिक कर दिया और राजमहल से समाज के बीच आकर पुरुष के वर्चस्व को चुनौती दे डाली। निजी को सामाजिक करने के पीछे आधुनिकता का नजरिया झलकता है। मीरा ने घूँघट का त्याग करके एक ही झटके में निजी एवं सार्वजनिक परिवेश के विभाजन को अस्वीकार कर दिया तथा साथ ही सामन्ती प्रतिष्ठा, स्त्री की प्रतिष्ठा का पर्याय मानने से इनकार किया। साधु संगति में शामिल होने का अर्थ है, घूँघट की लाज का जाना और सामन्ती पर्दा-प्रथा से मुक्ति। पारम्परिक परदा, जिसे वे लोक-लाज कहती थीं, को छोड़कर कुल की मर्यादा को ठुकराकर साधु-संगति करती थीं। मीरा का यह कृत्य समाज की सामन्ती व्यवस्था को तोड़ता है। यह स्वच्छन्दवादी विद्रोह का प्रतीक है और कला के माध्यम से परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास है। मीरा की विद्रोही चेतना का एक अन्य प्रतीक है, उसका सती होने से इनकार करना। राजवंश में पति के मरने पर स्त्री को सती होना पड़ता था। यह युग, वंश, समाज एवं जाति की माँग थी। मीरा को भी इसके लिए बाध्य किया गया। मीरा ने इसके खिलाफ कहा——

जग सुहाग मिथ्या रे सजणी होवां हो मिट जासी।
गिरधर गास्यां, सती न होस्यां मन मोह्यो घनमाणी।[43]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि मीरा के काव्य में पुरुष के सामाजिक वर्चस्व को ठोस चुनौती मिलती है।

तुलसीदास जी ने भी स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देने का चित्रण रामचरित मानस में किया है। प्रसंग यह है कि जब हनुमान सीता की खोज के लिए लंका में प्रवेश करते हैं तो लंकिनी नामक राक्षसी अकेले ही हनुमान को युद्ध की चुनौती दे डालती हे। यह प्रकरण भी एक स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व को चुनौती सिद्ध करता है, देखिए——

मसक समान रूप कपि धरी। लंकिहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।
× × ×
तात मोर अति पुन्य बहुता। देखेउँ नयन राम कर दूता।।[44]

इस प्रकरण से यह निश्चित होता है कि एक स्त्री की पुरुष से विद्रोह करने की प्रबल चेष्टा थी। यह बात अलग है कि पुरुष (हनुमान) ने अपने शारीरिक बल का प्रयोग करके नारी (लंकिनी) को हरा दिया। इसे नारी द्वारा प्रतिरोध का कदम तो माना ही जा सकता है।

रामचरित मानस में शूर्पणखा प्रकरण को नारी द्वारा पुरुष के प्रतिरोध का उदाहरण माना जा सकता है। चिन्तन यह है कि कोई स्त्री अपनी काम पीड़ा से ग्रसित होकर पुरुष से अपनी काम तृप्ति की अनुनय विनय करे तो क्या पुरुष द्वारा उसके नाक और कान काट लेना उचित है? आधुनिक चिन्तन यह है कि जब राम और लक्ष्मण किसी भी कीमत पर उसकी काम पूर्ति के लिए तैयार नहीं हुए तो शूर्पणखा को क्रोध आना स्वाभाविक एवं स्त्रियोचित ही था और क्रोध में आकर शूर्पणखा ने अपना विकराल रूप दिखा दिया और पुरुष सत्ता (लक्ष्मण) ने उसके अंग-भंग कर दिय। तुलसीदास इस प्रकरण से शायद यह सिद्ध करना चाह रहे थे कि नारी स्वातन्त्र्य और स्त्री की पुरुष के प्रति प्रतिरोधात्मकता कहीं ना कहीं दीपक की भाँति जल रही थी। प्रकरण देखिए—

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।
× × ×
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन चलाई।।
लछिमन अति लाघव सौ, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्ह।।[45]

इस प्रसंग से शूर्पनखा के रूप में नारी का प्रतिरोध तो सिद्ध होता ही है, साथ ही यह भी पता चलता है कि शूर्पनखा तो सिर्फ माध्यम थी, मूल रूप से राम को इस माध्यम से रावण को चुनौती देने थी। साथ ही राम ने लक्ष्मण को अविवाहित बना कर यह सिद्ध कर दिया कि राजनीति में सब कुछ जायज है जबकि लक्ष्मण का विवाह तो पूर्व में ही राम के साथ ही उर्मिला से हो गया था। एक स्त्री जो अपनी ही कामाग्नि में जल रही है अगर वह प्रणय याचना कर रही है तो साधारणतया समझाया जा सकता है। कभी राम लक्ष्मण के पास भेजते हैं, कभी लक्ष्मण राम के पास भेजते हैं तो एक स्त्री को क्या क्रोध नहीं आएगा? एक स्त्री का मजाक उड़ाना क्या उचित है? इस प्रकरण से यह पता चलता है कि

उस समय स्त्री प्रतिरोध करने की अवस्था में तो अवश्य थी पर पुरुष सत्ता के समक्ष उसकी कम ही चल पाती थी।

सूरदास जी अपने काव्य में गोपियों के माध्यम से पुरुष वर्चस्व को चुनौती देने में पीछे नहीं हैं। गोपियाँ कृष्ण को ही अपना मानने से इनकार कर देती हैं। देखिए—

ऊधो अब नहिं स्याम हमारे।
मधुवन बसत बदलि से गे वे, माधव मधुप तिहारे।।
× × ×
सूरदास तिन सौं कहा कहिए, जे तन हूँ मन हारे।।[46]

सामाजिक सक्रियता की आकांक्षी

मध्यकाल (भक्ति काल) में नारी सामाजिक सक्रियता की इच्छुक थी। वह मुक्त मन से घर के बाहर के कार्यों में हिस्सा लेना चाहती थी। मध्यकाल में पुरुष का पूर्ण प्रभाव था जिसमें नारी की सामाजिक सक्रिय होने की आकांक्षा दब कर रह जाती थी। स्त्री घर में चूल्हा चक्की करती और पुरुष सारे सामाजिक कार्यों को करता रहा।

नारी चिन्तन पर जब-जब बात चलेगी तब-तब धर्म पर ऊंगली उठेगी। सदियों से पुरुष प्रधान समाज में नियमों की व्याख्या पुरुषों के अनुकूल ही होती रही है। इन नियमों ने पुरुष प्रधान समाज को सुदृढ़ करने में अहम भूमिका निभाई है। भारतीय समाज के धार्मिक परम्परागत ढाँचे ने नर-नारी में स्वामी सेवक रूपी सम्बन्धों का ऐसा अमानवीय जाल बुना जिसने सदियों तक नारी को समाज से बहिष्कृत किया। मनसा-वाचा-कर्मणा की शुद्धता को न केवल उसकी मर्यादा और नैतिकता बताया बल्कि आचार संहिता भी घोषित कर दिया। इन सब कठिनाइयों के बावजूद नारी की सामाजिक रूप से सक्रिय रहने की इच्छा मरी नहीं वह भक्तिकाल में स्थान-स्थान पर व्यक्त हुई है।

सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी नारी की सामाजिक सक्रियता की इच्छा को पद्मावत में पद्मावती के माध्यम से चित्रित करते हैं।

प्रसंग यह है जब राजकुमारी पद्मावती अपनी सखी सहेलियों के साथ मानसरोवर पर स्नान करने जाती है और विभिन्न प्रकार से जल क्रीड़ा करती है, देखिए—

सरवर तीर पदुमिनी आई। खोपा छोरि केस मोरकाई।।

× × ×

लागी सब मिलि हरै बूड़ि बूड़ि एक साथ।

कोई उठि मोति लै काहू घोंघा हाथ।[47]

भाव यह है कि सामाजिक सक्रियता के बिना मनुष्य अधूरा ही है। वह अकेले जीवन यापन नहीं कर सकता है। अपनी जीवनचर्या चलाने हेतु उसे सामाजिक आवश्यकता पड़ती रहती है और नारी तो विशेष रूप से समाज से लगाव रखती है, भले ही वह अकेली हो पर अवसर आने पर समाज के रीति–नीति एवं नियमों के पालन के लिए कटिबद्ध रहती है। आतिथ्य सत्कार भी सामाजिक मूल्यों के अन्तर्गत आता है। नारी इसमें भी किसी प्रकार पीछे नहीं है।

प्रसंग यह है कि जब राम लक्ष्मण सीता की खोज में भटक रहे होते हैं तो जंगल में रहने वाली भीलनी शबरी यथा योग्य उनका आतिथ्य सत्कार करती हैं, देखिए—

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आश्रम पगु धारा।।

सबरी देखि राम गृहं आए। मुनि के बचन समुझि जियं भाये।।

× × ×

कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुं आनि।

प्रेम सहित प्रभु खाए बारम्बार बखानि।

पानि जोरि आगे भई ठाढी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी।।

केहि बिधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।[48]

उपुर्यक्त प्रकरण से यह भी पता चलता है कि भले ही शबरी नागरिक जीवन से दूर वन में रहती थी, पर फिर भी उसने राम और लक्ष्मण का आतिथ्य सत्कार करके अपनी सामाजिक सक्रियता की आकांक्षा को सिद्ध किया है।

एक और प्रसंग है जब श्रीराम का विवाह होता है। नगर की समस्त स्त्रियाँ हर्षित होकर विवाह देखने हेतु आती हैं, देखिए—

रानी सुनि उप रोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी।।

बिप्र बधू कुल बृद्ध बोलाई। करि कुल रीति सुमंगल गाई।।[49]

अर्थात् बुद्धिमती रानी पुरोहित की वाणी सुन कर सखियों समेत बड़ी प्रसन्न हुई। ब्राह्मणों की स्त्रियों और कुल की बूढ़ी स्त्रियों को बुलाकर उन्होंने कुल रीति करके सुन्दर मंगल गीत गाये।

और भी देखिए नारी की सामाजिक सक्रियता की आकांक्षा—

जहं तहं जूथ जूथ मिली भामिनी। सजि नव सप्त सकल दुतिदामिनी।

× × ×

गावहि सुंदरि मंगल गीता। लै लै नाम राम अरू सीता।।

बहुत उछाह भवनु अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा।।[50]

कवितावली में भी तुलसीदास जी ने नारी की सामाजिक सक्रियता का वर्णन किया। प्रसंग राम के विवाह का ही है, देखिए—

लोचनाभिराम घनस्याम राम रूप-सिसु,

सखि कह सखी सों तू प्रेम पथ पालि री।

× × ×

कौसिला की कोख पर तोखि तन वारिये री,

राम दशरथ की बलैया लीजे आलि री।।[51]

राम द्वारा धनुष तोड़ने पर जनकपुरी की महिलाएँ बहुत प्रसन्न हैं। एक सखी की प्रसन्नता को दूसरी सखी के सामने व्यक्त करवाते हुए तुलसीदास जी कह रहे हैं।

तुलसी ने नारी के आनन्द भाव का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है 'तन वारिए री' और 'बलैया लीजै' जैसे शब्दों से स्पष्ट रूप से स्त्री की सामाजिक सक्रियता का पता चलता है। और भी देखिए—

दूध दही रोचना, कनक थार भरि भरि,

आरती संवारि वर नारी चली गावती।

× × ×

चन्द की किरन पीवैं पलक न लावती।[52]

उपर्युक्त कविता में राम द्वारा शिव धनुष तोड़ने के बाद उन्हें जयमाला पहनाने को उत्सुक सीता और इस प्रकरण को देखने वाली नारियों की मन:स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही तुलसीदास जी ने नारी की सामाजिक सक्रियता की आकांक्षा को अभिव्यक्त किया है।

कृष्ण भक्त सूरदास ने भी अपनी गोपियों के माध्यम से नारी की सामाजिक सक्रियता की आकांक्षा का चित्रण किया है। प्रसंग यह है कि नन्द बाबा के यहाँ कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जा रहा है और समस्त गोपियाँ एवं ब्रज बालाएँ खुशी से झूम रही हैं, देखिए—

हौं सखि नई चाह इक पाई।
ऐसे दिननि नन्द कैं सुनियत उपज्यौ पूत कन्हाई।।
× × ×
सूरदास प्रभु भक्त हेत हित दुष्टनि के दुखदाई।।[53]

राजस्थान में गणगौर का त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। सोलह दिन तक सखी सहेलियाँ मिल–जुल कर गणगौर की पूजा करती हैं। भक्तिकाल में कवयित्री मीरा ने भी राजस्थान की सामाजिक परम्परा को स्वर दिया है, देखिए—

रे सांवलिया म्हारे आज रंगीली गणगौर छै जी।
× × ×
मीरां के प्रभु गिरधर नागर चरणा में म्हारो जो छै जी।[54]

मीरा अपनी सामाजिक आकांक्षा को व्यक्त करती हुई कहती है कि हे प्रिय कृष्ण आज हमारा गणगौर व्रत का उत्सव है। यह बड़ा ही खुशी का दिन है। उन्हीं पर मेरा अधिकार है। हे कृष्ण आपके आगमन की प्रतीक्षा में मैं मंगल गीत गाती हूँ।

होली का त्यौहार भी भारतीय समाज में धूमधाम से मनाया जाता है। ब्रज की लट्ठमार होली जग प्रसिद्ध है। इसमें विशेष रूप से स्त्रियाँ ज्यादा सक्रिय होती हैं। इस त्यौहार को भी मीरा ने चित्रित किया है, देखिए—

रंग भरी राग भरी, राग सूं भरी री।
× × ×

मीरां दासी गिरधर नागर चेरी चरण धणी री।[55]

प्रस्तुत पद में मीरा होली का वर्णन करते हुए कहती है कि हे सखी मैंने अपने प्रियतम के साथ प्रसन्नतापूर्वक प्रेम के रंगों से भरी होली खेली है।

प्रस्तुत पद से यह निश्चित होता है कि भक्त कवयित्री मीरा सामाजिक सक्रियता की आकांक्षी थीं। वह हृदय में तो गिरधर गोपाल को धारण करती हैं पर होली का त्यौहार भी उसके हृदय के तारों को झनझना देता है। वह होली खेलने की प्रबल इच्छा रखती है पर खेले किसके साथ, उसने तो अपना सब कुछ पूर्व में ही त्याग दिया था, लेकिन वह अपनी इच्छा को मनसा भक्ति के माध्यम से पूरी करती है और अपने प्रभु गिरधर गोपाल के साथ ही होली खेल लेती है पर सामाजिक सक्रियता की आग तो उसके दिल में जलती ही रहती है।

कबीरदास जी के काव्य में सामाजिक सक्रियता की आकांक्षा के दर्शन नहीं होते हैं उलटे वे तो संसार को अद्वैत वाद के समान ही 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के सिद्धान्त के आधार पर मान कर चलते हैं और संसार को झूठा बताते हैं। वे मानते हैं कि इस संसार का नाश सर्वथा निश्चित है। इसकी उत्पत्ति और प्रलय में कुछ समय नहीं लगता। अत: कबीर के काव्य में नारी की सामाजिक सक्रियता खोजना बालू में से तेल निकालने जैसा है।

नारी की सामाजिक सक्रियता की आकांक्षा के सन्दर्भ में उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नारी मन में समाज में अपना स्थान बनाने की भावना तो अवश्य थी लेकिन कालगत परिस्थितियों के आधार पर वह अपना परिपक्व रूप लेकर सामने नहीं आ पाई। अन्य कविगण तो नारी की सामाजिक सक्रियता को यथासम्भव व्यक्त करते रहे लेकिन मीरा के काव्य में नारी मुक्ति का स्वर स्पष्ट रूप से विद्यमान है। सूरदास, तुलसीदास एवं मलिक मुहम्मद जायसी ने यथासम्भव नारी भावों एवं उसकी सामाजिक सक्रियता को अपने काव्य में स्थान दिया है।

सन्दर्भ

1. सं. डॉ. राज नागपाल, डॉ. माया अग्रवाल — मीरा की पदावली, पृ. 35, पद 42
2. सं. डॉ. राज नागपाल, डॉ. माया अग्रवाल — मीरा की पदावली, पृ. 37, पद 45
3. वही, पृ. 48, पद 68
4. सं. डॉ. शम्भु सिंह मनोहर — मीरां पदावली, पृ. 106
5. डॉ. फिरोजा जाफर अली —स्त्री अस्मिता का संघर्ष : नए प्रश्न और नई चुनौतियाँ, शोध पत्रांश
6. समीक्षक डॉ. हरिचरण शर्मा — भ्रमर गीत सार (सूरदास), पृ. 208, पद 38
7. सम्पा. डॉ. किशोरीलाल गुप्त — सम्पूर्ण सूरसागर (लोक भारती टीका), पृ. 588, पद 1092
8. सम्पा. डॉ. राज नागपाल, डॉ. माया अग्रवाल — मीरांबाई की पदावली, पृ. 89, पद 140
9. वही, पृ. 94, पद 152
10. सीमोन द बोउवार — स्त्री उपेक्षिता, प्रस्तुति डॉ. प्रभा खेतान, पृ. 288
11. डॉ. राज नागपाल, डॉ. माया अग्रवाल — मीरांबाई की पदावली, पृ. 28, पद 33
12. सम्पा. डॉ. किशोरी लाल गुप्त — सम्पूर्ण सूरसागर, सूरदास, पृ. 32, पद 46
13. सम्पा. वाग्देव — रहीम दोहावली, अब्दुर्रहीम खानखाना , पृ. 150
14. समी. डॉ. हरिचरण शर्मा — भ्रमरगीत सार, सूरदास, पृ. 250, पद 160
15. वही, पृ. 313, पद 130
16. तुलसीदास — रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ. 54-55
17. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, पृ. 564-565
18. तुलसीदास, उत्तरकाण्ड, गीतावली, पृ. 369, पद 27
19. डॉ. श्रीनिवास शर्मा — जायसी ग्रन्थावली, जोगी खण्ड, पद्मावत, म.मु. जायसी, पृ. 175
20. ज्योति शर्मा — कृष्ण भक्त कवयित्री मीरा और उसका समाज (शोध पत्र)।
21. सम्पा. राज नागपाल, डॉ. माया अग्रवाल — मीरावाई की पदावली, पृ. 63, पद 92
22. वही, पृ. 96, पद 56
23. सम्पा. डॉ. हरिचरण शर्मा — भ्रमरगीत सार, सूरदास, पृ. 331, पद 144
24. वही, पृ. 457, पद 252
25. सम्पा. राघव रघु — तुलसी दोहावली, तुलसीदास, पृ. 51
26. तुलसीदास — रामचरितमानस, पृ. 192
27. वही, पृ. 197-198
28. वही, पृ. 230-231
29. सम्पा. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा — सूरसागर सार सटीक, पृ. 110, पद 79
30. वही, पृ. 111, पद 80

31. सम्पा. डॉ. हरिचरण शर्मा — भ्रमरगीत सार, सूरदास, पृ. 193, पद 24
32. सम्पा. डॉ. श्रीनिवास शर्मा — पद्मावती गोरा-बादल संवाद खण्ड, जायसी ग्रन्थावली, पृ. 565
33. आ. रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 145-146
34. सम्पा. वियोगी हरि — विनयपत्रिका, तुलसीदास (हरितोषिणी टीका), पृ. 239, पद 174
35. Only one man in Vrindavan Meera Bai — Amarujala
36. तुलसीदास — रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, पृ. 677-679
37. तुलसीदास — रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, पृ. 616-617
38. निक्की कुमारी — भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में मीरा की काव्य साधना, अक्षर पर्व, मासिक पत्रिका, 22.10.215
39. विश्वनाथ त्रिपाठी — मीरां का काव्य, पृ. 55
40. परशुराम चतुर्वेदी — मीरांबाई पदावली, पृ. 52
41. डॉ. कमल किशोर गोयनका — हिन्दुस्तानी जबान, आलेख, पृ. 6, अक्टूबर-दिसम्बर 2005
42. बलदेव बंशी — भारतीय सन्त परम्परा, पृ. 273
43. शहनाज बानो — भक्ति काव्य में पितृसत्ता और स्त्री विमर्श, पृ. 203
44. तुलसीदास — रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, पृ. 619-620
45. वही, अरण्य काण्ड, पृ. 550-552
46. समीक्षक डॉ. हरिचरण शर्मा — भ्रमरगीत सार, सम्पा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 433
47. समीक्षक डॉ. श्रीनिवास शर्मा — पद्मावत, म.मु. जायसी, मानसरोदक खण्ड, सम्पा. रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 116-119
48. तुलसीदास — रामचरति मानस, अरण्यकाण्ड, पृ. 572
49. वही, बालकाण्ड, पृ. 251
50. वही, बालकाण्ड, पृ. 232
51. सम्पा. प्रो. राजेश शर्मा — कवितावली, बालकाण्ड, तुलसीदास, पृ. 79, पद 12
52. वही, बालकाण्ड, पृ. 81, पद 13
53. सम्पा. डॉ. किशोरीलाल गुप्त — सम्पूर्ण सूरसागर, सूरदास (लोकभारती टीका), पृ. 166, पद 286
54. सम्पा. डॉ. राज नागपाल, डॉ. माया अग्रवाल — मीरांबाई की पदावली, मीराबाई, पृ. 91, पद 144
55. वही, पृ. 92, पद 147

❑

षष्ठ अध्याय

भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन की वर्तमान में उपयोगिता और महत्त्व

भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का नारी चिन्तन अपने युग से प्रेरित था। नारी निन्दा के पक्षधर समझे जाने वाले तुलसीदास ने जिस युग में जन्म लिया था, वह अभिशापों का युग था। उनके काव्य काल के लगभग छः सौ साल पहले भारत ने अपनी शक्ति, अपना साहस और अपना संगठन खो दिया तथा सत्ता मुस्लिमों के हाथ में आ चुकी थी। भारत की महान् सभ्यता और संस्कृति विदेशों से विजेताओं के रूप में आकर शासकों की सेनाओं द्वारा कुचल दी गई थी। वर्णाश्रम मिट गया था। उनके अध्यक्ष मूर्ख और आलसी हो गए थे और व्यभिचार में संलग्न थे। तत्कालीन राजपूत उनके अनुचर बन गये थे और अधम के मार्ग पर चल कर प्रजा को सताते थे। जब समाज का नेतृत्व ऐसे अयोग्य हाथों में हो तो उसमें शक्ति और स्वाभिमान के बदले वीभत्सता तो आ ही जायेगी। उस युग के वर्णाश्रम का चतुर्थ सदस्य शूद्र इसी वीभत्सता का प्रतीक था।

चारों ओर अव्यवस्था थी, अनाचार था और पराधीनता थी। अव्यवस्था और अनाचार के इस युग में गुलामी और पराधीनता की इस पतनावस्था में देश में क्षुद्रता का बोलबाल था। इस क्षुद्रता के कारण लोग अर्थोपासना में डूब रहे थे। ब्राह्मण विद्या के व्यापारी बन गये थे तथा धर्म का दोहन कर रहे थे। धन के लिए जब ब्राह्मण वेदों के व्यापारी और धर्म को दोहक बन गये तो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की कुगति का तो कहना ही क्या?

यह था भक्तिकाल के कवियों का युग जिसमें सम्राट् के मनोरंजन के लिए स्त्रियों का मीना बाजार लगता था। अंग्रेज इतिहासकारों ने इसे भारत का स्वर्ण युग कह डाला है।

इतिहास के विद्वानों को चाहिए कि वे इस कथित स्वर्ण युग को भक्तिकाल के प्रमुख कवियों की आँखों से देखें उनका काव्य हजारों ताम्रपत्रों और शिलालेखों की साक्षियों से अधिक खरा है। अर्थोपासना के इस युग में लोगों ने भोग-विलास का इतना घृणित जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया था, जिसकी कोई सीमा नहीं थी। भोग-विलास के कारण लोगों में स्त्रैण भावनाएँ उत्पन्न हो गई थीं। समाज के इस व्यभिचार से तुलसीदास की आत्मा रोती थी और इसी रुदन में, इसी चीत्कार में उन्होंने नारी की निन्दा की है। तुलसीदास को नारी जगत का विरोधी समझने के पहले हमें कालगत परिस्थितियों का हृदय से अवलोकन करना चाहिए। जिस समाज में भले लोग अपनी विवाहित सहधर्मिणी को निकाल कर, निकृष्ट कोटि की स्त्रियों को घर में बैठाकर भी बड़े बने रह सकते थे।

कबीर और तुलसीदास को नारी निन्दक बताने वालों को अत्यन्त सहानुभूति पूर्ण हृदय से उनकी आलोचना करनी चाहिए। बेटी, गृहिणी और माता की लोकमंगला निधियाँ सदा-सर्वदा संसार की कल्याण कामना में तत्पर रहती हैं। इन पंक्तियों का लेखक अपने विद्वान् पाठकों और पाठिकाओं से तुलसीदास की एक भी ऐसी पंक्ति बताने का आग्रह करता है जिसके द्वारा उन्होंने नारी की इन लोकमंगला निधियों को बुरी बताया हो। अपने सारे साहित्य में तुलसी ने नारी की इन श्रेष्ठतम सम्पत्तियों को प्रोत्साहित किया है। उन्हें आगे बढ़ाया है और उनका इतना उदात्त रूप देश के समक्ष उपस्थित किया है जिसकी अन्यत्र तो प्राप्ति दुर्लभ है। अपने ग्रन्थों में जहांभी उन्होंने नारी की निन्दा की है वहाँ नारी वह मशीन मात्र है पुरुषों की कामुक प्रवृत्तियों की परितुष्टि के लिए सज-संवार कर खड़ी कर दी जाती है। नारी की मौलिक सम्पत्ति का इस निन्दा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

भक्तिकालीन कवियों का नारी चिन्तन तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। इस नारी चिन्तन के कुछ स्थल ऐसे हैं जिनमें किसी स्त्री पात्र द्वारा ही नारी को निम्न बताया गया है जिनमें उन पुरुषों द्वारा नारी की निन्दा की गई है। जो ग्रन्थकार की दृष्टि से आदर्श चरित्र वाले नहीं थे। सबसे गम्भीर एवं विचारणीय स्थल वे हैं जिनमें आदर्श चरित्र वाले आप्त पुरुष अथवा राम नारी की निन्दा करते हैं।[1] स्त्रियों द्वारा स्त्रियों की जहाँ निन्दा है, उन स्थलों में राह देखना चाहिए कि यह निन्दा किस प्रसंग में की जा रही है। कैकेयी मंथरा से परिहासपूर्वक कहती है—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकानि।।[2]

आज के तार्किक सुधारक तुलसीदास के 'तिय बिसेषि' पर क्रोध प्रकट कर सकते हैं। समता का दावा करने वाली आज की विदुषी परास्नातका नारी यदि निन्दक तुलसीदास को पा ले तो वह उन्हें खूब खरी-खोटी सुना सकती है, पर अभद्रता और अविचार से संसार का काम सुधरने के बदले बिगड़ता ही है। मंथरा कुबड़ी थी ही। विकलांग मनुष्यों का समय-समय पर क्या आज भी मजाक नहीं उड़ाया जाता? मजाक उड़ाती हुई कैकेयी यही तो कहती है कि "विकलांग लोग यों ही कुरूप होते हैं तिस पर तू स्त्री है और फिर दासी है। यदि तेरे विचार भी कुरूप हों तो उसमें तेरा क्या दोष?" तुलसीदास हास-परिहास की धारणा का यथास्थल प्रयोग करके काव्य को सजीव बनाने तो उसमें कौन-सा अपराध है? परन्तु हास-परिहास में भी यदि अपने अधीन व्यक्ति को बुरा कहा जाएगा तो उसे हृदय को चोट लगेगी। यह तुलसीदास का भावुक हृदय अनुभव करता था। उनकी कैकेयी मंथरा को इतना कह तो देती है पर कहकर पछताती है। अपना पश्चात्ताप वह तुरन्त इन शब्दों में प्रकट करती है—

प्रिय बादिनी सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही।।
राम तिलक जौं सांचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली।।[3]

सम्पन्न लोग गरीबों का अपमान किया ही करते हैं, यही तुलसीदास दिखाते हैं पर तुलसीदास की दृष्टि में सम्पन्न लोगों का यह आचरण स्तुत्य नहीं है, इसलिए उनकी कैकेयी तुरन्त अपना रुख बदलकर कोमल ही नहीं हो जाती बल्कि अपने शब्दों को एक प्रकार से वापस ले लेती है।

भक्तिकाल के कवियों के नारी चिन्तन की प्रासंगिकता यह है कि जिस प्रकार राम ने शबरी के झूठे बेर खाकर उसे महत्त्व दिया उसी प्रकार के महत्त्व की आकांक्षा आज की स्त्री को पुरुष से है। किरात बाला शबरी राम को अपनी क्षुद्रता बताती हुई निवेदन करती है—

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह मंह मैं मतिमंद गंवारी।।[4]

नम्रता जताना सज्जनता का चिह्न है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि शबरी जिसके समक्ष नम्रता प्रकट कर रही है वह साधारण व्यक्ति नहीं है। वह संसार का पालक और रक्षक है। पर शबरी के इस आदर्श का अनुकरण करके सांसारिक लोग विनम्रता का दुरुपयोग न करने लग जाएँ, इसकी चिन्ता तुलसीदास को बहुत थी। तुलसीदास के राम शील और सौजन्य के सागर हैं। वे अपनी इस महान् भक्त बाला शबरी से कैसे कहें कि "मूर्ख चुप रह मेरे सामने नारी की इतनी निन्दा मर मत कर।" वे बड़ी भावपूर्ण भाषा में बड़ी शिष्टता के साथ शबरी से कहते हैं—"शुभे, जाति-पाँति, कुल और धर्म भेद की भावना से मैं किसी को अच्छा-बुरा नहीं समझता। स्त्री होने से कोई न नीचा होता है और पुरुष होने से कोई ऊँचा होता है। देवि! तुम्हें सम्पूर्ण भक्ति प्राप्त है। अतएव तुम्हारी समता ऋषि मुनि भी कठिनता से कर सकते हैं।" हम अगर रामचरित मानस में शबरी मिलन प्रसंग का अवलोकन करें तो हमें पता चलता है कि राम द्वारा शबरी के प्रति किया गया व्यवहार आज भी प्रासंगिक है और एक स्त्री द्वारा राम रूपी पुरुष के समक्ष विनयावनत होना भी वर्तमान में प्रासंगिक है।

एक ओर जहाँ रामचरित मानस में कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनुसूया, शबरी जैसी महान् स्त्रियों का चित्रण है वहीं दूसरी ओर मंथरा, शूर्पणखा, लंकिनी जैसी दुष्टा स्त्रियों का भी चित्रण है। जो व्यक्ति स्त्री समाज की केवल प्रशंसा करता है वह स्त्री समाज का कट्टर शत्रु है। उससे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक है। तुलसीदास द्वारा चित्रित शक्ति शील और सौन्दर्य के धनी श्रीराम जैसे पुरुष की वर्तमान में प्रासंगिकता है। सीता जैसी पतिपारायणा स्त्रियों की वर्तमान में प्रासंगिकता है अगर वर्तमान में स्त्री और पुरुष तुलसीदास जी के बताए हुए गुणों को धारण कर लें तो राम राज्य की वास्तविक शुरुआत हो सकती है। राम का रूप और स्वभाव तथा स्त्री के रूप में सीता का रूप और स्वभाव आज भी स्पष्ट रूप से प्रासंगिक है।

महात्मा कबीरदास द्वारा की गई नारी की आलोचना में कुछ दोहे इस प्रकार के भी मिलते हैं कि वे नारी को सही रास्ता भी दिखाते हैं। पूर्व में कहा जा चुका है कि तत्कालीन युग कामान्धता से पीड़ित था। ऐसा नहीं है कि कबीरदास ने सिर्फ नारी को चरित्र के सम्बन्ध में बुरा-भला कहा हो, अपितु उन्होंने तो दुष्चरित्र पुरुषों को भी सच्चरित्रता का

पाठ पढ़ाया है, लेकिन सहारा नारी का ही लिया है। देखिए पुरुष को सन्मार्ग दिखाने हेतु कबीर ने क्या कहा है——

पर नारी पर सुन्दरी बिरला बंचै कोई।
खातां मीठी खाण्ड सी अंति कालि विष होई।।[5]

इस दोहे के आलोक में यह चिन्तन स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में कोई भी प्रभावशाली पुरुष किसी भी गरीब की सुन्दर स्त्री पर डोरे डालने से नहीं चूकता था तथा येन–केन–प्रकारेण नारी को अपने कब्जे में लेने का प्रयास करता था। ऐसी स्थिति में कबीर का नारी चिन्तन उन काम–लोलुप पुरुषों के लिए एक उपदेश की भाँति है, जिसे ग्रहण करके वे अपने चरित्र को सुधार सकते हैं।

आज भी स्थिति कुछ ज्यादा अलग नहीं है, जहाँ भी सुन्दर नारी दिखी, पुरुष के मन में काम भावना उत्पन्न हो जाती है। वह नारी को काम स्वार्थपरता वश पटाने की कोशिश करता है। कार्यालयों एवं फैक्ट्रियों में नारी का यौन शोषण समाचार बन कर हमारे समक्ष आता है। इसलिए कबीरदास जी का नारी चिन्तन नारी सुरक्षा एवं पुरुष सच्चरित्रता के सन्दर्भ में आज भी प्रासंगिक है।

सूरदास के काव्य में प्रेम ही प्रेम है। सूरदास ने अपने काव्य में सामन्तवाद की घोर उपेक्षा की है। सूरदास की गोपियाँ कृष्ण को अपना सहायक अपना हितैषी और शुभ–चिन्तक तो मानती हैं लेकिन मथुरा के राजा के रूप में वे उसे कतई स्वीकार नहीं करती हैं। सूर के काव्य में प्रेम गूँज चारों ओर सुनाई पड़ती है। सूरदास की गोपियों का निष्काम प्रेम है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आधुनिक महिला भी यही चाहती है कि पुरुष बिना किसी अहंकार और लोभ लालच के उससे व्यवहार करे तो वह सर्वस्व समर्पित कर सकती है। पुरुष का घमण्ड स्त्री की क्रोधाग्नि को बढ़ाता है। घमण्ड पुरुष करता है और स्त्री भीतर ही भीतर कुढ़ती और जलती रहती है। स्त्री अंकार रहित प्रेम चाहती है लेकिन पुरुष अहंकार सहित छद्म प्रेम के द्वारा स्त्री पर अधिकार पाने की सोच रखता है तो सूरदास जैसे कवियों के अहंकार रहित स्त्री चिन्तन का पक्षधर होना होगा। इसलिए वर्तमान में भी सूरदास के चिन्तन की प्रासंगिकता है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मध्यकालीन समा में नारी के संत्रास को मलिक मुहम्मद जायसी ने जिस अनुभूति से उकेरा है वह आज भी संवेदित कर देने वाली है। नारी पीड़ा की अभिव्यक्ति ही जायसी का मुख्य प्रतिपाद्य नहीं, अपितु पुरुष तक इस पीड़ा की अनुभूति संवेदित हो तथा सामन्ती दुष्प्रवृत्तियों का अन्तर दिखाना उनका प्रतिपाद्य था। इसलिए परनारी (पद्मावती) के प्रेम में डूबे रतनसेन तक तोते हीरामन द्वारा सात समुद्र पार प्रेम की पीर का संदेश पहुँचाया जाता है जिसे सुनकर रतनसेन भी विरहाकुल हो उठता है। आठ वर्षों के उपरान्त वह अपनी ठुकराई हुई पत्नी के दुःख से व्यथित हो उठता है और पद्मावती को लेकर पुनः चित्तौड़गढ़ लौटता है। यह अनेक रानियाँ रखने वाला ऐतिहासिक भारतीय राजा नहीं पितु सहृदयी कवि का वांछित चरित्र है। चित्तौड़गढ़ में दोनों रानियों को अलग-अलग रखा जाता है। स्त्री के लिए सबसे बड़ा दुःख सौतियाडाह है। वर्तमान स्त्रियों का पति होने की लालसा के वशीभूत पुरुष द्वारा आधी आबादी के तन-मन पर असंख्य अत्याचार किए जाते रहे हैं और समाज आनन्दित होकर ऐसे पुरुषों की कीर्ति बखानता रहा है।

जायसी की कवि दृष्टि ने सम्भवतया वह स्पष्ट किया जो अन्य प्रेमाख्यानक दृष्टि नहीं कर सकी। अलाउद्दीन जैसे सामन्त के हरम (रनिवास) में असंख्य बेगम क्यूँ न हों, यदि पद्मावती चाहिए तो तलवार से नहीं अपितु हृदय से प्रेम भाव की सृष्टि करनी होगी। नारी मन को प्रेम से जीतना होगा। अलाउद्दीन बाहुबल से पद्मावती का मन तो क्या, उस शरीर भी स्पर्श नहीं कर सका था। काश! अलाउद्दीन को इस उक्ति का मर्म पता होता 'प्रेम को प्रेम सेजीता जा सकता है। घृणा या ताकत से नहीं।'

यह विचारधारा आज भी उसी रूप में साकार है। नारी मन शुद्ध प्रेम का इच्छुक है। जबरदस्ती या बलपूर्वक उपभोग को वह नहीं चाहती। नारी मन से प्रेम करती है और मन से ही प्रेम पाना चाहती है। इसलिए मलिक मुहम्मद जायसी के नारी चिन्तन की वर्तमान में भी प्रासंगिकता है।

उपदेश के द्वारा स्त्री शिक्षा

भक्तिकालीन कवियों ने अपने काव्यों में स्त्री को यथासम्भव शिक्षा प्रदान करने की कोशिश की है जो आज भी प्रासंगिक है। ज्यादातर शिक्षा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में है।

प्राय: सभी सन्त पारिवारिक जीवन व्यतीत करते थे। वे आत्मशुद्धि और व्यक्तिगत साधना पर बल देते थे तथा शुद्ध मानव धर्म के प्रतिपादक थे। इस प्रकार एक ओर सभी सन्त भक्ति आन्दोलन के उन्नायक थे, वहीं दूसरी ओर वे समाज सुधारक भी थे।

यद्यपि सभी सन्तों ने वैवाहिक जीवन जिया, लेकिन फिर भी इनके वचनों में नारी को माया का रूप माना है। कनक और कामिनी को वे बंधन स्वरूप मानते हैं।

कबीरदास जी साधारणतया नारी निन्दक के रूप में जाने जाते हैं, लेकिन कबीरदास जी की एक खासियत यह थी कि वे बिना डरे सच बोलते थे और सच हमेशा कड़वा होता है। मीठा बोलना तो शक्कर की तरह होता है, जो पेट में जाकर बीमारियों को पैदा करता है। यही विचार गोस्वामी तुलसीदास जी के भी हैं—

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म तन तीनित कर होइ बेगिहिं नास।।[6]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह उपदेश पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी लाभदायक है। आज कामी पुरुष मीठी-मीठी बातें कर नारियों को अपने जाल में फँसाते हैं और उनका दैहिक शोषण करने को आतुर रहते हैं। अत: नारी को मीठी-मीठी बात करने वालों से बचना चाहिए।

वर्तमान राजनीति के लिए भी यह दोहा बेहद शिक्षादायक है। कड़वा सच और कड़वी दवा दोनों ही अच्छी हैं। थोड़ी देर को खराब लगती हैं लेकिन परिणाम अच्छा देती हैं।

तुलसीदास अपने उपदेशों के द्वारा शिक्षा देते हुए कहते हैं कि प्रेम में प्रपंच बाधक है, देखिए—

प्रेम सरीर प्रपंच रुज उपजी अधिक उपाधि।
तुलसी भली सुबैदई बेगि बांधिऐ व्याधि।।[7]

आज समाज में कामुकता विकराल रूप से फैलती जा रही है। समझा जाता है कि कामुकता में पुरुष ही आगे होते हैं, लेकिन अब पश्चिम के अंधानुकरण से भारतीय स्त्रियों में भी विकृत काम-वासना अपने पैर पसारने लगी है। तुलसी का उपर्युक्त दोहा

विषयासक्ति (कामासक्ति) को रोकने के सन्दर्भ में है। इसे हृदयंगम करके नारी जाति अपना पथ आलोकित कर सकती है।

तुलसीदास जी ने ज्ञान प्राप्ति के लिए विषयासक्ति का नाश स्त्रियों के लिए जरूरी बताया है, देखिए—

परमारथि पहिचानि मति लसति विषयं लपटानि।
निकसि चिता तें अध जरित मानहुं सती परानि।।[8]

इस उपदेश से तुलसी यह कहना चाहते हैं। स्त्री को जबरदस्ती किसी कार्य के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार बिना इच्छा के किसी स्त्री को सती होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है और बाध्य भी करें तो वह जलती चिता से निकल कर अपने प्राण बचाने हेतु भाग सकती है। इसी दोहे में तुलसीदास स्त्रियों को विषयासक्ति से बचने की सलाह भी दी है जिसका हृदयंगम कर वर्तमान स्त्री अपने आपको श्रेष्ठ बना सकती है।

तुलसीदास जी का चिन्तन यह है कि यदि पुरुष श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त होने की कामना करे तो स्त्री को मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहिए। स्त्री को चाहिए कि पुरुष को सन्मार्ग पर चलने से रोके नहीं—

खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै बिमल बिबेक बिराग।।[9]

तुलसीदास विषय वासना को त्यागने के लिए उपदेश देते हैं। विषय वासना स्त्री को कुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है, अत: यह त्याज्य है। निम्न दोहा देखिए—

करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मति रंक।
पारद प्रकट प्रपंच मय सिद्धिउ नाउँ कलंक।।[10]

तुलसी ने नारी सशक्तिकरण को भी अपनी लेखनी में स्थान दिया है। तुलसी कहते हैं कि स्त्री को अगर सहारा मिल जाए तो वह क्या नहीं कर सकती? अर्थात् वह सब कुछ कर सकती है—

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।

का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ।।[11]

वस्तुतः आज की नारी को इसी प्रकार के सहारे की परम आवश्यकता है। सभी की उन्नति के लिए उसे सहारा प्रदान करना तुलसी का सुविचार है। सहारा पाकर स्त्री तन-मन-धन से शक्तिशाली बन सकती है।

तुलसीदास कामिनी स्त्रियों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि उन्हें अपना कामिनी स्वरूप त्यागना चाहिए अन्यथा वे समाज को पथ भ्रष्ट कर सकती हैं और पुरुषों को भी ऐसी कामिनी स्त्रियों से बचना चाहिए क्योंकि ये स्त्रियाँ अग्नि के समान चरित्र को जलाने वाली होती हैं।

दीपसिखा सम जुवति तन-मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग।।[12]

तुलसीदास कामिनी स्त्रियों को अपने उपदेशात्मक स्वर में कहते हैं कि हे कामिनी स्त्रियों तुम्हारा सुन्दर तन दीपक की जलती हुई लौ के समान है। हे स्त्रियों तुम अपने सुन्दर शरीर के आकर्षण से पुरुषों को तुम्हारी कामाग्नि की आग में जलने वाला पतंगा मत बनाओ अन्यथा वे व्यर्थ ही जल जाएंगे। हे मनुष्य! तू काम-क्रोध आदि विकारों का त्याग कर श्रीराम का भजन करते हुए निरन्तर सत्संग कर।

नारी की मर्यादा की रक्षा तुलसी साहित्य का सार तत्त्व है। राम भी स्त्री मर्यादा के बहुत बड़े रक्षक एवं योद्धा थे। तुलसीदास जी स्त्रियों के लिए इन्द्रिय निग्रह का उपदेश देते हुए दिखाई पड़ते हैं। वे कहते हैं कि पंचेन्द्रियों को मनमानी न करने देना ही संयम है। इसलिए सन्त पुरुष काम-क्रोधादि का त्याग करते हैं। देखिए—

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहि जे सन्त।।[13]

रामचरित मानस में तुलसी ने स्त्रीपरक उपदेश में कहा है पुरुष (पति) जब आपत्ति काल में हो तो स्त्री को उसे कदापि नहीं छोड़ना चाहिए, देखिए—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपदकाल परखिये चारी।[14]

तुलसीदास नारी जाति के प्रति काफी संवेदनशील रहे हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गोस्वामी तुलसीदास को गौतम बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोकनायक कहा था। लोकनायक वह होता है जो समन्वय कर सके।

आज चारों ओर नारी के यौन शोषण का हाहाकार मचा हुआ है। आज स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों में रिश्ते कलंकित हो रहे हैं। हमें समाचार माध्यमों से पता चलता है कि अमुक स्थान पर पिता ने बेटी को हवस का शिकार बनाया या बड़े भाई ने छोटे भाई की पत्नी का शोषण किया, अमुक स्थान पर ससुर ने अपनी बहू को लांछित किया। इस परिप्रेक्ष्य में तुलसीदास बड़ी स्पष्टता और निडरता के साथ राम के मुख से कहलवाते हैं कि ऐसे लोगों को मारने से पाप नहीं लगता है। देखिए बालि और राम के प्रसंग में बालि को बाण मारने पर, बालि राम से पूछता है कि मुझे आपने क्यों मारा? इस पर राम उत्तर देते हुए कहते हैं—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।
मूढ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।।[15]

तुलसीदास जी यहाँ यह भी स्पष्ट चित्रित करते हैं कि बालि ने अपनी पत्नी तारा का कहना नहीं माना और बलपूर्वक अपने छोटे भ्राता सुग्रीव की पत्नी को बलात् अपने पास रख लिया तथा सुग्रीव को भगा दिया। ऐसी स्थिति में राम द्वारा बालि का वध उचित ही है।

तुलसीदास जी ने बालि की पत्नी तारा को भी राम के द्वारा उपदेश दिलवाया है, देखिए—

प्रकट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बरभागी।[16]

रामचरित मानस में ऐसे कई स्थल आये हैं जहाँ तुलसीदास जी ने प्रत्यक्ष रूप से या अपने पात्रों द्वारा स्त्रियों को सन्मार्ग का उपदेश दिया है। तुलसीदास का मन्तव्य यही था

कि उनके उपदेशों से स्त्री जागृति हो तथा वह शिक्षित बने। निश्चित रूप से तुलसीदास जी ने अपने उपदेशों से स्त्री सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है।

भक्तिकाल के सन्त धारा के प्रतिनिधि कवि एवं समाज सुधारक कबीरदास जी ने भी अपने उपदेशों के माध्यम से स्त्री शिक्षा का पथ प्रशस्त किया है। कबीरदास स्वयं निरक्षर थे। उन्होंने अपने निरक्षर होने के सम्बन्ध में स्वयं 'कबीर बीजक' की एक साखी में बताया है जिसमें कहा गया है कि न तो मैंने लेखनी हाथ में लिया, न कभी कागज और स्याही का ही स्पर्श किया। चारों युग की बातें उन्होंने केवल मुख से ही जता दीं, देखिए—

मसि कागद छुयो नहीं कलम गही नहीं हाथ।
चारिक जुग को महातम मुखहि जनाई बात।।

सन्त मत के समस्त कवियों में कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक माने जाते हैं। उन्होंने कविताएँ प्रतिज्ञा करके नहीं लिखीं और न ही उन्हें पिंगल (छन्द) और अलंकारों का ज्ञान था। लेकिन उन्होंने कविताएँ इतनी प्रबलता और उत्कृष्टता से कही हैं कि वे सरलता से महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं।

कबीरदास जी स्वयं भी विवाहित थे। वे जानते थे कि पति और पत्नी के बीच प्रेम का जो आधार है वह वफादारी है। पति को पत्नी के लिए और पत्नी को पति के लिए एक-दूसरे के प्रति वफादारी की सीख दी है। पहले पुरुष कमाने के लिए दूर-दूर जाया करते थे तथा लम्बे समय तक पति और पत्नी को दूर रहना पड़ता था। उस समय धनाढ्य पुरुष ऐसी ही प्रोषित पतिका स्त्रियों पर दृष्टि रखते थे और उन्हें फँसाने की चेष्टा किया करते थे। अत: कबीरदास जी ने ऐसी स्त्रियों को सिर्फ अपने पति का ही स्वरूप ध्यान में रख कर पति में ही अनुराग करने की शिक्षा इस दोहे के माध्यम से दी है—

इस तन का दीवा करौं बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव।।[17]

अर्थात् मैं अपने शरीर रूपी दीपक में प्राणों की वर्तिका (बत्ती) डालकर और उसको लहू रूपी तेल से अभिसिंचित करके न जाने कब से प्रिय का आगमन मार्ग देख रही हूँ और न जाने कब मैं उनका मुख निहार सकूँगी?

इन दोहों की व्याख्या अलौकिक सन्दर्भ में भी की जा सकती है, लेकिन इनका स्पष्ट अर्थ लौकिक रूप में अधिक ग्राह्य है। अलौकिक अर्थ निकालना दूर की कौड़ी लाने जैसा ही है, अत: हमें लौकिक अर्थ पर अधिक ध्यान देना चाहिए तभी हमारा मन्तव्य सिद्ध होगा। कबीरदास जी ने उपदेश के द्वारा स्त्री शिक्षा को भी महत्त्व दिया है। स्त्री की अपने पति के प्रति वफादारी के सन्दर्भ में यह दोहा देखें—

नैना नीझर लाइयां, रहट बहैं निज जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं कबहुं मिल हुगे राम।।[18]

कबीरदास जी के उपदेश लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के अर्थ देते हैं। यह तो ग्रहणकर्त्ता के ऊपर निर्भर है कि वह कौन-सा अर्थ लेता है—

जा की रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

काव्य भी भावना के अनुरूप ग्रहण किया जाता है। तुलसीदास जी ने भी भावना पर ही जोर दिया है, अत: कबीर जी की शिक्षा लौकिक और पारलौकिक दोनों ही रूपों में ग्राह्य है।

कबीरदास जी ने अपने उपदेश में कहा है कि स्त्री को अपने पुत्र को सुन्दर शिक्षा देनी चाहिए तथा उसे जन्म से ही संस्कारित करना चाहिए—

कबीर धनि ते सुन्दरी जिनि जाया बैसनौ पूत।
राम सुमरि निरभै हुवा सब जग गया अऊत।।

उपर्युक्त दोहे में कबीरदास जी का मानना है कि वैष्णव पुत्र (संस्कारित पुत्र) ही जग में नाम रोशन करता है। बिना संस्कारी पुत्र के तो संसार निपूता ही अच्छा।

कबीरदास चरित्रहीन नारियों को शिक्षा देते हुए कहते हैं—

कबीर जे कौ सुन्दरी जांणि करै विभचार।
ताहि न कबहुं आदरैं, प्रेम पुरिष भरतार।।[19]

वर्तमान में बहुत-सी स्त्रियाँ व्यभिचार में लिप्त हैं। उनके मुँह पर कबीरदास का यह करारा तमाचा है।

मनुष्य अपने सुख के पल तो एकदम सहजता से गुजार लेता है पर जब दुःख आता है तो भगवान् को याद करता है। सच बात तो यह है कि मनुष्य अपने संकटों को स्वयं ही आमन्त्रित करता है।

मनुष्य अपने सुख के पल तो एकदम सहजता से गुजार लेता है पर जब दुःख आता है तो भगवान् को याद करता है। सच बात तो यह है कि कई अवसरों पर स्त्री अपने संकटों को स्वयं ही आमन्त्रित करती है। कई बार तो ऐसे वाद–विवादों का जन्म होता है जिसके मूल में स्त्री स्वभावगत अहंकार होता है। हँसी–मजाक में झगड़े होते हैं। कुछ पुरुषों की आदत होती है वह अपने साथ वार्तालाप करने वाली स्त्रियों के साथ हँसी–मजाक करके अपना दिल बहलाने की कोशिश करते हैं। वे समझते हैं कि अपने आपको बुद्धिमान् साबित कर अपने लिए प्रतिष्ठा अर्जित कर रहे हैं, पर होता उसका उल्टा है। उनको लोग हल्का या अगम्भीर मानते हैं। कभी–कभी इस बात पर झगड़े भी हो जाते हैं। इस विषय पर सन्त कबीर कहते हैं कि—

दीपक झोला पवन का, नर का झोला नारि।
साधु झोला शब्द का, बोले नांहि बिचारि।।[20]

आज जो छेड़छाड़ की घटनाएँ स्त्री जाति से हो रही हैं। इस सन्दर्भ में शिक्षा कबीरदास जी ने स्पष्ट रूप से दी है—

परनारी पैनी छुरी, विरला बांचै कोय।
कबहुं छेडि न देखिए, हँस हँस खावे रोय।[21]

अनेक पुरुष दूसरों की स्त्रियों से वार्तालाप कर अपने मनोरंजन की प्राप्ति करते हैं। यह मनोरंजन अन्ततः स्त्री और पुरुष दोनों को ही महँगा पड़ता है। दोनों को ही सामाजिक स्तर पर हेय दृष्टि से देखा जाता है। देखा तो यह जा रहा है कि आधुनिक समाज में केवल इसी बात पर अनेक झगड़े हो जाते हैं कि किसी ने परस्त्री के साथ मजाक किया। अनेक लोग इस चक्कर में बदनाम हो जाते हैं कि वह पर–स्त्रियों से अपने सम्बन्ध बनाते हैं। ऐसा नहीं है कि समाज में पहले ऐसा नहीं होता था। अगर यह बात होती तो हमारे सन्त महापुरुष इस बुराई की तरफ प्राचीनकाल से सचेत नहीं करते पर वर्तमान आधुनिक समय में पर–स्त्रियों से अश्लील अथवा द्विअर्थी संवाद के साथ वार्तालाप करना एक फैशन सा

हो गया है। आधुनिक स्त्रियाँ भी महानगरों में पर–पुरुष के साथ सम्बन्ध बनाने से कतराती नहीं हैं तथा पर–पुरुष हँसी–मजाक करना तो आम बात है। यह हमारे देश की सांस्कृतिक परम्पराओं के भी विरुद्ध है। और भी देखिए––

परनारी के राचणै, औगुण है गुण नाहि।
षार समंद में मछला, केता बहि बहि जांहि।।[22]

अर्थात् दूसरे की स्त्री के प्रेम में दोष ही दोष है तथा स्त्री द्वारा पर–पुरुष के प्रेम में भी दोष है। इसमें गुण या लाभ बिल्कुल भी नहीं, वासना के इस आकर्षण रूपी समुद्र में न जाने कितनी जीव रूपी मछलियाँ बह जाती हैं––

एक कनक अरु कामिनी विष कल कीएउ पाइ।
देखे ही थै विष चढ़ै खायै सूं मर जाइ।।[23]

× × ×

एक कनक अरु कामिनी दोऊ अगिन की झाल।
देखे ही तन प्रजलै, परस्यां ह्वै पैमाल।।[24]

और भी देखिए कबीरदास की नारी को शिक्षा––

नर नारी सब नरक हैं, जब लग देह सकाम।
कहै कबीर ते राम के जे सुमरे निहकाम।।[25]

× × ×

अंधी नार चेतै नहीं, कटै न संसय सूल।
और गुनह हरि बकससी कामी डार न मूल।।[26]

अर्थात् अज्ञानान्ध स्त्री संसार का नाश होता देख कर भी वह सावधान नहीं होती। वह विषय वासना में ही फँसी रहती है इसलिए उसका क्लेश एवं दुःख विनष्ट नहीं होता, संसार कहता है कि प्रभु नाम स्मरण से सब कुछ क्षमा कर देता है किन्तु प्रभु सब दोष एवं पाप अवश्य नष्ट कर देते हैं। केवल कामी स्त्री को वे दण्ड देते हैं और उसका सर्वस्व नष्ट कर देते हैं। कबीरदास ने स्त्रियों की इन्द्रिय सुख (भौतिकवाद) से भी बचने की शिक्षा दी है––

भगति बिगाड़ी कामियां, इन्द्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गंवाया बादि।।[27]

कबीरदास जी का आशय हमें यह लेना चाहिए कि आधुनिकता और भौतिकवाद की चकाचौंध में स्त्री को नहीं पड़कर ज्ञान और शिक्षा से नाता जोड़ना होगा। कबीर ज्ञान मार्गी थे और वे ज्ञान मार्ग को अनमोल हीरा मानते हैं। आधुनिक युवतियों को यह ज्ञानमार्गी हीरा अपने हाथ से छूटने नहीं देना चाहिए। इस तरह वे स्त्री शिक्षा के समर्थक माने जा सकते हैं।

स्त्री को अपने पति से एकनिष्ठ होकर प्रेम करना चाहिए। कबीर स्वयं स्त्री भाषा में स्त्री को शिक्षा देते हैं कि मैं सिर्फ अपने प्रियतम की हूँ और प्रियतम सिर्फ मेरे हैं, देखिए—

नैना अंतरि आव तू ज्यूँ हौं नैन झंपेउँ।
ना हौं देखौं और को, ना तुझ देखन देऊं।।[28]

अर्थात् कबीरदास जी कहते हैं कि एक स्त्री की मनोदशा अपने पति के लिए यह होनी चाहिए कि हे प्रियतम तुम मेरे नेत्रों में आकर बस जाओ, जैसे ही आप आओगे मैं एकदम नेत्र बन्द कर लूँगी। तब मैं तेरे अतिरिक्त अन्य किसी को न देखूँगी और न अन्य की दृष्टि तुझ पर पड़ने दूँगी।

वर्तमान में भी महिला यही चाहती है कि उसका पति सिर्फ उसका ही रहे लेकिन कबीरदास जी का यह आशय भी है कि बराबर की वफादारी स्त्री भी पुरुष के प्रति निभाये तब जाकर गृहस्थ जीवन श्रेष्ठ बनेगा।

पुरुष स्त्री के दाम्पत्य जीवन में मधुरता लाने के लिए वफादारी और एकनिष्ठता की आवश्यकता है। ये भाव भी कबीरदास जी ने व्यक्त किए हैं। देखिए—

कबीर रेख स्यंदूर की काजल दिया न जाइ।
नैनू रमाइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।।[29]

× × ×

कबीर सीप समंद की रटै पियास पियास।

समदहिं तिणका वरि गिणैं स्वाति बूँद की आस।।

कबीरदास जी स्त्री को भी यही भावनात्मक शिक्षा देते हैं कि वह अपने पति को समझाये कि अगर वह वस्त्रविहीन रहेगी, अर्थात् अभावग्रस्त रहेगी तो उसी पुरुष की सामाजिक निन्दा होगी जिसकी वह पत्नी है, देखिए—

उस सम्रथ का दास हौं कदै न होइ अकाज।
पतिव्रता नांगी रहै तो उस ही पुरिस कौ लाज।।[30]

भारत में 'अतिथि देवो भव' वाक्य का भी बड़ा महत्त्व है। अतिथियों को देव तुल्य माना जाता है। इस सम्बन्ध में भी कबीरदास जी ने कहा है कि घर आये अतिथियों की परमेश्वर मानकर सेवा करनी चाहिए, देखिए—

घरि परमेसुर पांहुणा, सुणौं सनेही दास।
षट रस भोजन भगति करि, ज्यूँ कदै न छांड़ै आस।।[31]

हमारी संस्कृति में रसोई एवं मेहमाननवाजी की जिम्मेदारी स्त्रियों के हिस्सें में ज्यादा है। अत: कबीर का यह दोहा स्त्रियों के लिए उपदेशपरक समझा जा सकता है।

प्रसंग है, नागमती सुआ खण्ड का इसमें हीरामन तोता नागमती को अपने सौन्दर्य पर अहंकार नहीं करने की शिक्षा देता है। नागमती तोते से पूछती है कि बता इस संसार में मेरे समान रूपवती कोई और भी है ?या नहीं? तब तोता नागमती को कहता है कि सुन्दर स्त्री वही है जिसके गुणों के आधार पर उसका पति बहुत प्रेम करता हो। देखिए—

संवरि रूप पदुमावति केरा। हँसा सुआ रानी मुख हेरा।
× × ×
पुहुप सुगन्ध सो तिन्ह कै काया। जहाँ माथ का बरनौ पाया।।[32]

सुन्दर स्त्री वही समझी जा सकती है, जिसका पति जिसको गुणों के कारण बहुत प्रेम करता हो। सिंहल द्वीप की नारियों का वर्णन मैं किस प्रकार करूँ? उनकी समता तो दिन से की जाती है, तुम जैसी अभिमानी स्त्रियाँ तो रात्रि के समान हैं। सिंहल द्वीप की स्त्रियों के शरीर से पुष्प की सुगन्ध आती है इसलिए मैं मस्तक के सामने पैरों का वर्णन नहीं कर सकता, सिंहल की स्त्रियाँ तो सुगन्धित स्वर्ण से निर्मित हैं। उनमें सौन्दर्य और सौभाग्य कूट-कूट के भरा है।

यहाँ कवि की दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम यह कि स्त्री की पूजा सौन्दर्य पर आधारित नहीं बल्कि गुणों द्वारा होती है। दूसरी यह कि सौन्दर्य निर्माण तो ईश्वर करता है तो इसमें अहंकार नहीं करना चाहिए। जायसी की यह शिक्षा वर्तमान में भी प्रासंगिक है। जायसी ने यहाँ नागमती और तोते के वार्तालाप के द्वारा मनोवैज्ञानिक सत्यता पर प्रकाश डाला है कि स्त्री अपने आपको सुन्दर समझा करती है और यही उसके अहंकार का कारण बन जाता है और अहंकार हमेशा त्याज्य है।

जायसी ने स्त्री को शिक्षा दी है कि किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसके परिणामों पर गौर कर लेना चाहिए। प्रसंग वही है, नागमती ने अपनी निन्दा और पद्मावती की सौन्दर्य गाथा को सुनकर हीरामन तोते को अपनी दासी को मारने के लिए सौंप दिया लेकिन दासी ने उसे मारा नहीं बल्कि अपने पास ही छिपा कर रख लिया क्योंकि वह राजा रतनसेन को अत्यन्त प्रिय था, देखिए—

धाई सुआ लै मारै गई। समुझि गियान हियं मति भई।

× × ×

मकु एहि खोज होई निसि आई। तुरै रोग हरि माथें जाई।

दुई सो छपाए ना छपैं एक हत्या औ पाप।

अंतहु करि विनास ये सै सखी दै आपु।।[33]

जायसी ने यह भी शिक्षा स्त्री वर्ग को देने का प्रयास किया है कि पति की आज्ञा पालन में ही पत्नी का सुख है—

जधि जाधहु कैं औगुन मन्दिर होइ सुख साज।

आएस मेटि कंत कर काकर भा न अकाज।।[34]

तुमने हीरामन तोते को खोकर अच्छा नहीं किया। तुम ऐसा बुरा कार्य करके राजमहल में रहने की अधिकारिणी नहीं बन सकतीं, पति का आज्ञा का पालन जो स्त्री नहीं करती उसे सदैव ही हानि होती है।

जायसी ने बहुत सुन्दर स्त्री वर्ग के लिए शिक्षा दी है, देखिए—

उतर धाई तब दीन्ह रिसाई। रिसि आपुहि बुधि औरहि खाई।

कंत सोहाग की पाइअ सांधा। पावै सोइ जो ओहि चित बांधा।।

रहै जो पिय के आयसु सो बरतै होई खीन।
सोई चाँद अस निरमरि जरम न होई मलीन।।[35]

मलिक मुहम्मद जायसी कन्या जन्म पर खुशी मनाने के भी पक्षधर हैं। वे कन्या जन्म को ईश्वर का ही अवतार मानते हैं। देखिए पद्मावत के जन्म पर उत्सव मनाने का संदेश। चाहे तो इसे उपदेश मानें या कि शिक्षा भी मान सकते हैं—

भा बिहान पण्डित सब आए। काढ़ि पुरान जनम अरथाए।
सिंघल दीप भएउ अवतारू। जम्बू द्वीप जाइ जम बारू।
रामा आइ अयोध्या, अपने लखन बतीसौं संग।
रावन राइ रूप सब भूलै दीपक जैसे पतंग।।[36]

जायसी पद्मावती का उदाहरण सीता से देकर कहते हैं कि जिस प्रकार सीता अयोध्या में आई क्योंकि वह बत्तीस लक्षणों से युक्त थी। पद्मावती भी ऐसे ही शुभ लक्षणों से युक्त है और श्रेष्ठ वर के पास जायेगी। राजा (रत्नसेन) भी इसके रूप पर मुग्ध होकर सब कुछ भूल कर यहाँ आएगा।

जब राजकुमारी पद्मावती बारह वर्ष की हुई तो उसे पिता के द्वारा एक तोता दिया गया। वह तोता पण्डितों के समान बुद्धि युक्त था। उसका नाम हीरामन था। वह तोता सोने के रंग का-सा था और अत्यन्त सुन्दर था। इस तरह पाण्डित्य और रूप का साथ मानो सोने में सुहागे का अपूर्व मिश्रण हो गया हो, देखिए—

रहसि एक संग दोऊ पढ़हि सास्तर वेद।
बरहमा सीस डोलावहि सुनत लाग तस भेद।।[37]

उपर्युक्त दोहे से यह सिद्ध होता है कि मलिक मुहम्मद जायसी स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे तथा यह मानते थे कि स्त्री को वेदशास्त्रों की उच्च्च शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

जायसी ने स्त्री वर्ग को अपने उपदेशों के माध्यम से यह भी शिक्षा दी है कि हमेशा सम्बन्धों में वैरी और मित्र का अन्तर समझ कर व्यवहार करना चाहिए। पद्मावती को हीरामन तोते के द्वारा जायसी ने यही कहलवाया है, देखिए—

मारै सोइ निसोगा डरै न अपने दोस।

केला केलि करै का जौं भा बैरि परोस।।[38]

और भी देखिए—

सुआ रहै न खुरूक जिअ अवहि काल सो आउ।
सतरू अहै जो करिया, कबहुं सो बौरै नाउ।।[39]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचना पद्मावत में स्थान-स्थान पर स्त्री के लिए उपदेशों एवं शिक्षा की व्यवस्था की है। कोई स्त्री पद्मावत पढ़ ले तो वह अपने जीवन को उच्च बना सकती है। महाकवि सूरदास जी ने भी नारी जाति को अपनी लेखनी के माध्यम से शिक्षा और उपदेश देने का प्रयास किया है। सूरदास की शिक्षा को हम दो प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं—प्रथम, उद्धव द्वारा गोपियों को उपदेश और शिक्षा, द्वितीय, सूरदास द्वारा गोपियों के माध्यम से उद्धव के बहाने से स्त्री वर्ग को शिक्षा। स्त्री जाति को यह शिक्षा सगुण और निर्गुण ब्रह्म के निरूपण के अन्तर्गत आसानी से मिल सकती है। सम्पूर्ण भ्रमरगीत सार में स्त्री वर्ग अपने लिए शिक्षा और उपदेशों के पुष्प खोज सकता है। सूरसागर में भी नारी को सामाजिक स्तर पर शिक्षित करने का पूर्ण प्रयास है।

सूरदास ने सांसारिक बुराइयों से भी दूर रहने की शिक्षा दी है, देखिए—

किते दिन हरि सुमिरन बिनु खोए।
परनिन्दा, रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए।
× × ×
मूढ़ अधम की कहौ कौन गति उदर भरें, परि सोए।[40]

और भी देखिए—

इत उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कै कारण दुहुं दृग अंध भयौ।
× × ×
सूरदास कहै, सब जग बूड्यौ, जुग जुग भक्त तरयौ।[41]

आज स्त्रियाँ भौतिकवादी चकाचौंध में सजने-सँवरने में ज्यादा वक्त लगाने लगी हैं जबकि उन्हें सोचना चाहिए कि यह देह तो नश्वर है और आज जो युवावस्था है वह

वृद्धावस्था में परिणत होगी। इसमें सादा जीवन उच्च विचार की भावना निहित है, देखिए—

अब मैं जानी, देह बुढ़ानी।
सीस, पाऊं कर कह्यौ न मानत, तन की दशा सिरानी।
× × ×
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारंग पानी।[42]

शरीर की स्वाभाविक स्वस्थ दशा बीत गई है। कहते कुछ और हैं मुख से शब्द कुछ और ही निकलता है। आँख और नाक से अनावश्यक पानी निकलता ही रहता है। विभिन्न अंगों की चमक और आभा समाप्त हो गई है। स्मरण शक्ति तथा नेत्र शक्ति खो गई है। शरीर तथा मन का कुछ भी ध्यान नहीं रहा, सभी बातें बदल गईं। सूरदास कहते हैं कि अब दुर्दशा होने लगी है। इसलिए ऐसी दशा में जब सांसारिक जीवन में रस नहीं रहा तो भगवान् सारंगपाणि का ही भजन करना चाहिए।

सूरदास का निम्न पद भी सांसारिक बुराइयों से बचने के सन्दर्भ में है—

तजौ मन हरि विमुखन कौ संग।
जिनकै संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग।
× × ×
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ अंग।[43]

इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल के प्रमुख कवियों जैसे मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, तुलसीदास और कबीरदास ने अपने काव्यों में स्त्री वर्ग के लिए उपयोगी शिक्षा अपने उपदेशों के माध्यम से दी है। कबीरदास जी ने तो सीधे-सीधे ही अपनी शिक्षा को व्यक्त किया है जबकि मलिक मुहम्मद जायसी, तुलसीदास और सूरदास ने अपने पात्रों के माध्यम से नारी शिक्षा को अपने काव्यों में कहलवाया है। नारी के प्रति ये शिक्षा रत्न आज भी प्रासंगिक हैं।

शिक्षा से स्त्री की स्थिति का परिवर्तन

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा बहुआयामी है। यह कोई पुरुष निरपेक्ष नहीं बल्कि सापेक्ष विमर्श है और इसके लिए भक्तिकाल में पुरुष कवियों ने अपने उपदेशों और

शिक्षा से स्त्री की स्थिति के परितर्वन का प्रयास किया है। महिलाओं के सशक्तिकरण में शिक्षा की अहम भूमिका है। यह महिलाओं के सर्वांगीण विकास के लिए प्रथम एवं मूलभूत साधन है। क्योंकि यह महिला के शिक्षित होने पर जागरूकता, चेतना आयेगी, अधिकारों की सजगता होगी, रूढ़ियाँ–कुरीतियाँ, कुप्रथाओं का अँधेरा छंटेगा और वैचारिक क्रान्ति से प्रकाश पुँज फूट निकलेगा। महिलाओं की स्थिति में सुधार के समय–समय पर अनेक प्रयास किसी–न–किसी रूप में होते रहे हैं। भक्तिकाल में नारियों को पुरुषों के समान भक्ति के योग्य माना; जिसके फलस्वरूप अनेक महिला सन्तों ने विशेष स्थान बनाया जिनमें प्रमुख है मीराबाई, मुक्ताबाई, केसमाबाई, गंगूबाई व जानी।[44] अकबर ने बाल–विवाह, बेमेल विवाह, सती–प्रथा को रोकने की दिशा में कार्य किया। राजा जयमल की विधवा को अकबर ने सती होने से रोका था तथा पुर्तगाली गवर्नर अल्बु कर्क ने अपनी 'आलमदारी' में इस प्रथा के विरुद्ध आदेश प्रसारित करवाये।

जहाँ तक सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी की बात है, वह तो पद्मावती के रूप में एक विशेष चरित्र को गढ़ते हैं जिसके माध्यम से समस्त स्त्री जाति को नैतिक चारित्रिक शिक्षा देकर नारी सशक्तिकरण की बात करते हैं। वे पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की गुलामी के खिलाफ लड़की के जन्म के लिए अवतार शब्द का प्रयोग करते हैं—

भऐ दस मास पूरि कै भरी। पदुमावति कन्या औतारी।
जानहु सुरूज किरिन हुति काढ़ी। सूरज करा घाटि वह बाड़ी।[45]

आज हम खुद को आधुनिक कहते हैं परन्तु स्त्रियों की स्थिति में सुधार का दीपक तो भक्तिकाल के कवियों ने ही जलाया था। आज से पाँच सौ साल पहले पद्मावती के पैदा होने पर माता–पिता और प्रजा में असीम उल्लास का भाव जायसी ने दिखाया। नारी शिक्षा के पक्षधर होने का प्रमाण निम्न पंक्तियों में मिलता है—

पाँच बरसि मंह भई सो बारी। दीन्ह पुराण पढ़ै बैसारी।
मैं पदुमावति पंडित गुनी। चहुं खण्ड के राजन सुनी।
सिंघल दीप राज घर बारी। महा सुरूप देयं औतारी।
एक पदुमिनी औ पण्डित पढ़ी। दहुं केहि जोग देयं असि गढ़ी।[46]

इस प्रकार जायसी स्त्री शिक्षा पर बल देते हैं और उनका यह प्रयास ही परवर्ती नारी शिक्षा के लिए बलकारक सिद्ध हुआ।

मध्यकाल में जहाँ चारों ओर बाल-विवाह का ताण्डव हो रहा था, कन्याएँ छोटी उम्र ही पराई कर दी जाती थीं। ऐसी कुरीति को भी जायसी ने लात मारी और पद्मावती को बाल्यावस्था, किशोरावस्था से पार कर यौवनावस्था तक पहुँचाया, देखिए।

पद्मावती की किशोरावस्था

बारह बरसि माह भई रानी। राजै सुना संजोग सयानी।
सात खण्ड धौराहर तासू। पदुमिनी कहै सो दीन्ह नेवासु।।[47]

अर्थात् जब रानी पद्मावती बारह वर्ष की हुई तो (पिता) राजा ने सुना कि वह विवाह संयोग करने योग्य सयानी होती जा रही है। उनका जो सात खण्ड का धवल गृह था उसको पद्मावती को रहने के लिए दिया।

पद्मावती की युवावस्था

भई ओनंत पदुमावति बारी। धज धोरै सब करी संवारी।।
जग वेधा तेई अंग सुवासा। भँवर आई लुबुधे चहुं पासा।।
वेनी नाग मलैगिरि पीठी। ससि मांथे होई दुइजि बैईठि।।
भौंहे धनुक सांधि सर फेरि। नैनि कुरंगिनि भूलि जनु हेरि।।[48]

जायसी स्त्री वर्ग को यथार्थ को स्वीकार करने की शिक्षा भी देते हैं जब स्त्री यथार्थ को स्वीकार करने की स्थिति में आ जाती है तो उसकी स्थिति परिवर्तन अवश्यम्भावी है। प्रसंग है, जब नागमती तोते को मारने का आदेश दे देती है लेकिन दासी उसे राजा रतनसेन के डर से मारती नहीं है। राजा तोते की खोज करता है और दासी द्वारा तोता पुनः वापस मिल जाता है तो नागमती स्वयं रतनसेन के समक्ष अपना असत्य रूपी अपराध स्वीकार करती है, देखिए—

जुआ हारि समुझी मन रानी। सुआ दीन्ह राजा कंह आनी।
मान मते हौं करब जो कीन्हा। कंत तुम्हार मरम मैं लीन्हा।।[49]

जायसी ने स्त्री वर्ग को यह भी शिक्षा दी है कि गुरु के उपदेश के समक्ष माता-पिता का स्नेह भी तुच्छ है। गुरु का स्थान माता-पिता से प्रथम है। प्रसंग है रत्नसेन जोगी

होकर पद्मावती को प्राप्त करने के लिए तैयार होता है। ऐसा उपदेश और आदेश उसे अपने गुरु तोता हीरामन से प्राप्त होता है तो उसकी माता उसे रोकना चाहती है तो वह स्पष्ट अपनी माँ से कहता है कि मेरे गुरु का आदेश ही मेरे लिए सर्वोपरि है, देखिए—

देखु अंत अस होइहि गुरु दीन्ह उपदेस।।
सिंघल दीप जाब मैं माता मोर अदेस।।[50]

जायसी ने यह शिक्षा भी दी है कि यह संसार तो असत्य है स्त्रियों को इस सत्य से शिक्षा लेकर भौतिकवाद में नहीं उलझना चाहिए। रत्नसेन द्वारा नागमती को कथन, देखिए—

यह संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानहुं नहि देखा।[51]

कृष्ण भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास के काव्य में भी स्त्री शिक्षा से स्थिति परिवर्तन की दिशा मिल सकती है। वे स्थान-स्थान पर नारी वर्ग को शिक्षा देते हुए प्रतीत होते हैं, देखिए—

रे मन मूरख जनम गंवायौ।
करि अभिमान विषय रस गीध्यौ, स्याम सरन नहि आयौ।
× × ×
कहत सूर भगवंत भजन बिनु सिर धुनि-धुनि पछतायौ।[52]

सूरदास जी ने भौतिकवाद और असत्य संसार में डूबी हुई नारी विशेष को तोते के माध्यम से निरूपित कर ईश-भक्ति में चित्त लगाने का उपदेश किया है, देखिए—

सुवा चलि तो बन कौ रस पीजै।
जा बन राम नाम अम्रित रस; स्रवन पात्र भरि लीजै।
× × ×
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य सो पाऊं।।[53]

गृहस्थाश्रम नारी के बिना सम्भव नहीं है और इसी आश्रम की सफलता के लिए सूरदास ने स्त्री को आतिथ्य सत्कार का उपेदश दिया है, देखिए—

जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करै फल जैसो दरसन पावत।
× × ×

सूरदास संगति करि तिनकी जे हरि सुरति कहावत।।[54]

संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि एवं समाज सुधारक कबीरदास जी के वचन भी स्त्री की स्थिति को परिवर्तित करने में सक्षम हैं। वर्तमान में स्त्रियों में भौतिकवाद की चकाचौंध में येन-केन-प्रकारेण प्रगति करने की कामना हृदय में विद्यमान है। 'आगे दौड़ पीछे छोड़' के चिन्तन के आधार पर वे यह नहीं सोचती हैं कि यह सांसारिक भौतिकवाद उन्हें कहाँ लेकर जायेगा। शहरी भाग-दौड़ में वे दिन-भर और सम्भवत: रात भर भी औद्योगिक क्षेत्रों में भी धन कमाने की जिज्ञासा में पड़ी हुई हैं। ऐसी नारियों को कबीरदास तृष्णा को समाप्त करने की शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं—

त्रिया त्रिष्णां पापणी ;तासु प्रीति ना जोड़।
पैडी चढि पाछां पडै, लागै मोटि खोडि।।[55]

सांसारिक तृष्णा के लिए ही कबीरदास जी निम्न दोहा भी कहते हैं—

त्रिष्णां सांची नां बुझै दिन-दिन बधती जाय।
जवासा के रूष ज्यूँ घण मेंहाँ कुमिलाई।।[56]

कबीरदास जी ने अहंकार को भी त्यागने का उपदेश दिया है, देखिए—

कबीर जग की को कहै, भव जल बूडै दास।
पारब्रह्म पति छांडि कर, करै मानि की आस।।[57]

घमण्ड के त्याग सम्बन्धी एक और दोहा देखिए—

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहि जाइ।
मान बड़ै मुनियर मिलै, मानि सबन कौ खाइ।।[58]

कबीरदास जी बाह्य सुन्दरता के बजाय मन की सुन्दरता को महत्त्व देते हैं। वे बाह्य सुन्दरता को निरा आडम्बर मानते हैं। यह स्त्री की स्थिति परिवर्तन के लिए श्रेष्ठ शिक्षा हो सकती है, देखिए—

रज वीरज की कली, तापरि साज्या रूप।
राम नाम बिन बूडिहैं, कनक कामिनी कूप।।[59]

शरीर बाहर से तो बहुत सुन्दर लगता है लेकिन अन्दर हाड़, मांस, रक्त आदि से निर्मित है। अत: बाह्य सौन्दर्य के बजाय आत्म सौन्दर्य पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

राम भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास जी ने स्त्री वर्ग को किसी भी स्थिति में अपने पति का साथ नहीं छोड़ने की शिक्षा दी है, देखिए—

कीर के कागर ज्यों नृप चीर, बिभूषिन उप्पम अंगनि काई।
औध तजि मगवास के रुख ज्यौं पंथ के साथ ज्यौं लोग लुगाई।
संग सुबन्धु पुनीत प्रिया मनो धर्म किया धरि देह सुहाई।
राजीवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई।।[60]

तुलसीदास स्त्री वर्ग के लिए नियतिवाद की शिक्षा भी देते हैं। उनका दृष्टिकोण है 'जो होना है, वह होकर रहेगा' स्त्री वर्ग को किसी भी प्रकार के कठिन भविष्य के लिए तैयार रहना चाहिए। प्रसंग यह है कि राम वन गमन के बाद जब माता कौशल्या ने सुमित्रा के सामने कैकेयी के कठोर व्यवहार की चर्चा की तो इस सबको भाग्य का दोष बताते हुए सुमित्रा के कथन का वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं—

कीजै कहा जीजी जू सुमित्रा परि पायं कहै,
तुलसी सहावै विधि सोई सहियत है।।[61]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि का नियतिवादी दृष्टिकोण है। भविष्य की कठिनाइयों को हमें नियतिवाद के माध्यम से स्वीकार करना चाहिए। ऐसी शिक्षा ही तुलसी ने स्त्री वर्ग को दी।

तुलसीदास जी ने नारी वर्ग को जंगल आदि सुनसान स्थानों में अकेले जाने के बजाय सुरक्षा के लिए अपने साथ अपने पति या देवर आदि पुरुष वर्ग को रखना चाहिए। जिस प्रकार राम–सीता और लक्ष्मण हैं। राम और लक्ष्मण के बीच सीता सुरक्षा की दृष्टि से है, ऐसी सीख स्त्री वर्ग को माननी चाहिए, देखिए—

आगे सोहे सांवरो कुँवर गोरो पाछै पाछै,
आछै मुनि वेष धरे लाजत अनंग है।
साथ निसिनाथ मुखी पाथनाध नंदिनी सी,
तुलसी बिलोके चितु लाई लेत संग हैं।[62]

राम और लक्ष्मण के बीच में सुरक्षा की दृष्टि से सीता जी विद्यमान हैं। इसी बात को वन मार्ग पर जा रहे राम-सीता और लक्ष्मण को देखकर ग्रामीण स्त्रियाँ भी कहती हैं——

बनिता वनी स्यामल गौर के बीच,
बिलोकहुं री सखी! मोहि सी ह्वै।
मग जोग न कोमल क्यों चलिहै?
सकुचात मही पद पंकज ह्वै।[63]

तुलसीदास जी ने यह भी सिद्ध किया है कि स्त्री की शिक्षा और उपदेश को सर्वोत्तम मानना चाहिए नहीं तो सर्वनाश निश्चित है। मन्दोदरी द्वारा रावण को शिक्षा पूर्ण सलाह, देखिए——

कहति मंदोदरि सुनहुं, रावन! मतो,
बेगि लै देहि वैदेहि रानी।।[64]

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि भक्तिकाल के प्रमुख कवियों की शिक्षा से स्त्री की स्थिति में परिवर्तन सम्भव है। इन कवियों द्वारा मध्यकाल में दी गई शिक्षा आज तक स्त्री वर्ग का पथ प्रदर्शन कर रही है और यह शिक्षा संस्कृति से युक्त एवं उपदेश पूर्ण है। मध्यकाल के प्रमुख कवियों की स्त्री वर्ग के सन्दर्भ में दी गई शिक्षा वर्तमान में भी प्रासंगिक है।

स्त्री चिन्तन को भक्तिकाल की देन

भक्तिकाल को मध्यकाल भी कहा जाता है। वर्तमान स्त्री चिन्तन की नींव हमें भक्तिकाल में ही मिलती है। तब से लेकर अब तक नारी पर चिन्तन और बहस हो रही है। यह एक ऐसा चिन्तन है जो कभी थमने का नाम नहीं लेगा। समाज का वह कौन-सा दृष्टिकोण है जो नारी को हमेशा केन्द्र में रखता है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक नारी एक ओर जगत जननी के रूप में तो दूसरी ओर रति या कामिनी के रूप में चित्रित हुई है। इतना जरूर है कि भक्तिकाल और आज में अन्तर अवश्य दिखाई देता है।

जहाँ स्त्री के सकारात्मक मानवीय पक्ष को लेकर न्यायपूर्ण दृष्टि से उसके अधिकारों के लिए बात की जाती है या सोचा जाता है। स्त्री चिन्तन का आधार वहीं से

शुरू होता है। इस दृष्टि से भक्तिकाल के कवि सूरदास, तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी, मीरा आदि ने ईमानदारी से स्त्री के अधिकारों की बात की है। हालाँकि मीरा को छोड़कर अन्य कवि पुरुष हैं लेकिन वे धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने कई स्थानों पर नारी अधिकारों की वकालत की है। समाज में नारी को दूसरा दर्जा देने की दृष्टि सदियों से देखी जाती रही है। इसी कारण कबीर जैसे समाज सुधारक ने भी नारी को कामिनी और नागिन तक की संज्ञा दे डाली। हालाँकि आज भी नारी को दबाकर कुचलकर नियन्त्रण में रखने की सदियों से काम कर रही पुरुष मानसिकता मौजूद है।

भक्तिकाल के प्रमुख कवियों ने ही सर्वप्रथम स्त्री चिन्तन को पहचान दी, उनके काव्यों को पढ़ कर ही ये लगा कि स्त्री के बारे में सोचा जाना चाहिए। वर्तमान स्त्री विमर्श हमें नया लग सकता है लेकिन भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के काव्य में तो स्त्री चिन्तन पहले से ही मौजूद था। जब आधुनिक काल में स्त्री की दशा और दिशा के बारे में सोचा जाने लगा तो उसके बीज भक्तिकाल में ही मिले। जब कभी रामचरित मानस को पढ़ा जाता है तो लगता है कि सीता के रूप में वर्तमान स्त्री को अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ रहा है। रामचरित मानस में जहाँ जहाँ स्त्री प्रसंग आते हैं, वहीं वहीं ऐसा लगता है कि आज की नारी अपनी दशा का ताल्लुक वहीं से रखती है।

कबीरदास जी ने अनेक स्थानों पर नारी को माया कहा है, देखिए—

कबीर माया मोहनी मोहे जाण सुजाण।
भागां ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बाण।।[65]

अब प्रश्न यह उठता है कि नारी को माया कहने का क्या अभिप्राय है? इसके उत्तर में हम यह पाते हैं कि माया शब्द का प्रयोग उत्तम और अधम दोनों अर्थों में होता है, फिर भी वहाँ अधम अर्थ पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। माया का अर्थ है—'हो कुछ और दिखावे कुछ और' पुरुष भ्रान्ति परम्परा में विचरता हुआ इस स्थिति में पहुँच गया कि वह अन्य की अपेक्षा भोगवासना के आवेश में नारी रूपधारी असंग चेतन को ही भोग्य समझने लगा। नारी ने यदि पुरुष का सहयोग किया तो पुरुष समझने लगा कि वह तो भोग्या है और ऊपर से यह आरोप भी लगाया कि यह तो छलिया है, माया है। वस्तुत: भोक्ता और भोग्य का भेद झूठा है। यदि देहावेश को स्वीकार कर लें तो भी दोनों भोक्ता हैं।इस छलनामय

भोग्यता के प्रदर्शन में जो नारियाँ आगे रहीं, उन्हें ही माया कहा गया है। यदि नारी को नर भोग्य समझता है तो इसमें क्या दोष है? इसका उत्तर यह है कि इसमें तो अनेक दोष हैं 'एकमात्र परमात्मा ही सत्य है' इस तात्त्विक सिद्धान्त से पुरुष च्युत हो जाता है तथा अपने को देहाभिमानी भोक्ता मान बैठता है। नारी को पाँच भौतिक पुतला मानकर उसके प्रति स्थूल खाद्य पदार्थ अन्न-जल आदि के समान व्यवहार करके अपमानित कर बैठता है। इसी प्रवृत्ति से लोग स्त्री जाति को सामान्य धन समझ कर व्यापार करते हैं। एक तरफ तो पुरुष नारी को अपवित्र मानता है जबकि दूसरी ओर सबसे ज्यादा उसी की ओर आकर्षित होता है। स्त्री के साथ समतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। यदि कबीर को छोड़ दें तो भक्तिकाल के अन्य कवि जैसे तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, मीरा आदि ने स्त्री की समानता और शिक्षा पर जोर दिया है। वर्तमान में स्त्री सशक्तिकरण के बीज भक्तिकाल में ही मिलते हैं। यहीं से स्त्री चिन्तन की शुरुआत होती है।

तुलसीदास जी ने अपने काव्य में यह सिद्ध किया है कि स्त्री की विपत्तियों में पुरुष भी उसके प्रति समर्पित रहता है और स्त्री की परेशानियों से वह खुद भी दुःखी होता है। देखिए राम की वियोग व्यथा—

जबहि सिय सुधि सब सुरनि सुनाई।

× × ×

रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई सुमिरि सनेह सगाई।।[66]

सूरदास के काव्य में प्रेम ही प्रेम है। प्रेम की डूब है, पूरा समाज प्रेम में झूमता प्रतीत होता है। यहाँ कोई सामन्त नहीं है। यहाँ माधुर्य भक्ति में भी परकीया भाव है, फिर भी सब स्वीकार्य है। सम्पूर्ण ब्रज में एकमात्र पुरुष कृष्ण है जो सौन्दर्य का धनी है। सभी स्त्रियाँ उस पर आसक्त हैं। यहाँ प्रेम की चुहलबाजी है। हास-परिहास और अभिसार है। यहाँ स्त्रियों के गौरवर्ण या सुन्दरता की चर्चा न के बराबर है। यहाँ तो ऐसा सिद्ध होता है कि सदियों की सामन्ती पाबन्दी से मुक्त होकर स्त्री ने यह व्यक्त किया है कि उसे भी सुन्दर पुरुष की कामना रहती है। वह भी स्वेच्छा से किसी के साथ रमण करना चाहती है, किन्तु यह रमण वह एक ऐसे पुरुष से चाहती है जो उसकी रुचि-अरुचि का ध्यान रखता हो

जिसकी दृष्टि नारी शरीर तक नहीं, उसके हृदय तक जाती हो, सदियों से नारी ही अपने सौन्दर्य व अठखेलियों से पुरुष को रिझाती रही है। अब कोई पुरुष भी उसे आकर्षित कर सके, मोहपाश में जकड़ने को विवश कर सके, नारी यदि केवल श्रद्धा है, विश्वास रजत नग पग तल में तो पुरुष भी विश्वास तथा समर्पण दे सके।

नारी मन की इस सूक्ष्मता को सूरदास ने अन्तर्मन की दृष्टि से महसूस किया कि पुरुष एक तानाशाह न होकर उसकी कोमल भावनाओं का ध्यान रखे। इसीलिए उन्होंने कृष्ण के राजनीतिक चरित्र को अधिक स्पर्श नहीं किया। उन्होंने समाज को क्रमिक विकसित होने वाले प्रेम से परिचित कराया। यह प्रेम कोई बाह्य आकर्षण अथवा पहली नजर का प्यार नहीं, अपितु बालपन से विकसित होता हुआ प्रेम है। इसे छुड़ा पाना असम्भव है। इसलिए वे उद्धव से कहती हैं—

लरिकाई को प्रेम; कहो अलि कैसे करिकै छूटत।[67]

बचपन का प्रेम आसानी से नहीं छूटता है, गोपियों की आँखें उस नटखट कृष्ण के रूप दर्शन की प्यासी ही नहीं बल्कि भूख से बेहाल हैं—

अंखियां हरि दरसन की भूखी।
कैसे कहे रूप रस राची ये बतियां सुनि रूखी।।
× × ×
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता है सूखी।।[68]

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि वर्तमान नारी चिन्तन और स्वतन्त्रता भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के चिन्तन में है।

स्त्री की सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में कवियों का चिन्तन

समाज का प्रमुख और सर्वमान्य अंग स्त्री है। भक्तिकाल में स्त्री की सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में कवियों ने अपनी रचनाओं में यथोचित चित्रण और चिन्तन किया है। हम जब विभिन्न कवियों के स्त्री सन्दर्भित विचारों को पढ़ते हैं तो हमें लगता है आज भी वे बातें स्त्री सन्दर्भ में प्रासंगिक हैं। भारतीय संस्कृति में नारी का उल्लेख जगत-जननी आदि शक्ति स्वरूपा के रूप में किया गया है। श्रुतियों और स्मृतियों, पुराणों में नारी को विशेष स्थान मिला है। मनु स्मृति में कहा गया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रे तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तफलाः क्रिया।।

अर्थात् जहाँ नारी का समादर होता है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं है वहाँ समस्त यज्ञादि क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं।

हमें भक्तिकाल के पूर्व कालों में स्त्री के प्रति उच्च विचार मिलते हैं लेकिन भक्तिकाल तक आते–आते नारी दैवीय रूप से सामान्य स्त्री के रूप में देखी जाने लगी। यह स्थिति नारी की पराधीनता के रूप में परिवर्तित हो गई।

कबीर के यहाँ माया का एक रूप नारी भी है जिसके बारे में उनके विचार अत्यन्त कड़वे हैं। कबीर के रहस्य का एक रूप यह भी है कि कबीर साहित्य में कहीं माया और नारी एक हैं तो कहीं दोनों ही आग हैं जिससे मनुष्य जल कर बरबाद हो जाता है, देखिए—

माया की झल जग जल्या, कनक कामिणी लागि।
कहु धौं किहि विधि राखिये रुई पलेटी आगि।।[69]

निम्न दोहा भी नारी को माया का रूप बता कर उससे दूर रहने की सलाह देता है—

कबीर इस संसार का झूठा माया मोह।
जिहि धरि जिना बंधावला, तिहि घरि तिता अंदोह।।[70]

अर्थात् कबीर कहते हैं कि संसार का माया मोह, आकर्षण मिथ्या है। यहाँ तो सर्वत्र दुःख ही दुःख है। जहाँ बहुत अधिक आनन्दोल्लास है अथवा जहाँ जितना अधिक आनन्द मंगल दिखाई देता है, वहाँ दुःख भी उतना ही अधिक है।

कबीरदास के अनुसार कहीं नारी विष है तो कहीं नरक का कुण्ड, नारी के स्नेह सम्पर्क से बुद्धि और विवेक नष्ट हो जाते हैं, किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती, नारी आत्मज्ञान और मोक्ष की सबसे बड़ी बाधा है, नारी अपनी हो या पराई, उसके सम्पर्क से नरक में जाना पड़ता है इत्यादि विचार उसी कबीर के विचार हैं, जो सभी स्थापित मान्यताओं की चूलें हिला कर रख देता है। नारी सम्बन्धी कबीर के ये विचार उसी सोच के

तहत आए हैं जिसमें उसके लिए कोई सम्मानजनक स्थान नहीं था। भारतीय धर्म साधना में पुरुष के लिए स्त्री त्याज्य मानी गई है, ब्रह्मचर्य की महिमा बहुत पहले से गाई जाती रही है, महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य आदि महापुरुषों ने स्त्री का त्याग करके या ब्रह्मचर्य का पालन करके ही ऊँचा पद प्राप्त किया था। इसी चिन्तन का प्रभाव भक्तिकाल में भी जारी रहा। कबीर आदि निर्गुण पंथ के सन्त भी इसी धारणा के शिकार हैं। स्त्री को दलित मान लिया गया जब समाज सुधारक का पद प्राप्त कबीरदास जी ने स्त्री के बारे में निम्न विचार व्यक्त किए तो सामान्य जनता भी उनका अनुकरण करने लगी और स्त्री के सामाजिक स्वर में गिरावट तीव्र गति से होने लगी। भक्तिकाल में जात-पाँत के बंधन ढीले कर दिए गए, लेकिन स्त्री सम्बन्धी सोच में सन्त साहित्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भक्तिकाल में नारी की सामाजिक स्थिति शोचनीय थी। लगभग सभी भक्त कवियों ने स्त्री विरह के प्रसंग अपने काव्यों में चित्रित किए हैं। समूचा भक्तिकाव्य नारी विरह से भरा हुआ है। खुद कबीर के काव्य में नारी विरह का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है। यह नारी विरह उनका रहस्य भाव भी है और प्रचण्ड संवेदना शक्ति भी, यह कार्य संवेदना के स्तर पर हुआ, सोच के स्तर पर स्त्री को माया माना गया। उसी काल में सामन्ती सोच के तहत सामाजिक स्तर पर स्त्री भोग्या और लूट का माल बनी। खुद कबीर, कभी इसी माया से बचने की गुहार लगाते हैं और कभी बताते हैं कि माया उनके हाथ बिक चुकी है।

कबीर के जमाने में पराई औरत पर कुदृष्टि डालने की सोच भी विद्यमान थी। उस समय स्त्री सामाजिक स्तर पर भोग का साधन थी। पुरुष स्वयं विवाहित होते हुए भी पराई औरत पर नजर रखता था। तभी तो कबीरदास जी ने इसे लहसुन की दुर्गन्ध के समान गलत बताया है, देखिए—

पर नारी को राचणौं, जिसी ल्हसन की षांनि।
षूणैं बैसि रषाइए, परगट होई दिवानी।।[71]

× × ×

नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासैं होई।
भगति मुकति जिन ज्ञान में पैसि न सकई कोई।।[72]

तत्कालीन समाज पर कबीर के दोहों का प्रभाव ऐसा पड़ा कि पुरुष नारी से तो दूर हो नहीं पाया उल्टे नजदीक रह कर ही उसे परेशान करने लग गया और कबीरदास जी की दुहाई दे दे कर उसे घटिया कहा और पद दलित करने लगा जबकि स्त्री हमेशा ही उसी पुरुष पर आर्थिक और सामाजिक रूप से निर्भर रहने लगी। वह हमेशा यही सोचने लगी कि शायद मुझ में ही कमी है। मैं अपने पिया को कैसे प्रसन्न रखूँ, देखिए——

मन प्रतीति न प्रेम रस, नां इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूं कैसे रहसी संग।।[73]

हालाँकि कबीर ने यह दोहा ईश्वर प्रेम के सन्दर्भ में कहा है लेकिन परदे के पीछे तत्कालीन नारी का दर्द वे चुपके से कह गये। आज भी विवाह पूर्व अविवाहित स्त्री के मन में यही सवाल उमड़ते रहते हैं कि मैं जिस घर में विवाह करके जाऊँगी वहाँ का कैसा वातावरण होगा? क्या मेरे प्रेम और व्यवहार से मैं अपने पति और समस्त ससुराल पक्ष का ह्रदय जीत पाऊंगी या नहीं? मेरा पति कैसा होगा? कैसा मेरे साथ व्यवहार होगा? वस्तुत: कबीरदास जी का उपर्युक्त दोहा स्त्री की सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में आज भी प्रासंगिक है। और यही दोहा क्यों, कबीरदास जी के अधिकतर उपदेश और शिक्षा आज भी स्त्री चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में सन्दर्भित किए जाते हैं।

भक्तिकाल में समाज की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। सम्पूर्ण समाज असहाय, दरिद्रता और अत्याचार की भट्टी में सुलग रहा था। स्वार्थवश या बलात्कार के कारण धर्म परिवर्तन हो रहे थे। हिन्दू कन्याओं का यवनों से बलात् विवाह का क्रम भी चल रहा था। दास प्रथा भी प्रचलित थी। सम्पन्न मुसलमान हिन्दू कन्याओं की खरीद–फरोख्त कर रहे थे और कुलीन नारियों का अपहरण करा कर अमीर लोग अपना मनोरंजन करते थे। परिणामस्वरूप हिन्दू जनता ने इस आक्रमण से बचने के लिए अनेक उपाय किए जिनमें सती–प्रथा, बाल–विवाह, परदा प्रथा इस आक्रमण से बचने का ही उपाय थे। कबीरदास ने समाज में प्रचलित सती–प्रथा का चित्रण किया है, देखिए——

कबीर मंदिर आपणै तिय उठि करती आलि।
मड़हट देष्या डरपती चौड़ दीन्ही जालि।।[74]

अर्थात् कबीर दास जी कहते हैं कि वही लज्जाशील नारी जो नित्य अपने भवन में परदा करती थी और श्मशान को देख कर डर जाया करती थी वही आज श्मशान के निर्जन बेरोक टोक स्थान में जला दी गई, यह संसार कैसा नश्वर है।

इस दोहे से यह ध्वनित होता है कि सती-प्रथा के मामले में उस समय स्त्रियों से जबरदस्ती की जाती थी और उनकी इच्छा के बिना ही उन्हें पति के साथ जला दिया जाता था। जो स्त्री श्मशान को देखकर डरती है वह सती होने और जलने के लिए कैसे तैयार हो सकती है? लेकिन तत्कालीन समाज स्त्री को सती-प्रथा की बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए माहिर था।

रामभक्त तुलसीदास जी स्वयं मर्यादावादी थे। पुरुषों की अधीनता में रहकर गृहस्थी का कार्य सम्भालना ही वे स्त्रियों के लिए बहुत समझते थे। उन्हें घर के बाहर निकालने वाली स्वतन्त्रता को वे ठीक नहीं मानते थे, पर यह भी समझ लेना चाहिए कि 'जिमि स्वतन्त्र होई बिगरई नारी' कहते समय वे अपने देशकाल से प्रेरित थे। उन्होंने भक्ति मार्ग के लिए पुरुष और स्त्री दोनों ही वर्गों को उत्साहित किया। तुलसी ने स्त्री का विभिन्न दृष्टिकोणों से सामाजिक चित्रण किया है। पुत्री का विवाह माता-पिता के लिए कष्ट और आनन्द का मिला-जुला रूप है। अपनी पुत्री की चिन्ता हर माता को होती है। ऐसे में पार्वती की माता शिवजी से उनके पैर परकड़ कर अपनी पुत्री को सुखी रखने की कामना करती है। इस चित्रण के द्वारा तुलसी ने यह सिद्ध किया है कि चाहे कोई कितना भी बड़ा राजा हो अपनी पुत्री की मंगलकामना के लिए ससुराल पक्ष के समक्ष अवश्य झुकता है और यह परम्परा आज भी चली आ रही है, देखिए—

नाथ उमा मम प्रान सम गृह किंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरू देहु।।
× × ×
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। जाई जननि उर पुनिल पटानी।।[75]

इस प्रकरण से तुलसी का स्त्री के बारे में सामाजिक चिन्तन और उसकी तत्कालीन दशा व्यक्त होती है। पुरुष प्रधान समाज में पार्वती जैसी दैवीय स्तर की स्त्री को भी नौकरानी समझने की प्रार्थना की गई है और स्वयं माता द्वारा अपनी पुत्री को भी यही

सीख दी जा रही है कि तू हमेशा अपने पति के चरणों में ही पड़े रहना। इस प्रकरण में स्त्री अपने भाग्य पर रोती हुई व्यक्त करती है कि विधाता ने स्त्री जाति का सृजन ही क्यों किया। वह अपने भाग्य को कोसती है क्योंकि बचपन में उसे पिता की पराधीनता में, युवावस्था में पति की पराधीनता और वृद्धावस्था में पुत्रों की पराधीनता में रहना पड़ता है। कमोबेश आज भी नारी की यही स्थिति है। तुलसी का चिन्तन यह है कि पराधीन को तो सपने में भी सुख नहीं है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि तुलसी के जमाने में सामन्तवाद मजबूत या पित्तृसत्तात्मक व्यवस्था थी। नारी पुरुष के आश्रय में ही फल-फूल सकती थी, पुरुषों से अलग होकर नारी का जीवन दयनीय हो उठता था। ऐसे में नारी का परम स्वार्थ और हित इसी में था कि वह हमेशा पुरुष की कृपापात्र बनी रहे। यही सलाह पार्वती को अनुभवी माँ ने अपनी बेटी को दी है। वह एक प्रकार उसे आशीष दे रही है कि तू अपने पति की छत्रछाया में ही अपना जीवनयापन कर, तेरा पति तुझे हमेशा साथ ही रखे और इस आशीष को फलीभूत करने के लिए जो नीति पार्वती को अपनानी है, वह भी उसे समझाती है कि हमेशा अपने पति की सेवा करके खुश रख और खुद भी खुश रह। यह एक प्रकार से वही नीति है जा कमजोर हमेशा बलवान के प्रति अपनाता है। बलवान से खामखां उलझना कहीं की बुद्धिमानी नहीं है। हिन्दी आलोचना में जितनी चर्चा सीता के पतिव्रत की है, उतनी राम के पत्नीव्रत की नहीं है।[76]

सूफी काव्यधारा के मलिक मुहम्मद जायसी अपनी सम्पूर्ण भावुकता के साथ स्त्री की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हैं। वे स्त्री जीवन के अनुभवों और कष्टों का परिचय देते हैं।

पद्मावत की नायिका पद्मावती चाहे राजपरिवार से सम्बन्धित है लेकिन उसके जीवन में कष्टों से संघर्ष वह साधारण नारी की तरह ही करती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि उस समय पर-नारी पर पुरुष की कुदृष्टि लगी रहती थी। इसी कुदृष्टि का शिकार पद्मावती भी हुई। पद्मावती के कारण ही राजा रतनसेन को अलाउद्दीन से दुश्मनी मोल लेनी पड़ी। हिन्दी साहित्य में नागमती का विरह वर्णन अद्वितीय कहा गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस बारे में कहा है—"नागमती का वियोग हिन्दी साहित्य में विप्रलम्भ शृंगार का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।"[77] स्त्री के हिस्से में तो केवल दुःख ही आया है। नागमती जैसी रानी को पर-स्त्री के लिए छोड़ कर चल देना, उस समय की स्त्री की

सामाजिक स्थिति को व्यक्त करता है। इसके बावजूद स्त्री–पुरुष के लिए एकनिष्ठ और वफादार बनी रहती है और उसके लौट आने की कामना करती रहती है। रतनसेन इधर पद्मावती के साथ मौज उड़ाता रहता है, उधर नागमती वियोग में तड़पती हुई उसकी याद करती रहती है, देखिए—

फागुन पवन झंकोरे बहा। चौगुन सीउ जाइ किमि सहा।।
तन जस पियर पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होई झोरा।।
तरिवरि झरै झरै बन ढांका। भइ अनपत्त फूल कर साखा।।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कहं भा जग दून उदासू।।
फाग करहि सब चांचरि जोरी। मोहि जिय लाई दीन्हि जसि होरी।।
जौ पै पियहि जरत अस भवा। जरत मरत मोहि रोस न आवा।।
राति हु देवस इहै मन मोरे। लागौ कंत छार जेउँ तोरे।।
यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उडाउ।।
मकु तेहि मारग होई परौं कंत धरै जहँ पाउ।।[78]

अर्थात् फागुन महीने में हवा तीव्र गति से बहने लगती है और ठण्ड भी चौगुनी बढ़ जाती है, यह असहनीय है। नागमती कहती है—पेड़ों के पीले पत्ते की तरह मेरा शरीर भी पीला पड़ गया है। विरह पवन के रूप में बहकर मेरे शरीर को पकड़कर झकझोर रहा है। यह मुझे अब सहा नहीं जाता। पेड़ों की सारी डालियां पत्तों से रहित हो गई हैं, पर मेरी उदासी अब तक दूर नहीं हो पाई है। सब लोग मिल–जुल कर फाग का आनन्द ले रहे हैं और खुशी में 'चांचरि खेल' खेल रहे हैं पर मेरे ह्दय में तो विरह की होली जलाई जा रही है। यदि मेरे पति को मेरा जलना ही पसन्द है तो मुझे किसी प्रकार का दुःख नहीं। दिन–रात अपने मन में अपने पति से मिलने की बात सोचती रहती हूँ। राख बन कर मैं उसके ह्दय से लग जाना चाहती हूँ। मैं इस शरीर को जला कर राख बना देना चाहती हूँ और इस राख को पति के रास्ते पर बिछा देना चाहती हूँ जिससे कि मेरा पति उस मार्ग में पैर रख सके।

कवि सूरदास के लिए प्रेम या श्रीकृष्ण की माधुर्य भक्ति, जिसमें उनकी लीलाओं का वर्णन है, धर्म का सार है, वह सब प्रकार की सामाजिक और नैतिक सीमाओं का अतिक्रमण कर सकता है। एक सच्चे भक्त के लिए वे कुल, जाति, वर्ण को महत्त्व नहीं

देते, फिर भी सूरदास समाज में वर्ण–व्यवस्था को स्वीकार करते हैं और उच्च वर्ण या ब्राह्मण का शूद्रों या निम्न वर्ण के लोगों के साथ बैठकर भोजन करना हंस और कौए या लहसुन और कपूर के योग के समान मानते हैं।

सूर ने ब्रज में रहने वाली पशुपालक अहीरनों के सादे और निश्छल जीवन तथा उसी क्षेत्र में रहने वाली ग्वालिनों के कठिन और अभावग्रस्त जीवन को चित्रित किया है, फिर भी सूरदास ब्रज को प्रेम और आनन्द के कल्पना लोक में प्रस्तुत करते हैं।

सूरदास नारी को काम या वासना का प्रतीक नहीं मानते, वह मुख्यत: कोमलता, प्रेम, भक्ति और संवेदनाओं की प्रतिमूर्ति हैं। सूरदास नारी के लिए भक्ति का मार्ग खोलते हैं जिसमें सामाजिक बंधन ढीले पड़ जाते हैं, किन्तु मुख्य रूप से सूरदास, नारी के लिए पति–सेवा को ही महत्त्व देते हैं। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। समाज में जो सांस्कृतिक, धार्मिक या नैतिक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उनका साहित्य के ऊपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। सूरदास का लक्ष्य श्रीकृष्ण के समस्त जीवन का चित्रण करना था लेकिन बिना ब्रज की गोपियों एवं नारियों के यह कैसे सम्भव था? गोपियों की तत्कालीन सामाजिक स्थिति का चित्रण हमें सूरकाव्य में मिलता है। देखिए कृष्ण जन्मोत्सव पर यशोदा के रूप में एक नारी की खुशी, यशोदा कहती है—

गोकुल प्रकट भए हरि आइ।
अमर उधारन असुर संहारन अंतरजामी त्रिभुवन राइ।
× × ×
सूरदास पहिलै ही मांग्यौ दूध पियावन जसमुति माइ।।[79]

उपर्युक्त प्रसंग में माता की भूमिका में यशोदा का सामाजिक रूप से सुन्दर चित्रण हुआ है।

भक्तिकाल में नारी सामाजिक रूप से मेल–मिलाप एवं आपसी सहयोग के वातावरण में रहती थी। कोई भी सूचना एक–दूसरे को स्त्रियाँ हाथोंहाथ पहुँचाती थीं। देखिए गोपियों की सूचना पद्धति—

हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायो, घर पर होति बधाई।।

× × ×

सूरदास स्वामी सुख सागर, सुन्दर स्याम कन्हाई।।[80]

सूरदास जी ने स्त्री को मध्यकाल में स्वतन्त्रता प्रदान करने की चेष्टा की है। स्त्री अपने पसन्द के प्रेमी से प्रेम व्यवहार कर सकती है। सूर काव्य में राधा कृष्ण का प्रेम वर्णन इसी तथ्य को प्रदर्शित करता है। राधा कृष्ण से कभी अलग नहीं होती है अलग होती भी है तो मानसिक रूप से दोनों साथ ही जुड़े रहते हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री–पुरुष दोनों के लिए राधा और कृष्ण का प्रेम प्रासंगिक है और शिक्षा लेने के लिए अतिउत्तम उदाहरण है। सूरदास ने स्त्री का कृष्ण जन्म के कई अवसरों जैसे छठी का व्यवहार, नामकर्म, अन्नप्राशन, वर्षगांठ, कर्ण–छेदन, गोवर्धन पूजा आदि में सामाजिक सन्दर्भ में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

यद्यपि राधा और कृष्ण का गांधर्व विवाह का चित्रण सूरदास ने किया है, फिर भी सूरदास के समय में विवाह की जो सामाजिक रीति थी उस सबका चित्रण उन्होंने किया है जैसे मौन धारण करना, निमन्त्रण, मण्डप और गान, गीत व वेद मन्त्रोच्चारण, पाणिग्रहण व भांवरि गालियाँ गाना, कंकण खोलना आदि सभी बातों का चित्रण है। कंकण खोलने का चित्रण देखिए—

नहि छूटै मोहन डोरना हो।
बड़े हो बहुत अब छोरियो हो ये गोकुल के राई।।
कै कर जोर करो बिनती, कै छुवौ श्रीराधा जी के पांई।।[81]

इनके साथ ही सूरसागर में पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार कुछ नैत्यिक आचारों का भी चित्रण है जिनमें मंगलाचार, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थान, भोग, संध्या, आरती, शय आदि में राधा गोपियों आदि का सुन्दर सामाजिक चित्रण हुआ है। सूरदास के चित्रण में कृष्ण कभी भी ब्रज में एकान्तवासी नहीं रहे। बचपन में माँ यशोदा तथा किशोरावस्था एवं यौवनावस्था में राधा एवं गोपियों से घिरे रहे और उनका स्नेह पाते रहे। सूरदास के काव्य में कहीं भी नारी के लिए रोक–टोक नहीं मिलती है और मिलती भी है तो वे उसे मानती नहीं हैं। देखिए, यशोदा और राधा का प्रसंग—

राधा ये ढंग हैं री तेरे।

वैसे हाल मथत दधि कीन्हे हरि मनु लिखे चितेरे।।
तेरौ मुख देखत ससि लाजै, और कह्यौ क्यों बांचै।।
नैना तेरे जलज जीत हैं खंजन तै अति नाचै।।
चपला तै चमकति अति प्यारी कहा करैगी स्यामहि।
सुनहुं सूर ऐसेहि दिन खोवति काज नहीं तेरे धामहि।।[82]

सूरदास द्वारा चित्रित राधा की प्रेम स्वतन्त्रता की पराकाष्ठा देखिए कि वह माता यशोदा का कहा ही नहीं मानती और बराबर कृष्ण में ही अपना मन लगाये रखती है—

मेरौ कह्यौ नाहिन सुनति।
तवहि तैं इक तक रही ह्वै, कहाँ धौं मन गुनति।।
× × ×
सूर प्रभु नंद सुवन निरखत जननि कहति सुभाउ।।[83]

पूर्णत: स्वतन्त्रता उसे प्राप्त नहीं थी। पुरुष द्वारा बनाये हुए सामाजिक बंधन नारी पर कसे हुए थे। कहीं-कहीं तो नारी ही नारी मुक्ति की पहरेदार बनी हुई थी जैसे यशोदा ही राधा को कृष्ण से मिलने पर रोक-टोक करती है। इस प्रकरण में नारी को पुरुष की शान और इज्जत से भी जोड़ कर देखा गया है अगर स्त्री यथेच्छापूर्ण कार्य करे तो वह पुरुष की दृष्टि में अनुरूप होना चाहिए, विपरीत नहीं। यशोदा राधा को उसके पिता वृषभानु की इज्जत और नाम का हवाला देते हुए उसके प्रेम पर बंधन लगाना चाहती है। यहाँ यशोदा स्वयं स्त्री होते हुए सामाजिक बंधनों से बँधी हुई है और सामाजिक बंधन भी पुरुष के बनाये हुए हैं।

उन्हीं की अदालतें उन्हीं के मुंसिफ उन्हीं के वकील,
मुझे मालूम था कुसूर मेरा ही निकलेगा।

सूरदास के चिन्तन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री में स्वतन्त्रता की भावना उस समय विद्यमान थी और लगातार आकाश छूने के लिए छटपटा रही थी लेकिन पुरुष वर्ग द्वारा बनाये गये बंधन भी उतने ही सशक्त थे, जिनके चंगुल से स्त्री का स्वतन्त्र हो पाना कठिन था, फिर भी यह कहा जा सकता है कि सूरदास के काव्य में सामाजिक रूप से स्त्री स्वतन्त्रता का चिन्तन विद्यमान है।

वर्तमान नारी चिन्तन

वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में नारी विषय पर चिन्तन करने पर आरम्भ में ही यह तथ्य उजागर हो जाता है कि इक्कीसवीं शताब्दी का आरम्भ ही महिला सशक्तिकरण वर्ष 2001 के रूप में हुआ। नारी विषय पर केवल चर्चा ही नहीं वरन् ठोस एवं सार्थक कार्यक्रम भी क्रियान्वित हो रहे हैं। निर्विवाद रूप में नारी की यह विशेषता है कि वह जन्मदात्री है, सृष्टि सृजन करती है, जीवन की समूची रसधार उसी पर आधारित है, लेकिन पाश्चात्य परम्परा एवं संस्कृति का प्रभाव, नारी सन्दर्भ में भारतीय समाज में भी अब दूर से ही पहचाना जा सकता है।

देखा जाये तो वर्तमान युग चेतना का युग है, तकनीकी उपलब्धियों का युग है तथा प्राचीन मूल्यों में परिवर्तन का युग है। गत शताब्दी 'महिला जागरण का युग' रही है। 8 मार्च विश्व महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। नारियों को प्रगति पथ पर प्रेरित करने हेतु राजा राममोहन राय, महात्मा गाँधी, महर्षि कर्वे ने जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया उसीकारण वर्तमान नारी संचेतना जागृत हुई है। नारी पर जो बंधन, सीमा नियन्त्रण थे, वह इन सबसे मुक्ति पा रही है। वर्तमान समाज में अर्थ प्रधान संस्कृति का बोलबाला है। विकास के नाम पर नारी स्वच्छन्द जीवन व्यतीत कर रही है। नारी जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ है तथा भारतीय सन्दर्भ में संयुक्त परिवार की प्रथा समाप्त हो रही है। पश्चिम के अनुकरण में आज की नारी शिक्षा, विज्ञान, विज्ञापन, कला, साहित्य के शीर्ष को स्पर्श करने में लगी है।

नारी विवाह संस्था की धुरी रही है लेकिन वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में विवाहेतर सम्बन्ध खुलेआम प्रदर्शित हो रहे हैं तथा उन्हें समाज स्वीकार भी लेता है। यह स्थिति बेहद खतरनाक व विस्फोटक है। पति-पत्नी के जन्म जन्मान्तर का मिथक टूट चुका है। नारी मानस में तत्सम्बन्धी अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति अब नहीं रही है, उसने अपना व्यक्तित्व प्राप्त कर लिया है। पत्नी कथा की पीड़ा और वेदना अब कम हुई है। आज की नारी मध्यकालीन आदर्शों से भिन्न सामन्ती सभ्यता से विच्छिन्न हो, अपने जीवन के प्रति सजग होकर जीवन यापन करने को स्वच्छन्द है। इक्कीसवीं शताब्दी में भारतीय नारी अपनी वर्जनाओं को तोड़, लक्ष्मण रेखाओं को छोड़ अबलापन की भावनाओं को

तिलांजलि देकर विकास के सोपान चढ़ रही है। वह किरण बेदी है, तो साथ ही कल्पना चावला भी है, लेकिन इसी क्रम में वह शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने वाली फूलन देवी भी है, जहाँ जहाँ उसका दिशा बोध डगमगाया है, वहीं उसका पतन भी चरम पर पहुँचा है। लेकिन शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ नारी की मानसिकता में तीव्र परिवर्तन हुआ है। वर्तमान समाज में नैतिकता के मापदण्ड बेहद लचर हो गये हैं। नारी में भी नैतिकता का भाव तिरोहित हो रहा है। समय और स्थान के अनुरूप मान्यताओं में बदलाव होता रहा है, लेकिन प्रदर्शन और विज्ञापन की होड़ में वर्तमान नारी स्वयं का चीरहरण करने में लगी है। सात्त्विक रुचि और कलात्मकता उदारीकरण की हवा में बही जा रही है। सम्बन्धों के बीच से प्रेम और स्नेह गायब हो रहा है। नारी भी आत्म-केन्द्रित हो रही है। भजन की स्वर लहरियाँ, पॉप संगीत और रीमिक्स में बदल रही हैं, और इसी के अनुरूप बदल रहा है, आधुनिक नारी का मूल भाव।

पश्चिमी सभ्यता के संक्रमण के कारण जहाँ नारी जीवन में विविध बदलाव आये हैं, वहाँ यौन शुचिता भी संक्रमित हुई है। यथार्थ के नाम पर नग्नता को अपनाया जा रहा है। टी.वी. चैनलों पर प्रसारित धारावाहिकों का सत्य धीरे-धीरे पूर्ण समाज का सत्य बनता जा रहा है। षड्यन्त्रकारी भूमिका में नारी का चित्रांकन दूरदर्शन के परदे से वास्तविक जीवन में अपने पाँव पसार चुका है। निस्सन्देह आज नारी को समानाधिकार प्राप्त है लेकिन फिर भी वह दहेज की खातिर ईंधन की तरह जलाई जाती है। कदम-कदम पर तिरस्कृत तथा बहिष्कृत होती है। आज विज्ञापन में नारी देह का धडल्ले से प्रयोग हो रहा है। नारी का नंगापन उसकी स्वतन्त्रता का सूचक नहीं है लेकिन विज्ञापित नारी अकेली उत्तरदायी नहीं है। यदि सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो वर्तमान समय में भी समाज में नारी का स्थान कुछ वैसा ही है जैसा किसी दुकान, मकान, आभूषण अथवा चल-अचल सम्पत्ति का हो। वर्तमान प्रधान समाज को अपनी सामन्ती सोच एवं सड़ी-गली मानसिकता, संकीर्ण व्यवस्था, रूढ़िगत कुप्रथा को नारी उत्कर्ष हेतु तिलांजलि देनी ही होगी। पुरुषों को इस प्रकार का वातावरण तैयार करना होगा, जिससे नारी को एक जीवन्त, मानुषी जन्मदात्री एवं राष्ट्र का सृजनहार समझा जाये न कि मात्र भोग्या!

वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में नारी चर्चा करते समय यह पंक्तियाँ सटीक लगती हैं 'राम भले ही पैदा हो या ना हो मेरी नगरी में, लेकिन यहाँ रावण तब भी था और अब भी है।'

इतिहास के पन्नों से लेकर वर्तमान तक समूचे काल खण्ड को नारी सन्दर्भ में खंगाला जाये तो समय की सीप में जहाँ जहाँ बहुमूल्य मोती मिलेंगे, वहीं पर समस्याओं और आधुनिकता के बाहुपाशों में फँसी नारी की विभिन्न मुद्राओं एवं चीखों को भी सुना जा सकता है।

भूमण्डलीकरण के दौर में नारी स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नहीं आया है, लेकिन फिर भी ग्लैमर, फैशन, आजादी और आसमान को छूने की चाह तो बढ़ी ही है, हर 14 फरवरी को मनाया जाने वाला वैलेनटाइन डे परिवर्तन का प्रतीक है।[84] टी.वी. चैनल पर इस आधुनिक नारी स्वरूप को बढ़-चढ़ कर दिखा रहे हैं। भूमण्डलीकरण नारियों के लिए एक ऐसी चक्की है, जिसमें उन्हें पीसा जा रहा है। इसका एक चेहरा बेबस, गरीब नारी है जिसकी आँखों में उसके भूखे बच्चे के लिए वेदना समाई हुई है तो उसका दूसरा चेहरा उस लड़की का है जिसका मुँह गुस्से से तमतमाया हुआ है। भूमण्डलीकरण के दौर में नारी स्थिति में अपेक्षित सुधार आना सम्भव नहीं। नारी का छद्म रूप दिखा कर उन असंख्य नारियों की वेदना नहीं छिपाई जा सकती, जो गाँवों में रहती है। नारी का वास्तविक स्वरूप आज वही है जो गाँवों में अभावों में जूझती और रूढ़ियों में जकड़ी नारी का है।

वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया, ममता, त्याग, बलिदान जैसे आधार पर ही सृष्टि खड़ी है और ये समस्त गुण नारी में एक साथ समाहित है। नारी प्रेम त्याग का प्रतिबिम्ब है। नारी के अभाव में मानव जीवन शुष्क है, और समाज अपूर्ण है। नारी संसार की जननी है। मातृत्व उसकी सबसे बड़ी साधना है।

भारतीय नारी की हैसियत भी परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रही है। वह अपनी अस्मिता के प्रति पहले से सतर्क है। आज नारी दोहरी भूमिका निभा रही है। गृहलक्ष्मी और राजलक्ष्मी के रूप में उसका गौरव महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा एवं आर्थिक स्वतन्त्रता ने नारी को नवीन चेतना दी है। आज पुरुष नियन्त्रित समाज में नारी आत्म-

विश्वास से भरपूर है। यदि नारी में निर्भीकता और स्पष्टवादिता है तो वह कहीं पर भी कुण्ठाग्रस्त नहीं होती।[85] आज नारी में परमुखापेक्षा का भाव दिखाई नहीं देता।

वर्तमान समय में नारी जागरण को अत्यधिक गति मिली है। विशेषत: नगरों में सुशिक्षित नारी में इसकी गतिविधि अधिक दिखाई देती है। सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, व्यावसायिक आदि कला एवं साहित्य के क्षेत्र में नारी सम्मानित हुई है। समाजवादी नारी भावना का निरन्तर विकास हो रहा है। आधुनिक नारी अपने स्वाभिमान की रक्षा करना जानती है, उसे अपनी सामाजिक सत्ता का पूर्ण अंदाजा है। उसकी दैहिक, सामाजिक व आध्यात्मिक चेतना, समग्र रूप में समूची संरचना का केन्द्र बिन्दु बनी हुई है।

नारी वर्तमान सामाजिक परिवेश में पारिवारिक बिखराव, मूल्यहीनता, यौन सम्बन्धों का मांसल सतहीपन, दिशाहीन राजनीति का प्रभाव, शोषण से मुक्ति पाने की छटपटाहट व्यक्त कर रही है एवं धीरे-धीरे अपने इस प्रयास में सफल भी हो रही है। नारी जिजीविषा के चलते वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में उसका अबला रूप निश्चित ही बदल चुका है। नारी सबल हो रही है, ऊर्जावान बनी है और यह स्थिति कुल मिलाकर सुखद ही है।

इस प्रकार वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में नारी की दशा और दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है लेकिन समूचे देश, काल और परम्पराओं का सम्मान बनाये रखना आवश्यक है। तभी नारी की सनातन गरिमा सुरक्षित रह सकती है।

स्त्री समाज का दर्पण होती है। यदि किसी समाज की स्थिति को देखना हो तो वहाँ की नारी की अवस्था को देखना होगा। राष्ट्र की प्रतिष्ठा, गरिमा, उसकी समृद्धि पर नहीं, अपितु उस राष्ट्र के सुसंस्कृत व चरित्रवान नागरिकों से है और राष्ट्र को समाज को ये संस्कार देती है कि स्त्री जो एक माँ है, निर्मात्री है। माँ अपने व्यवहार से बिना बोले ही बच्चे को बहुत कुछ सिखा देती है। स्त्री मार्गदर्शक है। वह जैसा चित्र अपने परिवार के सामने रखती है, परिवार व बच्चे उसी प्रकार के बन जाते हैं। स्त्री एक प्रेरक शक्ति है वह समाज और परिवार के लिए चैतन्य स्वरूप है परन्तु वही राष्ट्रीय चैतन्य आज खुद सुषुप्तावस्था में है।[86]

हर महान् व्यक्ति के पीछे एक स्त्री है। आज हम सब मिल कर देश व समाज कहाँ जा रहा है इसकी बातें करते हैं। आज के बच्चे कल देश का भविष्य बनेंगे, परन्तु यह विचार करना अति आवश्यक है कि आज के इस परिवेश में ये नौनिहाल किस नये भविष्य को रचने की कोशिश करने में लगा हुआ है। हम सब एक-दूसरे को दोषारोपण करते हैं। क्या सच में ऐसा है? इसी पर आज के चिन्तन में परिवेश की आवश्यकता है और इस सबके लिए जो एक माँ है, का दायित्व अधिक हो जाता है, वह संस्कार स्वत: ही आ जायेंगे क्योंकि वह अपने घर में एक स्वस्थ माहौल देखेंगे तो उसे अपने आचरण में उतारेंगे। उदाहरणस्वरूप अगर हम अपने घर में प्रात: उठते ही कोई भक्ति संगीत लगाएंगे, तो देखेंगे कि वह भजन सारा दिन आप गुनगुनाते रहेंगे। शाम के समय आपका बच्चा भी बोलेगा क "ये सुबह आपने क्या लगा दिया मैं तो सारा दिन यही भजन बोलता रहा।" इसलिए माताओं को यह विचार करना होगा कि घर का वातावरण कैसा हो हमें किस तरह साहित्य पढ़ना चाहिए जिससे उसकी सन्तान राष्ट्र के प्रति समर्पित बनें, यदि माता कौशल्या केवल रानी और भोग-विलास में मस्त रहती तो राम कुछ और ही होते, यह माता कौशल्या के संस्कारों का ही प्रभाव था कि वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम बने। आज के सन्दर्भ में हम डॉ. अब्दुल कलाम का उदाहरण ले सकते हैं कि इतने बड़े वैज्ञानिक होते हुए भी और यहाँ तक कि देश के राष्ट्रपति पद पर आसीन रहते हुए भी उन्होंने अपना जीवन हमेशा सादगी से जिया और मृत्युपर्यन्त अपनी माता के संस्कारों को जीवित रखा।[87]

आज ये प्रश्न हम सबको अपने आपसे करना है कि समाज में स्त्री का क्या स्थान है? क्या हम आज की स्त्री में माता सीता का दर्शन करते हैं जो जब तक जिन्दा रहीं अपने शील की रक्षा हेतु दृढ़ प्रतीक रहीं। आज वो द्रौपदी कहाँ गई, जिसने हमेशा अपने खुले केशों से पाण्डवों को याद दिलाया कि राज्यसभा में किस तरह उनका अपमान हुआ और उन्हें उसका बदला लेना है और वह खत्म हुआ महाभारत के युद्ध पर।

आज नारी जीवन पर फैशन और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। समाज भी अश्लीलता का उल्लंघन करने में लगा हुआ है। ऐसा नहीं है कि फैशन पहले नहीं था, क्या पहले जमाने में प्रेम विवाह नहीं होते थे? उस समय तो गंधर्व विवाह और यहाँ तक कि स्वयंवर भी पिता तय करते थे और कुछ कन्याएँ भी स्वयं ही तय करती थीं।

पुरानी संस्कृति में सब तरह से शृंगार भी महिलाएँ करती थीं और आभूषणों और फूलों से भी सजती थी। इसके साथ-साथ यह भी सच है कि जो कुछ आज का परिवेश है उसकी कल्पना हजारों साल पहले तक नहीं की जा सकती थी और यहाँ तक कि 20 साल पहले तक नहीं की जा सकती थी। यह सिलसिला सालों से चला आ रहा है, शायद इसे ही परिवर्तन कहते हैं। इसलिए हम सबके सामने यह चुनौती है कि केवल अश्लीलता हम पर हावी ना हो और न ही हमारी संस्कृति व हमारी संवेदनाओं पर चोट करे।

वर्तमान स्त्री चिन्तन के सन्दर्भ में हमें केवल स्वतन्त्रता के अन्दर के भाव को समझना होगा, बेटी को उच्छृंखल बनाना तो आसान है, पर साथ में यह भी ध्यान रखना होगा कि कहीं यह आजादी हमारी शर्मिन्दगी का कारण ना बन जाये। हमें अपनी मर्यादाओं की सीमा तय करनी होगी और समझना होगा कि इनका उल्लंघन करने पर कौन-से दुष्परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। हमें आधुनिक तो बनना चाहिए पर अपनी स्वदेशी पद्धति को अपना कर।

हम प्राच्य एवं पाश्चात्य के बीच सेतु न बन कर यह चिन्तन कर रहे हैं कि हम स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता से परिपूर्ण न हो जाये क्योंकि स्वच्छन्दता मानव का सत्यानाश करती है। भारतीय चिन्तन में स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता में भेद किया गया है।

धर्म की दृष्टि, कर्त्तव्य और नैतिकता का एक ऐसा सोच है जिसमें ईश्वर की सन्तानों को जेण्डर जनित दृष्टि से कम देखा गया है। इस सोच ने नारी को समानता तो दी, पर मातृत्व और पितृत्व की समानता को नकारते हुए जाने-अनजाने में पितृ सत्तात्मक समाज को बलशाली रच डाला। बीज और खेत की उपमा देते देते बीज बोने वालों को जमीनों का मालिक घोषित कर दिया गया। पुत्रेष्टि यज्ञ करने और करवाने वालों ने सम्पत्ति और साम्राज्यों के उत्तराधिकार के लिए पुत्रियों की अवांछनीयता को स्वाभाविक सिद्ध कर दिया। धर्म और दर्शन की यह दृष्टि पितरों में नारी को शामिल नहीं कर सकी और चिता की मुखाग्नि से लेकर ईश्वर के साक्षात्कार तक नारी एक गौण पात्र बन कर सहधर्मिणी नहीं रह सकी। यह सहधर्मिता पुत्री और पत्नी के बदले केवल पुत्र को मिली और नारी का पुत्री रूप असमानता में बदलता चला गया। इस्लाम और ईसाइयत कुछ अर्थों में कम ज्यादा समानतावादी हो सकते हैं पर इसी धर्म दृष्टि ने वहाँ भी महिलाओं को इमाम, मौलवी, पोप

नहीं बनने दिया। धर्म व्यवस्था सारे संसार में सर्वत्र ही पुरुष प्रधान रही और परिवार की संरचना को आधार बनाकर, उसे मातृत्व का उपहार देकर घर की चहारदीवारी में कैद कर, उसकी सुरक्षा निश्चित कर दी गई।

मातृत्व जो पुरुष जीवन से भिन्न महिला जीवन का एक कार्य है, नारीत्व की पूर्णता माना गया है और पूर्णांगी पुरुष ने अर्द्धांगिनी नारी को आश्रितता की अंगहीनता देकर एक सृजन–तन्त्र में बदल दिया। कुछ मातृसत्तात्मक जनजातियों को छोड़कर आज सारे संसार में सभी धर्मों में बेटियाँ, बेटों के बराबर कही तो जाती हैं पर मानी नहीं जातीं। यहाँ तक कि उनकी अपनी माताओं के लिए भी वे एक दूसरी वरीयता हैं।[88] धर्म की इस प्रजनन दृष्टि ने नारीत्व को मातृत्व में बदल कर एक ओर तो उसकी माँ की भूमिका का महिमा मण्डल किया है परन्तु दूसरी ओर नारी की इस भूमिका ने उसके नारीत्व को विखण्डित कर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही नकार दिया है। धर्म और दर्शन की इस विवेचना में सबसे अधिक निर्णायक भूमिका साहित्य की रही है।

प्रत्येक युग में नारी और उसके मातृत्व को समानता की दृष्टि से नहीं देखा गया। देश–काल की मान्यताएँ नारी को महानता तो देती रही हैं पर समानता नहीं देती क्योंकि यह समानता देहयष्टि की दृष्टि से व्यावहारिक नहीं हो सकती।

वर्तमान नारी परिप्रेक्ष्य जो इतिहास के अतीत, धर्म, दर्शन के तर्क–वितर्क तथा साहित्य के रंगीन चश्मों से रंगा हुआ है, विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति और आज की मानवतावादी सोच की क्रान्ति के बावजूद भी नर–नारी सम्बन्धों का यह शाश्वत प्रश्न अपनी जगह खड़ा है——क्या मातृत्व को दाम्पत्य और वात्सल्य से पृथक् कर विज्ञान एक ऐसी भविष्य की नारी गढ़ सकता है जो पुत्री अधिक हो, पत्नी कम और माँ अपनी इच्छा से; ये चित्र भयानक ढंग से विवादास्पद होंगे, क्योंकि पिता, पति और पुत्र तीनों ही इन बदली हुई भूमिकाओं को सहजता से स्वीकार नहीं कर सकेंगे। फिर महिलाएँ भी, जो इन पारम्परिक संरचनाओं और सोच में संस्कारित हो चुकी है, या हो रही है, नई भूमिकाओं को अपनाने से डरेंगी पर विज्ञान की यह मानसिक क्रान्ति नर–नारी सम्बन्धों को अतीतवत पवित्र भी नहीं रहने देगी और धर्म–दर्शन और साहित्य की इस खण्डित चिन्तना पर भी प्रश्न उठेंगे और शायद नारी को ही आगे आकर इनका उत्तर भी देना होगा। यह केवल

संयोग मात्र नहीं है कि स्त्री विमर्श के प्रश्न—भूतकाल में कहीं उपभोग का शृंगार पान प्रस्तुत किया गया फिर दाम्पत्य को गृह स्वामिनी की भूमिका में 'हाउस वाइफ' बतला कर नारी को उसके आर्थिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

नारी सुरक्षा एवं संरक्षा के उपाय

भारत में वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति सभी प्रकार से अच्छी थी। उस समय नारी को शक्ति के रूप में पूजा जाता था लेकिन मध्यकाल से लेकर आज तक उसे पुरुष जैसी स्वतन्त्रता नहीं मिल पाई है। आज महिलाओं के साथ अत्याचार निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। आज भी भारत का समाज पूर्णत: पुरुष प्रधान है, महिलाओं के साथ दूसरी श्रेणी के नागरिक के समान व्यवहार किया जा रहा है। पुरुष प्रधान समाज इन महिलाओं का अनेक प्रकार से शोषण कर रहा है। महिलाओं के विरुद्ध हिंसाएं आए दिन होती रहती हैं। भ्रूण हत्या से लेकर कन्या वध, अपहरण, बलात्कार, दहेज-प्रथा आदि की दर निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसके अतिरिक्त कुपोषण, पर्दा-प्रथा, अशिक्षा, प्रसव के समय मृत्यु, बाल-विवाह आदि नारी की दयनीय स्थिति के दर्पण हैं। यह सब स्पष्ट करता है कि हमारे देश की आधी जनसंख्या जो महिलाओं की है, उनके विरुद्ध हिंसा एक जटिल तथा गम्भीर समस्या है जिसका वैज्ञानिक अध्ययन करना तथा समाधान खोजना अतिआवश्यक है।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का अर्थ एवं परिभाषा

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का अर्थ समझने के लिए आवश्यक है कि पहले हिंसा शब्द का अर्थ समझा जाये। हिंसा शब्द का प्रयोग साधारण भाषा में बहुत व्यापक है। सामान्य बोलचाल में व्यक्ति द्वारा किया गया ऐसा कार्य जो अन्यों को पीड़ा पहुँचाये, हिंसा कहलाती है। हिंसा का अर्थ अहिंसा के सन्दर्भ में समझना एवं परिभाषित करना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि साहित्य में अहिंसा की परिभाषाएँ हिंसा के सन्दर्भ में दी गई हैं— "मन से, वचन से या कर्म से किसी भी प्राणी के साथ कोई भी अनुचित कर्म हिंसा कहलाती है।"[89]

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि हिंसा—मन, वचन और कर्म से निरपराधियों को कष्ट पहुँचाना है। दूसरों के विरुद्ध क्रूरता, असमानता,

अपकार, द्वेष, वैमनस्य, द्रोह, ईर्ष्या आदि रखना तथा व्यवहार ही हिंसा है। हिंसा की इन परिभाषाओं के सन्दर्भ में देखना होगा कि समाज में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा ना करें। महिलाओं के विरुद्ध समाज के सदस्यों का वचन और कर्म से पीड़ा पहुँचाना हिंसा है। नारी के साथ क्रूरता का व्यवहार करना, अपमान करना, अधिकार नहीं देना हिंसा है। शोषण करना, यातना देना, बलात्कार, अपहरण, हत्या आदि करना, दुर्व्यवहार करना, मादा भ्रूण हत्या के लिए प्रेरित या बाध्य करना, छेड़छाड़ करना, सम्पत्ति में हिस्सा नहीं देना, सती होने के लिए बाध्य करना, दहेज के लिए यातनाएँ देना आदि हिंसाएं नारी के विरुद्ध हिंसा कहलाएंगी।

तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में सीता अपहरण प्रसंग के माध्यम से यह व्यक्त किया है कि नारी की पूर्ण सुरक्षा हेतु नारी को एकान्त में अकेला नहीं छोड़ना चाहिए। इस प्रसंग में राम जब माया मृग का वध करने हेतु उसके पीछे जाते हैं तो लक्ष्मण को सीता की सुरक्षा हेतु छोड़ जाते हैं और लक्ष्मण से कह कर जाते हैं कि हे भाई! तुम सीता की रक्षा करना। **'देखई मृग बिलोकि कटि परिकर बांधा। करतल चाप रुचिर सम प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत विपिन निसिचर बहु सीता केरि करहे रखवारी। बुधि विवेक बल समय बिना प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी'**।[90]

तुलसीदास जी ने अपने काव्य चित्रण में नारी को अपनी सुरक्षा हेतु यह भी उपाय व्यक्त करने की कोशिश की है कि नारी को अकेले में किसी के बहकावे में नहीं आना चाहिए, नहीं तो परिणाम दुखदाई हो सकते हैं। प्रसंग यह है कि जब राम मायामृग के वध के लिए चले जाते हैं तो सीता, लक्ष्मण को राम की सुरक्षा हेतु जाने के लिए कहती है लेकिन लक्ष्मण मना कर देता है तो सीता उससे कटु वचन कहने लगती है। अन्ततः लक्ष्मण सीता के चारों ओर लक्ष्मण रेखा खींच कर चल देते हैं तभी रावण कपट वेष में संन्यासी रूप में सीता के समीप आता है और उसे अपनी मीठी-मीठी बातों से बरगलाता है, देखिए—

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहंसि कहा सुनु माता।।

× × ×

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के वेषा।।

जाके डर सुर असुर डेराही।। निसि न नींद दिन्न अन्न न खाही।।

× × ×

विविध विलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही।।[91]

वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में वेश्यावृत्ति में लिप्त परिपक्व उम्र की कुछ महिलाएँ होती हैं। जो हाई प्रोफाइल लोगों से मित्रता रखती हैं। ये औरतें समाज की अन्य स्त्रियों को अपनी बातों में फँसा कर उन्हें वेश्यावृत्ति के मार्ग पर धकेलती हैं और उनका सौदा करवा के स्वयं धन लाभ करती हैं। ऐसी कुलटा औरतें तन-मन-धन से यही चाहती हैं कि किस प्रकार कोई सुन्दर नारी उनके वाक् चातुर्य में फँसे और अपना शील खो बैठे। ऐसी औरतों को मध्यकाल में कुटनी कहा जाता था।

प्रेममार्गी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य पद्मावत में 'देवपाल दूती खण्ड' में ऐसी ही एक कुलटा स्त्री कुमुदिनी का चित्रण करते हैं जो पद्मावती को बरगलाने के लिए जाती है और पद्मावती को रतनसेन का साथ छोड़ देवपाल के पास चलने के लिए कहती है। पद्मावती स्वयं की बुद्धि बल से उसकी असलियत जान कर उसे बहुत पिटवाती है और अपनी दासियों को कह कर उसके नाक कान कटवा कर और काला मुँह करवा कर बाहर निकाल देती है। इस प्रसंग को यहाँ अवतरित करने का हमारा यही उद्देश्य है कि नारी को कभी किसी के बहकाने वाली मीठी-मीठी बातों में नहीं आना चाहिए तथा समय रहते स्थिति को भाँप कर स्वयं की चारित्रिक रक्षा करनी चाहिए। देखिए पद्मावत का यह प्रसंग——

उठत कोंप तरिवर जस तस जोवन तोहि रात।

× × ×

एहि जग जौं पिय करिहि न फेरा। ओहि जग मिलिहि सो दिन-दिन फेरा।[92]

उपर्युक्त प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार पद्मावती अपने स्वविवेक का प्रयोग कर देवपाल द्वारा भेजी गई दूती कुमुदिनी से बचती है, उसी प्रकार वर्तमान में स्त्रियों को पथभ्रष्ट करने वाली महिलाओं और पुरुषों से बचना चाहिए।

सदियों से नारी को कभी भी एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में समाज में स्थान नहीं दिया गया। धर्मशास्त्रों में नारी को बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहने के विधान का उल्लेख है। भारतीय समाज में नारी को परिवार में भूमिकाओं के आधार पर पहचाना जाता है, जैसे—पुत्री, वधू, माता, सास, पत्नी आदि। पुरुष प्रधान समाज में नारी पुरुषों पर भरण-पोषण के लिए आश्रित होती है। ग्रामों में वह खेतों पर भी काम करती है और घर में भी पूरा काम करती है। पितृसत्तात्मक परिवार में स्त्रियाँ पराधीन होती हैं। पुरुषों के अत्याचार सहन करती हैं, कामकाजी महिलाएँ भी पुरुषों के अधीन जीवन यापन करती हैं।

भारतीय नारी के अपने व्यक्तिगत मित्र नहीं होते हैं। उसके परिवार के बाहर उन्हीं लोगों से सम्बन्ध होते हैं जो परिवार के अन्य सदस्य स्थापित करते हैं अगर नारी स्वतन्त्र रूप से मित्र बना लेती है तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अन्य पुरुष से सम्बन्धों को समाज हमेशा शक की दृष्टि से देखता है। पर्दा-प्रथा एक अभिशाप है, दहेज हत्या, दुल्हन-दाह स्त्रियों की स्थिति को स्पष्ट करता है कि उसकी अलग से पहचान तो दूर की बात है वह एक जीव प्राणी के रूप में आत्म रक्षा भी नहीं कर सकती है।

अनुलोम विवाह ने तो नारी की स्थिति वास्तव में निम्न कर दी है। संविधान ने यौन भेद और जाति भेद समाप्त कर दिया है। विवाह, तलाक, दहेज, बलात्कार, विधवा पुनर्विवाह, सम्पत्ति पर अधिकार आदि कानून बन गए हैं परन्तु व्यवहार में नारी इनका लाभ नहीं उठा पा रही है। अनेक तर्क एवं तथ्य देकर सिद्ध किया जाता है कि नारी पुरुष के समान है परन्तु देखा जाए तो स्त्री-पुरुषों में अन्तर बढ़ गये हैं। साक्षरता, रोजगार, शिक्षा और प्रशिक्षण में स्त्री मृत्यु दर, स्वास्थ्य रक्षा, चिकित्सा सुविधाओं का उपयोग आदि में पुरुष की स्थिति अच्छी है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण स्त्रियों का पिछड़ापन समाप्त नहीं हो पा रहा है। इस क्षेत्र में बहुत सुधार तथा प्रयास की आवश्यकता है।

स्त्रियों की दयनीय प्रस्थिति को धनी, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित, ग्रामीण, नगरीय सन्दर्भ में समझना होगा। लेओन ट्राटस्की का कथन है—"पुरुषोचित अहं वाद की कोई सीमा नहीं है। संसार को समझने के लिए हमें इसको नारियों के नेत्रों से देखना होगा।"[93]

नारी सुरक्षा एवं संरक्षा के उपाय वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

स्त्रियों की सुरक्षा के सम्बन्ध में उपयुक्त नीतियों एवं कानूनों व कार्यक्रमों पर विशेष जोर देना होगा। इसके लिए महिलाओं के बारे में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, वैधानिक एवं मानव शास्त्रीय सूचनाएँ एवं तथ्य, प्रमाण एकत्र करने होंगे। शिक्षा, धर्म, संस्कृति एवं प्रचार माध्यमों के द्वारा महिलाओं के सम्बन्ध में पारिवारिक, सामुदायिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा वातावरण तैयार करना होगा जिसके द्वारा सभी आयु वर्ग की स्त्रियों को लिंग भेद और पक्षपात से सुरक्षा प्रदान की जा सके तथा इसके विरुद्ध होने वाली हिंसा को समाप्त किया जा सके। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को रोकने के लिए न केवल ठोस तथ्य निर्धारित करने होंगे बल्कि उनको प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार के संगठनात्मक प्रयास करने होंगे। उनमें आत्म-विश्वास तथा आत्म-निर्भरता पैदा करनी होगी। पुरुष वर्ग को उनकी रक्षा करने के लिए तैयार रहना होगा।

नारी की सुरक्षा एवं संरक्षा के लिए समय-समय पर विचार गोष्ठियों, कार्यशालाओं, समाज सुधारकों आदि ने अनेक सुझाव दिए हैं। इस क्षेत्र में अनेक संगठन भी कार्य कर रहे हैं। महिलाओं की सुरक्षा के विषय में जो सुझाव हो सकते हैं एवं जो कार्य किए जाने चाहिए वे निम्न हैं।

सोच में परिवर्तन

महिलाओं की सुरक्षा के लिए स्त्री के माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, पति-देवर-जेठ से लेकर समाज के सभी पुरुषों के विचारों, मान्यताओं, मूल्यों आदि में परिवर्तन लाना होगा। कन्या के गर्भ में आने से लेकर जीवन पर्यन्त तक उसे सुरक्षा तभी प्रदान की जा सकती है। सभी के सोच में परिवर्तन लाकर पुत्र पुत्री को समानता प्रदान की जाए। माता-पिता विवाह के बाद पुत्री की कोई जिम्मेदारी उठाना समाज के विरुद्ध समझते हैं। समाज वाले भी निन्दा और आलोचना करते हैं अगर विवाद के बाद पुत्री माता-पिता के घर पर रहती है। ससुराल के वधू या अत्याचार से पीड़ित होने पर माता-पिता उसे पूर्ण संरक्षण प्रदान नहीं करते हैं। महिलाओं की सुरक्षा के लिए इस रूढ़िवादी परम्परा को बदलना होगा कि कन्या तो पराया धन है। उसे पिता के घर-परिवार में उतना ही अधिकार प्रदान होना चाहिए जितना कि उसके भाई को है।

आत्म–विश्वास बढ़ाना होगा एवं शोषण के विरुद्ध सशक्त बनाना

महिलाओं की सुरक्षा हेतु उन्हें ये बताना होगा कि वे अबला नहीं हैं। वे सभी प्रकार से पुरुषों के समान हैं वे स्वयं पति के सहारे के बिना अपना और अपने बच्चों का निर्वाह कर सकती हैं तथा जीविकोपार्जन कर सकती हैं। उन्हें किसी सहारे की आवश्यकता नहीं है। वे अपनी और बच्चों की देखभाल कर सकती हैं। उनके विरुद्ध की जाने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा एवं शोषण का उन्हें विरोध करना चाहिए। स्त्रियों के शोषण का उनकी सन्तानों पर भी नकारात्मक असर पड़ता है। नारी में छिपे गुणों एवं क्षमता को पहचानने के लिए उन्हें जागरूक करना होगा। उनके विरुद्ध हिंसा को रोका जा सकता है। उन्हें अपनी क्षमता के प्रति जागरूक करना होगा कि वे सम्पत्ति की लक्ष्मी हैं, शक्ति में दुर्गा हैं तथा ज्ञान में सरस्वती हैं। नारी को अपनी क्षमताओं को जानना और समझना होगा। तब उसका जीवन शोषण मुक्त हो सकता है। उसे हिंसा और शोषण के सम्मुख आत्म समर्पण नहीं करना चाहिए।

सुरक्षा एवं आश्रय की व्यवस्था

महिला की सुरक्षा के लिए सर्वप्रथम उसे आश्रय की विशेष आवश्यकता पड़ती है। पीड़ित महिला को सबसे अधिक आवश्यकता सहायता, सुरक्षा, सलाह और आश्रय की पड़ती है। नारी के विरुद्ध हिंसा में उसके लिए सुरक्षा, आश्रय एवं सहायता का अभाव होता है। विवाह के बाद माता–पिता भी आश्रय देने से बचते हैं। ऐसी स्थिति में अपना शोषण कराने के अतिरिक्त पीड़ित महिला के पास अन्य कोई विकल्प नहीं होता है। सरकार एवं स्वयंसेवी संगठनों को चाहिए कि वे अधिक–से–अधिक पीड़ित महिलाओं के लिए आवास की सुविधा प्रदान करें। इन आवास सुविधाओं की जानकारी महिलाओं तक प्रचार माध्यमों से पहुंचायें। अभी जो आवास सुविधाएँ उपलब्ध हैं उनकी सभी महिलाओं को जानकारी नहीं है। ये सुविधाएँ आवश्यकतानुसार बहुत कम हैं, इन आवास सुविधाओं में सुरक्षा नियमों का पालन नहीं किया जाता। उनमें सामान्यतया बहुत भीड़ रहती है। ऐसा भी पाया गया है कि इस प्रकार के आश्रय या आवास केन्द्र महिलाओं के यौन शोषण का कारण बने हैं। सरकार और निजी/सार्वजनिक संस्थाओं को, विशेष रूप से उन महिलाओं को आश्रय अवश्य प्रदान करना चाहिए जिनको मार डालने, जीवन को नरकमय बनाने, उठवा कर ले जाने की धमकी दी जाती है। समाज के लोगों को भी इन संगठनों के निर्माण

प्रसार एवं प्रचार में हर सम्भव योगदान करना चाहिए जिससे कि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को कम एवं रोका जा सके।

स्वयंसेवी संगठनों का प्रसार एवं प्रचार करना

ऐसे अनेक स्वयंसेवी संगठन हैं जो पीड़ित महिलाओं को हिंसा और अनेक प्रकार के शोषण से सुरक्षा प्रदान करते हैं। ये संस्थाएँ पीड़ित महिला की समस्या का अध्ययन करती हैं। पीड़ित महिला उसके ससुराल वालों एवं पुलिस व न्यायालय में जाकर सम्बन्धित लोगों से बातचीत करती हैं तथा समस्या का समाधान करने का प्रयास करती है। अकेली पीड़ित महिला की समस्या का समाधान संगठन के द्वारा सरलतापूर्वक होने की सम्भावना अधिक होती है। बजाय इसके कि अकेली महिला अपनी समस्या से जूझे। महिला संगठन के माध्यम से समस्या के विरुद्ध आवाज उठाने का सार्वजनिक, मानवतावादी एवं नैतिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए ऐसे स्वयंसेवी संगठनों को जो पीड़ित महिलाओं की समस्या का समाधान करते हैं, उन्हें सशक्त बनाना चाहिए। उनकी जानकारी सभी महिलाओं तक पहुँचानी चाहिए। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा रोकने के लिए इन स्वयंसेवी संगठनों का जितनी जल्दी हो सके, प्रसार और प्रचार करना चाहिए।

रोजगार ढूँढ़ने एवं बच्चों की देखभाल की सुविधाओं की व्यवस्था

पीड़ित महिला के समक्ष सबसे जटिल समस्या जीविकोपार्जन की होती है और जिनके बच्चे होते हैं उनके लिए बच्चों की देखभाल तथा पालन–पोषण की समस्या भी होती है। उनके पास इन समस्याओं के समाधान के अभाव के कारण अपना और अपने बच्चों का शोषण करवाने एवं हिंसात्मक अत्याचारों को सहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता है। इसके सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों का यह सुझाव है कि पीड़ित महिलाओं के लिए रोजगार ढूँढ़ने तथा बच्चों की देखभाल की सुविधाओं के लिए उपयुक्त एवं कारगर विकल्प उपलब्ध करवाये जाने चाहिए। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा से सुरक्षा तभी की जा सकती है, जब इन्हें रोजगार उपलब्ध करवा कर आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाया जाये। पीड़ित एवं गैर–पीड़ित महिलाओं को जितना अधिक स्वावलम्बी बनाया जायेगा, उनके विरुद्ध हिंसा भी उसी अनुपात में तेजी से घटाई जा सकेगी।[94] पीड़ित, त्याज्य, घर–ससुराल से निकाली गई वधू या विधवाएँ शोषण की

शिकार महिला को तत्काल स्थाई या अस्थाई रूप से वित्तीय सहायता उपलब्ध करानी चाहिए। उन्हें रोजगार दिलवाना चाहिए। पीड़ित महिलाओं के बच्चों के पालन–पोषण, आवास, शिक्षा, भोजन, वस्त्र आदि की सुविधाएँ उपलब्ध करवानी चाहिए। इसके लिए सम्भव हो तो परामर्श केन्द्रों को अनेक स्थानों पर खोलना चाहिए जो ऐसी पीड़ित महिलाओं को तत्काल सहायता एवं सुरक्षा प्रदान कर सकें।

सस्ती एवं न्यून औपचारिक न्यायालयों की व्यवस्था

अत्याचारों और शोषण से पीड़ित महिलाएँ असहाय और निर्धन होती हैं। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का एक कारण यह भी है कि वे अपराध करने वाले के विरुद्ध गरीबी के कारण न्यायालयों में फरियाद नहीं कर पाती हैं। अशिक्षित, पर्दा–प्रथा, समाज के बन्धनों में पली बढ़ी होने के कारण पुरुष प्रधान समाज में अपनी शिकायत लेकर न्याय के लिए न्यायालयों में जाने से घबराती हैं। इसलिए शोषण एवं अत्याचारों से पीड़ित महिलाओं के लिए ऐसे न्यायालय की व्यवस्था होनी चाहिए। जहाँ पर औपचारिकता कम हो तथा अनौपचारिकता पूर्ण वातावरण अधिक हो। इसके साथ साथ महिलाओं के लिए ये न्यायालय सस्ते एवं कम खर्चीले भी होने चाहिए। पीड़ित महिलाओं तथा अन्य महिलाओं कोअपने अधिकारों की माँग एवं पुनर्स्थापन के लिए ऐसे न्यायालयों की व्यवस्था करनी चाहिए जिनमें महिला न्यायाधीश हो। महिलाएँ अपने दुःख महिला न्यायाधीशों के सम्मुख व्यक्त करने में कम संकोच का अनुभव करेंगी। पुरुष न्यायाधीशों की तुलना में महिला न्यायाधीशों से महिलाओं की पीड़ाओं को समझने एवं पक्षपात रहित न्याय की अपेक्षा भी अधिक की जा सकती है। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को रोकने के लिए सस्ती, कम औपचारिक, महिला न्यायाधीशों वाले न्यायालयों की स्थापना एवं व्यवस्था की विशेष आवश्यकता है, जहाँ सामान्य एवं पीड़ित महिलाएँ पीड़ाओं को सुगमता से व्यक्त कर पाएंगी। सम्भव हो तो महिला वकीलों, महिला कर्मचारियों को प्रोत्साहन देकर न्यायालयों का वातावरण सुगम एवं उपयुक्त बनाकर महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एवं शोषण के मामलों सम्बन्धी शिकायतें करने के लिए महिलाओं में आत्म–विश्वास एवं अधिकारों की माँग के लिए उत्साह बढ़ाया जा सकता है।[95]

निःशुल्क कानूनी सहायता

देश में कुछ ऐसे संगठन हैं, जो महिलाओं को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करते हैं। महिलाओं की सुरक्षा के लिए इन संगठनों की जानकारी महिलाओं तक पहुँचाना आवश्यक है। ऐसे संगठनों की संख्या बढ़ानी चाहिए तथा इनका प्रचार करके महिलाओं तक इनकी जानकारी पहुँचानी चाहिए। देश में अधिकतर स्त्रियाँ निर्धन हैं जिनको शोषण से बचाने के लिए ये संगठन पीड़ित महिलाओं का निशुल्क कानूनी सहायता एवं मार्गदर्शन प्रदान करते हैं तथा शोषण हिंसा, अत्याचार आदि से कानूनी सुरक्षा प्रदान करते हैं। ऐसे संगठनों का प्रसार एवं प्रचार पीड़ित स्त्रियों के लिए नितान्त आवश्यक है। महिलाओं को शोषण से सुरक्षा प्रदान करने में ऐसे संगठनों को जितना प्रोत्साहन एवं वित्तीय सहायता दी जाये, उतना ही अच्छा है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल (मध्यकाल) में भी नारी की सुरक्षा को लेकर चिन्तन हुआ। यह चिन्तन आज भी बदस्तूर जारी है। आज सरकार नारी सुरक्षा को लेकर कृत–संकल्प नजर आती है लेकिन आज भी समाज का एक बड़ा भाग पीड़ित महिलाओं को सुरक्षा प्रदान नहीं कर पा रहा है जो शोषण, हिंसा और अत्याचार से ग्रस्त है। समाज की प्रगति, विकास, खुशहाली आदि के लिए आवश्यक है कि महिलाओं के विरुद्ध विभिन्न प्रकार की हिंसाओं को रोका जाना चाहिए, अन्यथा उनके शोषण के साथ–साथ उनसे जुड़े पति, सास, ससुर, पुत्र–पुत्री आदि सभी की सुख शान्ति भी बनी नहीं रह सकती है। महिला के विरुद्ध हिंसा को परिवार, समुदाय, क्षेत्र, प्रान्त, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर उपयुक्त प्रयास करके रोकना होगा। केवल भाषण देने, अधिनियम बनाने, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता है।

नारी सुरक्षा के लिए पुरुषों को आगे आना होगा। रामभक्त कवि तुलसीदास ने राम सीता और लक्ष्मण का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह नारी सुरक्षा के सन्दर्भ में ही है। तुलसीदास जी ने यह चित्रित किया है कि जब तक सीता वन में राम और लक्ष्मण के साथ रही वे सुरक्षा की दृष्टि से राम और लक्ष्मण के बीच में ही रहती थीं। देखिए गीतावली में अयोध्याकाण्ड का यह प्रसंग—

सखि! नीकै कै निरखि, कोऊ सुठि सुन्दर बटोही।

× × ×

मनहुं बारिद-बिधु बीच ललित अति,

राजति तड़ित निज सहज बिछोही।।[96]

तुलसीदास जी ने एक ही नहीं अनेक स्थानों पर यही चित्रण किया है कि सीता, राम और लक्ष्मण के बीच में ही स्थित रहती हैं। यही तुलसीदास जी का नारी सुरक्षा चिन्तन है। देखिए यह प्रसंग—

सखि! सरद-बिमल बिधु बदनि बधूटी।

× × ×

लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी।[97]

उपर्युक्त प्रसंगों से सिद्ध होता है कि नारी सुरक्षा का चिन्तन भक्तिकाल से ही कवियों के चित्रण का विषय रहा है। प्राचीनकाल से ही स्त्री को धन माना जाता रहा है। अत: धन की सुरक्षा सर्वोपरि मानी गई तथा वर्तमान में भी नारी सुरक्षा सर्वोपरि होनी चाहिए तथा स्त्री सुरक्षा में पुरुषों की प्रमुख भूमिका होनी चाहिए तभी स्त्री शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दृष्टि से विकास की ओर अग्रसर हो पाएगी।

नारी देह सुरक्षा चाहती है। उसका प्रणय और दाम्पत्य, मातृत्व में अवसान प्राप्त करता है। सौन्दर्य, स्वास्थ्य और सम्पत्ति के संरक्षण में वह पुरुषों की दुनिया से सदैव भिन्न रही है। उसके जैण्डर की दुनिया का अतीत, वर्तमान और भविष्य सभ्यता और संस्कृतियों के निर्माण और ध्वंस की कहानी लगती है और शायद भविष्य में भी वह ऐसी ही रहेगी। उसके यौन साहचर्य का मनोविज्ञान, पुरुष की पशु-क्रीड़ा के मानव विवेक के साथ जोड़ कर उनके विवाह, सन्तान और परिवार की संरचना खड़ी करता है, जो सभी सभ्य समाजों और राज्यों का आधार स्तम्भ कही जा सकती है। अत: स्वाभाविक है कि किसी भी समाज का समग्र कल्याण कुल मिलाकर उसके महिला हितों के साथ अपने आप जुड़ जाता है। ये महिला हित पुरुष जीवन के लिए विरोधाभासी लगते हुए भी उसे एक परिपूर्णता देते हैं।[98]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि नारी सुरक्षा की जिम्मेदारी पुरुष वर्ग के साथ–साथ सम्पूर्ण समाज की है। समाज की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए स्त्री वर्ग का सुरक्षित खुले में सांस लेना जरूरी है अगर ऐसा नहीं हुआ तो वर्तमान समाज पतन की ओर अग्रसर हो जायेगा।

ज्ञान एवं भक्ति से नारी की श्रेष्ठता सम्भव

भक्ति काल में इस बात पर बराबर चिन्तन हुआ है कि ज्ञान एवं भक्ति से नारी की श्रेष्ठता सम्भव है। इसका स्पष्ट प्रमाण तुलसीदास जी रामचरित मानस में देते हैं। प्रसंग है सीता और राक्षसी त्रिजटा संवाद का, त्रिजटा नामक राक्षसी थी तो रावण की अनुचरी पर राम का स्वरूप वह जानती थी। उसे यह ज्ञान प्राप्त हो गया था कि राम ही विष्णु के अवतार हैं और रावण का नाश करने में सक्षम हैं। इसलिए वह रावण की कैद में स्थित सीता को भाँति भाँति से ढांढस बंधाती थी। देखिए—

त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम चरन रति निपुन विवेका।।

× × ×

तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनक सुता के चरनन्हिं परीं।।[99]

इस प्रकरण से पता चलता है कि जिस त्रिजटा जैसी स्त्री ने राक्षस जैसे कुल में जन्म लिया हो तथा जो जन्म से ही घृणित कार्यों में व्यस्त रही हो उसे जब भक्ति और ज्ञान हो जाता है तो वह निश्चित ही श्रेष्ठ बन जाती है। यह सोचने योग्य बात है कि इतनी राक्षसियों में से सिर्फ त्रिजटा ही सीता के पक्ष में थी तथा उसका हित सोचती थी। यह सब ज्ञान और भक्ति से ही सम्भव है।

दूसरा प्रसंग अहिल्या उद्धार से सम्बन्धित है। अहिल्या पति के शाप से लम्बे समय तक पाषाण बनी हुई प्रभु राम की भक्ति करती रही और उनके चरण स्पर्श की प्रतीक्षा करती रही। जब राम का अहिल्या रूपी पाषाण से चरण स्पर्श हुआ तो वह भी मोक्ष की अधिकारिणी बन गई। देखिए—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होई कर जोरि रही।।

× × ×

एहि भाँति सिधारी गौतम नारी, बार-बार हरि चरन परी।

जो अति मन भावा सो बरू पावा, गै पतिलोक अनंद भरी।।[100]

तुलसीदास जी ने ज्ञान एवं भक्ति के माध्यम से बालि की पत्नी तारा की श्रेष्ठता सिद्ध की है। तारा का नाम पंच-कन्याओं में आता है। पंच-कन्याएँ वे हैं जिन्हें ज्ञान एवं भक्ति के माध्यम से ईश्वर साक्षात्कार हुआ था तथा वे विवाहित होते हुए भी कन्या की उपाधि प्राप्त किए हुए थीं। पंच-कन्या में वे पाँच कन्याएँ हैं जिनका भारत के हिन्दू सम्प्रदाय और धर्म ग्रन्थों में विशिष्ट स्थान है। पुराणों के अनुसार ये पाँच कन्याएँ विवाहित होते हुए भी पूजा के योग्य मानी गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती, मंदोदरी तथा

स्मरेन्नित्यं महापातक नाशकम।।

अहिल्या, ब्रह्मा की मानस पुत्री और गौतम ऋषि की पत्नी थी।

द्रौपदी का जन्म महाराज द्रुपद के यहाँ यज्ञ-कुण्ड से हुआ था और यह पाँच पाण्डवों की पत्नी थी।

तारा रामायण के अनुसार सुग्रीव के भाई बालि की पत्नी थी व सुषेण की पुत्री थी।

मंदोदरी के पिता का नाम मयासुर तथा माता का नाम रम्भा नामक अप्सरा थी, वह रावण की पत्नी थी।

इन पंच कन्याओं में से सिर्फ तारा, अहिल्या और मंदोदरी ही हमारे अध्ययन के क्षेत्र में आती हैं क्योंकि तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में इन तीनों का ही चित्रण किया है। बालि की पत्नी तारा ने अपने अनुभूत ज्ञान से बालि को राम से युद्ध करने से रोका परन्तु अहंकारी बालि नहीं माना और उसे राम के हाथों मरना पड़ा। यह प्रसंग देखिए जिसमें तारा का ज्ञान झलकता है—

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा।।

सुनुपति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सीवा।।

कौसलेस सुत लछमन रामा। कालहुं जीति सकहिं संग्रामा।।[101]

बालि पत्नी तारा को शायद इस बात का बोध हो गया था कि सुग्रीव को राम का संरक्षण हासिल है, क्योंकि अकेले तो सुग्रीव बालि को दोबारा ललकारने की हिम्मत कदापि नहीं कर सकता। अत: किसी अनहोनी के भय से तारा ने बालि को सावधान करने की चेष्टा की। उसने तो यहाँ तक कहा कि सुग्रीव को किष्किन्धा का राजकुमार घोषित कर बालि उसके साथ सन्धि कर ले। किन्तु बालि ने इस शक से कि तारा सुग्रीव का अनुचित पक्ष ले रही है, उसे दुत्कार दिया। किन्तु उसने तारा को यह आश्वासन दिया कि वह सुग्रीव का वध नहीं करेगा और सिर्फ उसे अच्छा सबक सिखाएगा।

राम से परस्पर युद्ध में बालि मारा गया। तारा को अनेकों प्रकार से विलाप करते देख राम ने उसे अपनी भक्ति और ज्ञान प्रदान किया, देखिए

तारा विकल देखिए रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया।।
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रहित अति अधम सरीरा।।
प्रकट सोतनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।।
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर माँगी।।[102]

राम के द्वारा दिए गए ज्ञान और भक्ति के फलस्वरूप उसने अंगद का राज्याभिषेक करा कर सुग्रीव को ही राजा मनोनीत करवाया। अपने पुत्र अंगद पर कोई आँच न आने पाये इस कारण उसने सुग्रीव को अपना जीवन साथी अंगीकार कर लिया तथा भक्ति और ज्ञान की प्राप्ति से पंच कन्याओं में स्थान पाया।

रामचरित मानस में एक चरित्र तो कैकेयी का है, जिसने अपने पुत्र समान राम को बनवास दिलाया, वहीं ज्ञान और भक्ति में सराबोर दूसरा चरित्र लक्ष्मण की माता सुमित्रा का है जिसने राम की सेवा सुश्रूषा के लिए अपने पुत्र लक्ष्मण को वन में जाने की आज्ञा दी। निश्चित ही सुमित्रा की राम के प्रति वात्सल्य भावना और लक्ष्मण को उनके साथ वन में भेजने की अनुमति, श्रेष्ठ सिद्ध करती है। देखिए यह प्रकरण—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।
× × ×
बागुर बिषम तोराई मनहुं भाग मृगु भाग बस।।[103]

उपर्युक्त प्रकरण से यह सिद्ध होता है कि तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में ज्ञान एवं भक्ति से नारी की श्रेष्ठता पर चिन्तन किया है उनका यह चिन्तन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आधुनिक नारी के लिए प्रासंगिक है।

यह सर्वविदित है कि भ्रमरगीत में गोपियाँ अपने कृष्ण प्रेम और कृष्ण द्वारा प्रदत्त ज्ञान से उद्धव के योग मार्ग का खण्डन करती हैं। गोपियाँ अशिक्षित हैं, ग्रामीण बालाएँ हैं, लेकिन कृष्ण प्रेम और भक्ति के प्रभाव से उद्धव के योग दर्शन पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करती हैं। सूरदास ने भ्रमरगीत में गोपियों के तर्कों को उद्धव के चिन्तन से श्रेष्ठ चित्रित किया है। निश्चित ही ज्ञान एवं भक्ति में गोपियाँ उद्धव से श्रेष्ठ सिद्ध हो गई हैं। देखिए—

नयनन नन्द नंदन ध्यान।

तहाँ लै उपदेस दीजै जहाँ निरगुन ज्ञान।

× × ×

सूर ऐसे रूप बिनु कोउ कहा रक्षक आन[104]

कबीरदास जी ने भी मालिन जाति की स्त्री का रूपक बाँधकर ज्ञान और भक्ति की शिक्षा दी है। इस शिक्षा द्वारा नारी जाति ज्ञान और भक्ति के माध्यम से अपना कल्याण कर अपने आपको आध्यात्मिक क्षेत्र में श्रेष्ठ सिद्ध कर सकती है, देखिए—

भूली मालिनी! हे गोविन्द जागतौ जगदेव,

तू करै किसकी सेव।

× × ×

एक न भूला दास कबीरा, जाकैं राम अधारा।।[105]

कबीरदास जी नारी वर्ग को ज्ञान और भक्ति का संदेश देते हुए कहते हैं कि हे मालिन (जाति की) स्त्री! तू भ्रम में पड़ी हुई है। तू तनिक यह तो विचार कर कि पत्र पुष्प तोड़ इससे किस प्रभु की सेवा करेगी? तू व्यर्थ ही फल पत्ते तोड़ रही है, क्योंकि इनमें से प्रत्येक जीवन जीवन है। किन्तु तू जिस इष्ट मूर्ति के लिए इनका नाश कर रही है, वह निर्जीव प्रस्तर है।

कबीरदास जी ने उपर्युक्त पद में मूर्ति–पूजा का तीव्र विरोध किया है। वे मूलत: आडम्बर विरोधी थे और आडम्बरों से बचने की शिक्षा ही वे माली जाति की स्त्री के

रूपक से समस्त नारी वर्ग को दी है जिससे वे अपने आप में ज्ञान और भक्ति के गुणों को प्रकाशित कर संसार में श्रेष्ठता सिद्ध कर सकें।

मलिक मुहम्मद जायसी ने भक्ति एवं ज्ञान के माध्यम से नारी की श्रेष्ठता की सम्भाव्य स्थिति को व्यक्त किया है। प्रसंग यह है कि पद्मावती, राजा रतनसेन के विरह में है, उस स्थिति में पद्मावती की धाय (माता समान स्त्री) उसे ज्ञान प्रदान करते हुए सामाजिक तौर-तरीके सिखाती है, देखिए—

पदुमावति तूं सुबुधि सयानी। तोहि सरि समुद न पूजै रानी।।
नदी समाहि समुंद महं आई। समुंद डोलि कहुं कहाँ समाई।।
अबहीं कंवल करी हिय तोरा। आइहि भँवर जो तोकह जोरा।।
जोबन जोरे मतंग गज अहै। गहु गिआन जिमि आंकुस रहै।।
अबहि बारि तू पेम न खुला। का जानसि कस होई दुहेल।।
गगन दिस्टि करु जाई तराहीं। सुरूज देखि कर आवै नाही।।
जब लगि पीउ मिलै, तोहि साधु पेम कै पीर।
जैसे सीप सेवाति कंह तपै समुंद मंझ नीर।।[106]

सूफी कवियों के प्रेम में प्रेम की पीर का वर्णन अधिक मात्रा में ही मिलता है। जायसी ने प्रेम भक्ति और ज्ञान के माध्यम से, पद्मावती और उसकी धाय का प्रसंग चित्रित कर, नारी को श्रेष्ठता प्राप्त करने की शिक्षा दी है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल के कवियों के काव्य में जो ज्ञान, भक्ति और प्रेम का चित्रण मिलता है वह नारी वर्ग को आध्यात्मिक एवं सांसारिक क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त करने की शिक्षा देता है।

सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध चिन्तन

मध्यकाल के कवियों ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध न केवल चिन्तन किया है बल्कि उन्हें समाप्त करने का संदेश भी पाठकगण को दिया है। भक्त कवि तुलसीदास के पास मानव चिन्ता से बढ़ कर कोई अन्य चिन्ता नहीं थी। वाल्मीकि, वेदव्यास के बाद उनकी सामाजिक चिन्तन दृष्टि सर्वोपरि है। मानव के भीतरी पक्षों पर उनसे अधिक चिन्तित मध्ययुगीन कोई दूसरा सन्त नहीं दिखाई पड़ता। रामकथा में उन्होंने ना सिर्फ आने वाले

सुखद समाज की कल्पना की बल्कि उन्होंने आदर्श जीवन जीने का मार्ग भी सुझाया है। उन्होंने आचरण की गंगा को करुणा, सत्य, प्रेम और मनुष्यता की धाराओं में वर्गीकृत किया, जिनमें अवगाहन कर कोई भी व्यक्ति अपने आचरण को गंगा की तरह पवित्र कर सकता है। संघर्ष करके बनाई गई पहचान अनूठी होती है। विपरीत परिस्थितियों में कष्ट सहना ही तप है। तुलसी का जीवन भी विपरीत स्थितियों व कष्टों में तपकर कुन्दन बना। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों का सामना किया, तभी कर्म को सकारात्मक और भाग्य को नकारात्मक मानते हुए उन्होंने पाखण्ड, असत्य और ढोंग में डूबे समाज को जाग्रत किया। यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने तुलसीकृत रामचरित मानस को गृहस्थ जीवन का महाकाव्य कहा तो महात्मा गाँधी ने तुलसी को मानव संस्कृति का शिखर मनीषी कहा था।[107]

तुलसी का कार्य केवल रामकथा को लोकभाषा में कहना नहीं था, बल्कि उनकी चिन्ता थी कि राम के आदर्श जनमानस तक पहुँचे। लोगों में त्याग, करुणा, दया और वीरता क भाव पैदा हों। वास्तव में तुलसी सद्‌गुणों को प्रमुखता देते हैं। उनके अनुसार— "अपने गुणों के कारण चंदन देवताओं के शीश पर चढ़ाया जाता है, वह संसार को भी प्रिय है। और अपने दुर्गुणों के कारण कुल्हाड़ी के मुख को अग्नि में जलाकर बड़े हथौड़े से पीटा जाता है।" इसी प्रकार तुलसी के शब्द, उनकी चौपाइयां समाज में व्यावहारिक सूक्तियाँ बन गईं। उनकी कृति का विश्व ने मंगलगान किया। उन्होंने न सिर्फ लोक हृदय के पारखी बनकर जीवन में छिपे मर्म को खोल, बल्कि उत्तरकाण्ड के मध्यकालीन भारत का यथार्थ वर्णन भी किया। विषम समस्याओं का समाधान करने में सार्वकालिक और सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना की।

तुलसीदास जी ने दलित नारी शबरी पर राम की कृपा का चित्रण किया है। इस प्रकार से पता चलता है कि मध्यकाल में छुआछूत की कुरीति चरमोत्कर्ष पर थी, लेकिन रामचरित मानस में तुलसी द्वारा छुआछूत के विरुद्ध शबरी का प्रकरण मिलता है, गीतावली में भी बड़े सुन्दर ढंग से छुआछूत की कुरीति के विरुद्ध चित्रण है, देखिए—

प्रेम पट पांवडे देत सुअरघ बिलोचन बारि।
आश्रम लै दिये आसन पंकज पांय पखारि।।

× × ×

फल चारिहु फल चारि दहि, पर चारि फल सबरी दये।।[108]

मध्यकाल में छुआछूत और नारी विरोधी भावना चरमोत्कर्ष पर थी लेकिन तुलसीदास ने उसी दृढ़ता से राजा राम को एक दलित नारी शबरी के झूठे फल खाते हुए दिखा कर सामाजिक समन्वय की स्थापना की है। और भी देखिए—

सुमन वरषि, हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुआ सानुज मांगि मांगि प्रभु खात।।
प्रभु खात मांगत देति सबरी, राम भोगी जाग के।
पुलकत प्रसंगत सिद्ध सिव सनकादि भाजन भाग के।।
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के।
सुनि समुझि तुलसी, जानु रामहि बस अमल अनुराग के।।[109]

रामचरित मानस में भी तुलसी ने शबरी के प्रति राम के श्रेष्ठ भाव चित्रित किए हैं, देखिए—

जाति हीन अध जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि।।[110]

मध्यकाल में युद्ध होना आम बात थी और युद्ध में वीरगति पाये हुए वीरों की विधवाओं को ताउम्र ही अकेले पहाड़ जैसा जीवन काटना पड़ता था। उस समय विधवा विवाह सामाजिक रूप से निषेध था, परन्तु तुलसीदास जी ने रामचरित मानस के किष्किन्धा काण्ड में बालि की विधवा पत्नी तारा का विवाह सुग्रीव तथा लंकाकाण्ड में रावण की विधवा पत्नी मंदोदरी का विवाह विभीषण से चित्रित किया है। हालांकि यह चित्रण बहुत ही संक्षिप्त है, लेकिन जितना भी है, विधवा विवाह के समर्थन में ही है। जिस मध्यकाल में यह तुलसीदास की ही हिम्मत का प्रमाण है कि उन्होंने यह चित्रण किया। प्रसंग यह है कि सुग्रीव तारा से विवाह के बाद श्रीराम जी के बताये सीता खोजने सम्बन्धी कार्य को भूल कर तारा के मधुर बंधन में ही लिप्त हो जाता है तो राम को क्रोध आ जाता है और कहते हैं—

कतहुं रहऊ जौ जीवति होई। तात जतन करि आनऊं सोई।
सुग्रीवहुं सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोसपुर नारी।।[111]

तुलसी ने जिस राम राज्य का उल्लेख किया है उसमें किसी को भी कोई परेशानी नहीं थी——

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहू नहीं व्यापा।।
सब नर करहि परसपर प्रीति। चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।[112]

तुलसीदास जी ने मध्यकाल में प्रचलित बहुपत्नी प्रथा की कुरीति का स्पष्ट खण्डन किया है। राम के राज्य में समस्त पुरुषों के एक ही पत्नी थी। स्वयं राम भी एक पत्नी व्रती थे——

सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर नारी।।
एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।[113]

तुलसीदास जी ने पराई स्त्री पर बुरी नजर डालने की कुरीति तथा पराई निन्दा का भी खण्डन करते हैं, देखिए——

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद।
ते नर पांवर पापमय देह धरे मनुजाद।।[114]

तुलसी ने अपनी पत्नी के अलावा दूसरी स्त्री से सम्बन्ध बनाने को अच्छा नहीं माना है और इसका विरोध किया है, देखिए——

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहि चेरि निबेरि गती।।
सुत मानहि मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं।।[115]

तुलसीदास जी ने स्त्रियों को आडम्बर के लिए भी फटकारा और उन्हें भक्ति के बिना कोमलता रहित कहा——

अबला कच भूषण भूरि छुधा। धनहीन दुःखी ममता बहुधा।।
सुख चाहहि मूढ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता।।[116]

कृष्ण भक्त कवि सूरदास जी ने घूँघट प्रथा की कुरीति का खण्डन भ्रमरगीत में गोपियों से करवाया है, देखिए——

हरि मुख निरखि निमेख बिसारे।

ता दिन ते मनो भए दिगम्बर इन नैनन के तारे।।

× × ×

करैं कहा ये कह्यो न मानत लोचन हठी हमारे।।[117]

इस प्रसंग में सूरदास ने गोपियों के माध्यम से परदा प्रथा और घूँघट प्रथा का मुखर विरोध किया है।

सूरदास की गोपियों ने मध्यकाल में प्रचलित सपत्नी प्रथा (सौत प्रथा) का खण्डन भी किया है। सूरदास ने व्यंग्य के माध्यम से गोपियों के द्वारा सौत प्रथा की भर्त्सना करवाई है। प्रसंग यह है कि कृष्ण मथुरा जा कर कुबजा नामक दासी से विवाह कर लेते हैं और गोपियों को भुला देते हैं। गोपियों का कृष्ण पर एकाधिकार है ऐसी स्थिति में कुब्जा उन्हें सौत के समान लगती है, देखिए—

ऊधो! जाके माथे भाग।

कुबजां को पटरानी कीन्ही, हमहि देत वैराग।।

× × ×

सूरदास प्रभु ऊख छांडि के चतुर चिचोरत आग।।[118]

इस पद में सूरदास की गोपियाँ कृष्ण और कुबजा के पारस्परिक प्रेम सम्बन्धों का उपहास करती हैं। इस पद में सूरदास द्वारा मध्यकाल में प्रचलित 'सौत' कुरीति का खण्डन है तथा मार्मिक व्यंग्य भी है जिससे गोपियों के हृदय में विषाद मिश्रित है।

सन्त कबीरदास जी ने पराई स्त्री पर बुरी नजर डालने की सामाजिक कुरीति पर भी लिखा है और यह शिक्षा दी है कि पराई नारी पर नजर डालने से मनुष्य नर्कगामी होता है—

नारि पराई आपणी भुगत्या नरकहिं जाइ।

आगि सागि सबरौ कहै ,तामै हाथ न बाहि।।[119]

× × ×

कांमी लज्यां नां करैं मन मांहै अहिलाद।

नींद न मांगै सांथरा भूख न मांगै स्वाद।।[120]

कबीरदास जी ने कदम-कदम पर पुरुष को नारी से दूर रहने का जो उपदेश दिया है, उसमें यही भावना निहित है कि समाज में व्यभिचार न फैले—

कबीर कहता जात हौं चैते नहिं गँवार।
वैरागी गिरही कहा कामी वार न पार।।[121]

मध्यकाल में राजा-महाराजा ऐसी कुलटा स्त्रियों को रखते थे जो अन्य सुन्दर स्त्रियों को अपने जाल में फँसा कर उनको वासना पूर्ति का साधन बनाती थीं। ये कुलटा स्त्रियाँ उम्र में परिपक्व होती थीं तथा गिरे हुए चरित्र की होती थीं। ये स्त्रियाँ अपनी वाक् पटुता, षड्यन्त्र एवं येन-केन-प्रकारेण तरीकों से सुन्दर स्त्रियों को अपने आश्रयदाता राजाओं की कुत्सित वासना का शिकार बनवाने में माहिर होती थीं। ऐसी कुलटा 'दूती' स्त्रियों को लगभग सभी राजा-महाराजा अपने आश्रय में रखते थे और इनके माध्यम से अपने हरम और रनिवासों में सुन्दर सुन्दर स्त्रियों को वासना पूर्ति हेतु मंगवाते थे। मध्यकाल (भक्तिकाल) में यह कुरीति विशेष रूप से राजघरानों में प्रचलित थी।

सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने इस कुरीति का पद्मावत में खण्डन किया है। प्रसंग यह है कि राजा देवपाल पद्मावती की रूप प्रशंसा को सुनकर काम वासना की आग में जलने लगता है। वह येन-केन-प्रकारेण पद्मावती को पाना चाहता है। वह इसी क्रम में कुमुदिनी नाम की दूती को पद्मावती को पथभ्रष्ट करने के लिए भेजता है। दूती कुमिदिनी पद्मावती को चिकनी चुपड़ी बातें कर देवपाल के प्रति आकर्षित होने के लिए कहती है लेकिन पद्मावती अपने ज्ञान और अपने पति के प्रेम की अधिकता के कारण उसका प्रस्ताव अस्वीकृत कर देती है और उसकी अपनी दासियों से कह कर खूब पिटाई करवा कर महल से निकाल देती है, देखिए—

सुनि देवपाल जो कुंभलनेरी। कंवल जो नैन भँवर घनि फेरी।।
मोरे पिया क सतुरू देवपालू। सोकत पूज सिंघ सरि भालू।।
दोख भरा तन चेतनि कैसा। तेहि कं संदेस सुनावहि वेसा।।
सोन नदी अस मोर पिय गरूवा। पाहन होई परै जो हरूवा।।
जेहि ऊपर अस गरूवा। पाहन होई परै जो हरूवा।।
जेहि ऊपर अस गरूवा पीऊ। सो कस डोल डोलाएं जीऊ।।

फेरत नैन चेरि सौ छूटी। भै कूटनि कुटनी तसि कूटी।।

कान नाक काटे मसि लाई। बहु रिसि काढि दुवार नंघाई।

मुहमद गरूए जो विधि गढे का कोई तिन्ह फूँक।

जिन्हके भार जगत थिर उडहिं न पवन के भूंक।।[122]

मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं कि जिसको ईश्वर ने चरित्र में श्रेष्ठ बनाया है उन्हें अपने चरित्र से कोई विचलित नहीं कर सकता, जिसके भार के कारण संसार भी स्थिर है, वे साधारण पवन के झोंके से नहीं उड़ सकते। अर्थात् श्रेष्ठ चरित्र की नारी अपने धर्म पथ से साधारण लालच से नहीं डिग सकती है। गुरु रैदास ने उस जमाने में विधवा मीरा को दीक्षा दी। जब भारत भर में खास कर राजस्थान में विधवा को पति की लाश के साथ जिंदा जला दिया जाता था। इस सामाजिक कुरीति को ब्राह्मण धर्म का पूर्ण समर्थन हासिल था तथा उस समय विधवा हो जाना सबसे बड़ा गुनाह था, चाहे इसमें पत्नी का कोई दोष न हो। गुरु रैदास ने उन अटकलों को भी खारिज किया जिनमें यह अंदाजा था कि विधवा होने के पश्चात् महिला पथभ्रष्ट हो जाती है।[123]

कृष्ण भक्ति में रँगी हुई मीरा को तो अपनी बदनामी भी अच्छी लगती है क्योंकि वह तत्कालीन समाज से विपरीत होकर कृष्ण भक्ति करती है। उसे समाज की कोई परवाह नहीं है वह समाज के मुँह पर थप्पड़ मारते हुए कहती है—

राणा जी म्हाने या बदनामी लागे मीठी।

× × ×

मीरां रो प्रभु गिरधर नागर दुरजन जलो जाग अंगीठी।।[124]

इस पद में मीरा ने अपने जीवन में प्राप्त होने वाली सामाजिक बुराई और बदनामी का स्पष्ट चित्रण किया है। उसे कृष्ण भक्ति के कारण सामाजिक रूप से राजपरिवार में बदनामी सहनी पड़ी, दुर्जनों के कड़वे वचन सुनने पड़े, उन सबका स्पष्ट उल्लेख यहाँ किया गया है। भगवत भक्ति के कारण अपने संरक्षण का भाव भी व्यक्त किया गया है। ईश्वर स्वयं भगवान् या ईष्टदेव कृष्ण जब संरक्षक हैं तब संसार के दुर्जन क्या बिगाड़ सकते हैं? इसी मानसिक धारणा को मीरा ने यहाँ चित्रित किया है।

मीराबाई सामाजिक कुरीतियों के लिए संसार को दोषी मानती है। वे मानती हैं कि श्याम के सामीप्य के बिना यह संसार बुद्धि को नष्ट कर देता है––

स्याम बिन दुःख पावां सजणी।

कुण ह्यां धीर बंधावा।

× × ×

मीरां ने प्रभु थारी सरणा, जीव परम पद पास्यां।।[125]

मीराबाई के काव्य में निम्न जाति के प्रति छुआछूत की भावना का भी तीव्र खण्डन मिलता है। मीराबाई राम और शबरी के प्रसंग को अपना विषय बनाकर दलितों के प्रति कोमल भावों को अभिव्यक्त करती है। मध्यकाल में निम्न जाति के प्रति भेद-भाव सामाजिक कुरीति थी, मीरा इसके पूर्ण विरोध में अपने विचार व्यक्त करती है, देखिए––

अच्छे मीठे चाख चाख बेर लाई भीलणी।

ऐसी कहा अचारवती, रूप नहीं एक रति।

× × ×

पतित पावन प्रभु गोकुल अहीरणी।।[126]

मीराबाई मानती है कि काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि बुराइयाँ ही सामाजिक कुरीतियों के मूल में हैं, अत: इन सभी को त्याग कर श्याम के रंग में रंग जाना चाहिए––

राम नाम रस पीजै मनुआं, राम नाम रस पीजै।

× × ×

मीरां के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजै।[127]

मीरा धार्मिक आडम्बर को सामाजिक कुरीतियों के अन्तर्गत मानती है, क्योंकि धर्म और समाज का रिश्ता बड़ा गहरा है। देखिए मीरा का ये पद––

भज मण चरण कंवल अवणासी।

जेताइ दीसा घरण गगन मां तेताई उठ जासी।

× × ×

मीरां ने प्रभु गिरधर नागर, काट्यां म्हारो गांसी।।[128]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भक्तिकाल (मध्यकाल) के कवियों ने सामाजिक कुरीतियों, बुराइयों, आडम्बर तथा धर्म के नाम पर भ्रम फैलाने का खण्डन किया है। उन्होंने अपने काव्यों में स्पष्ट चिन्तन किया है कि भक्ति मन और हृदय का विषय है, कुरीतियों एवं आडम्बरों का इसमें कोई स्थान नहीं है।

सन्दर्भ

1. पं. देवीरत्न अवस्थी — तुलसीदास का नारी सौंदर्य (निबन्ध), कल्याण 22वें वर्ष का विशेषांक, पृ. 203
2. तुलसीदास — रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड, पृ. 298
3. वही, पृ. 298
4. वही, अरण्यकाण्ड, पृ. 572
5. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कामी नर को अंग, कबीर ग्रन्थावली सटीक, पृ. 173
6. तुलसीदास — रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड, पृ. 646
7. सम्पा. राघव रघु — तुलसी दोहावली, तुलसीदास, पृ. 47
8. वही, पृ. 49
9. वही, पृ. 49
10. वही, पृ. 50
11. वही, पृ. 51
12. वही, पृ. 51
13. तुलसीदास — रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड, पृ. 647
14. वही, अरण्य काण्ड, पृ. 536
15. वही, किष्किन्धा काण्ड, पृ. 594
16. वही, किष्किन्धा काण्ड, पृ. 596
17. सम्पा. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — विरह कौ अंग, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 92
18. वही, साध महिमा कौ अंग, पृ. 209
19. वही, सुन्दरि कौ अंग, पृ. 270
20. दीपक — भारत की अमृत सन्देश पत्रिका
21. वही
22. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रन्थावली, कामी नर कौ अंग, पृ. 174
23. वही, पृ. 175

24. वही

25. वही

26. वही, पृ. 176

27. वही, पृ. 176

28. वही, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग, पृ. 122

29. वही, पृ. 123

30. वही, निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग, पृ. 126

31. वही

32. सम्पा. डॉ. श्रीनिवास शर्मा — जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, नागमती सुआ खण्ड, पृ. 137

33. वही, नागमती सुआ खण्ड, पृ. 138

34. वही, पृ. 140

35. वही, पृ. 141

36. वही, जन्म खण्ड, पृ. 108

37. वही, पृ. 110

38. वही, पृ. 113

39. वही, पृ. 113

40. सम्पा. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा — सूरसागर सटीक, पृ. 33, पद 32

41. वही, पृ. 34, पद 34

42. वही, पृ. 36, पद 37

43. वही, पृ. 40, पद 44

44. धर्मवीर चंदेल — भारत में महिला सशक्तिकरण : दशा और दिशा Google→internet

45. सम्पा. डॉ. श्रीनिवास शर्मा — जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, जन्म खण्ड, पृ. 107

46. वही, पद्मावत, जन्मखण्ड, पृ. 109

47. वही, पृ. 110

48. वही, पृ. 111

49. वही, पद्मावत, नागमती सुआ खण्ड, पृ. 142

50. वही, पद्मावत, जोगी खण्ड, पृ. 174

51. वही, पृ. 176

52. सम्पा. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा — सूरसागर सा सटीक, पृ. 40, पद 42

53. वही, पृ. 41, पद 47

54. वही, पृ. 43, पद 50
55. सम्पा. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रन्थावली सटीक, माया कौ अंग, पृ. 158
56. वही, पृ. 159
57. वही
58. वही
59. वही
60. सम्पा. प्रो. राजेश शर्मा — कवितावली, अयोध्याकाण्ड, वन गमन प्रसंग, पृ. 93, पद 2
61. वही, पृ. 95, पद 4
62. वही, वन गमन प्रसंग, पृ. 107, पद 15
63. वही, पृ. 110, पद 18
64. वही, लंकाकाण्ड, अंगद दूत कार्य, पृ. 197, पद 20
65. सम्पा. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रन्थावली सटीक, माया कौ अंग, पृ. 15
66. तुलसीदास — गीतावली, रामवियोग व्यथा, पृ. 240, पद 11
67. सम्पा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, समी. डॉ. हरिचरण शर्मा — भ्रमरगीत सार, पृ. 204, पद 34
68. वही, पृ. 212, पद 42
69. सम्पा. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रन्थावली, माया कौ अंग, पृ. 162
70. वही, पृ. 162
71. वही, कामी नर कौ अंग, पृ. 174
72. वही, पृ. 175
73. वही, निहकर्मो पतिव्रता कौ अंग, पृ. 126
74. वही, काल कौ अंग, पृ. 259
75. तुलसीदास — रामचरित मानस, बालकाण्ड, पृ. 88
76. डॉ. रामविलास शर्मा — परम्परा का मूल्यांकन, तुलसी साहित्य के सामन्त विरोधी मूल्य, पृ. 81
77. सम्पा. श्री कृष्णानन्द — मलिक मुहम्मद जायसी, त्रिवेणी, पृ. 19
78. सम्पा. आ. रामचन्द्र शुक्ल, समी. डॉ. श्रीनिवास शर्मा — जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, पृ. 361
79. सम्पा. डॉ. किशोरीलाल गुप्त — सम्पूर्ण सूरसागर (लोकभारती टीका), पृ. 161, पद 277
80. वही, पृ. 165, पद 285
81. सम्पा. प्रो. शिवशंकर सारस्वत — सूरदास, पृ. 169
82. सम्पा. डॉ. किशोरी लाल गुप्त — सम्पूर्ण सूरसागर (लोकभारती टीका), पृ. 383, पद 685
83. वही, पृ. 383, पद 686

84. डॉ. उषा त्यागी, नारी विमर्श : दशा-दिशा और समाज, स्वतन्त्र आवाज.com/ Google→internet
85. डॉ. उषा त्यागी — नारी विमर्श : दशा, दिशा और समाज
86. नीलम चौधरी — वर्तमान युग की नारी (प्रवक्ता.com/ Google→internet)
87. वही
88. डॉ. प्रभुदत्त शर्मा 'पथिक' — नर-नारी का यह संसार, शोध-पत्र
89. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा — समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएँ, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, पृ. 258
90. तुलसीदास — रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड, पृ. 562
91. वही, अरण्यकाण्ड, पृ. 564-565
92. सम्पा. आ. रामचन्द्र शुक्ल, समी. डॉ. श्रीनिवास शर्मा — जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, देवपाल दूती खण्ड, पृ. 554-555
93. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएँ, पृ. 255
94. वही, पृ. 272
95. वही, पृ. 272
96. तुलसीदास — गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पृ. 165, पद 19
97. वही, पृ. 167, पद 21
98. डॉ. प्रभुदत्त शर्मा 'पथिक' — नारी (माँ, सहचरी, प्राण), पृ. 7
99. तुलसीदास — रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड, पृ. 624-625
100.वही, बालकाण्ड, प. 168-169
101.वही, किष्किन्धाकाण्ड, पृ. 593.
102.वही, पृ. 597
103.वही, अयोध्याकाण्ड, पृ. 342-343
104.सम्पा. आ. रामचन्द्र शुक्ल, समी. डॉ. हरिचरण शर्मा — भ्रमरगीत सार, पृ. 242-243, पद 73
105.सम्पा. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रन्थावली सटीक, पदावली भाग, पृ. 404, पद 198
106.समी. डॉ. श्रीनिवास शर्मा, जायसी ग्रन्थवली, पद्मावती वियोग खण्ड, पृ. 206
107.मर्यादित जीवन सर्वोपरि, अटल संदेश, 31 जुलाई, 2014
108.तुलसीदास — गीतावली, अरण्यकाण्ड, शबरी से भेंट, पृ. 246, पद 5
109.वही, शबरी से भेंट, पृ. 247, पद 6
110.वही, अरण्यकाण्ड, पृ. 574, दोहा 36
111.वही, पृ. 602

112.वही, उत्तरकाण्ड, पृ. 806

113.वही, उत्तरकाण्ड, पृ. 807

114.वही, पृ. 821

115.वही, पृ. 871

116.वही, उत्तरकाण्ड, पृ. 871

117.सम्पा. आ. रामचन्द्र शुक्ल, समी. डॉ. हरिचरण शर्मा — भ्रमरगीत सार, सूरदास, पृ. 275, पद 98

118.वही, पृ. 284, पद 106

119.सम्पा. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत — कबीर ग्रन्थावली सटीक, कामी नर कौ अंग, पृ. 178

120.वही, पृ. 178

121.वही, पृ. 178

122.सम्पा. आ. रामचन्द्र शुक्ल, समी. डॉ. श्रीनिवास शर्मा — जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, देवपाल दूती खण्ड, पृ. 558

123.खुशालचन्द रैगर — क्रान्तिकारी सन्त रविदास, दलित मत दिनांक 07.02.2012

124.सम्पा. डॉ. परशुराम चतुर्वेदी, समी. डॉ. राज नागपाल, डॉ. माया अग्रवाल — मीरां बाई की पदावली, पृ. 28, पद 33

125.वही, मीरांबाई की पदावली, पृ. 96, पद 55

126.वही, पृ. 111, पद 185

127.वही, पृ. 118, पद 198

128.वही, पृ. 116, पद 194

❑

सप्तम अध्याय

शोध निष्कर्ष

भारतीय व्यवस्था के इतिहास में स्त्रियों की स्थिति एक लम्बे समय से विवादित रही है कि हम जैविकीय या मानसिक रूप से उन्हें दोषपूर्ण मानते हैं। इसका प्रमुख कारण हमारी पवित्रता सम्बन्धी संकीर्ण विचारधारा ही है। सामाजिक रूप से यह भी माना जाता है कि नारी जन्मजात दोषों से युक्त होती है। आज भी यह मान्यता है कि स्त्री अपने जन्मजात दोषों और कमजोरियों के कारण पुरुषों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकती है। वैदिक और उत्तर वैदिक काल के बाद हमारी सामाजिक चिन्तन शक्ति और मौलिक व्यवस्थाएँ गलने और सड़ने लगीं, वह रूढ़ियों के रूप में परिवर्तित होने लगीं। परिणामत: स्त्री से दासी की भाँति व्यवहार किया जाने लगा। पिछले 3-4 हजार वर्षों के कालखण्ड में नारी की स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तिन न हो सका। अगर देखा जाये तो स्त्री की सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति उतार चढ़ाव वाली रही है। वैदिक काल में नारी के अस्तित्व एवं योगदान से गृहस्थाश्रम को आदर्श रूप प्राप्त होता था, इस युग में घर का अस्तित्व नारीके अस्तित्व में निहित माना जाता था। उत्तर वैदिक काल में भी नारी को शिक्षा का पूर्ण अधिकार था, स्त्रियाँ वेदों का पठन-पाठन करती थीं। स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों से कम नहीं थी। इस समय विवाह के समय कन्याएँ पूर्ण वयस्क होती थीं, परदा प्रथा नहीं थी। महाभारतयुगीन समाज में नारी का स्थान धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा। हालाँकि इस युग में कन्या जन्म को लक्ष्मी माना जाता था। राजतिलक जैसे शुभ कार्यों में कन्या की उपस्थिति शुभ मानी जाती थी। कन्या को समानाधिकार थे, लेकिन 'द्रौपदी जुआ' प्रसंग से यह पता चलता है कि उस काल में नारी के प्रति भोगवादी दृष्टि पनपने लगी थी। हालाँकि उस समय सती-प्रथा का प्रचलन नहीं था। धर्मशास्त्र काल में वेदों के नियम के पूर्णतया भुला कर मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मान लिया गया। यह काल सामाजिक एवं

धार्मिक संकीर्णता का युग था। नारी भी इस संकीर्ण विचारधारा का शिकार बनी। इस काल में गृहलक्ष्मी से याचिका के रूप में दिखने लगीं। माता के रूप में सम्मानित होने वाली नारी का स्थान सेविका स्त्री ने ले लिया। विभिन्न तरह के सामाजिक अत्याचार स्त्री पर प्रारम्भ हो गये। भक्तिकाल में स्त्रियों की स्थिति का जितना पतन हुआ, उतना कभी नहीं हुआ हालाँकि पूर्व मध्ययुगीन समाज में स्त्रियों की स्थिति निम्न होने का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है लेकिन भक्तिकाल में पूर्वकालों की अपेक्षा वे निरन्तर पतनोन्मुख थीं। भक्तिकाल के प्रमुख कवि, सूरदास, तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास ने काफी मात्रा में नारी के पतन के सन्दर्भ में चिन्तन किया है। इस शोध में यह प्रयास किया गया है कि नारी की युगानुरूप स्थिति का वर्णन भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के चिन्तन से किया जा सके तथा उनके जीवन स्तर का वर्णन भी हो। वास्तव में हर युग में नारी की स्थिति तराजू के पलड़ों की भाँति ऊपर–नीचे होती रही है।

इस शोध में नारी की स्थिति स्त्री पक्ष एवं स्त्री प्रश्न के विषय में चिन्तन किया गया है। स्त्री के अधिकारों का चिन्तन किया जाकर मध्यकाल (भक्तिकाल) से तुलना की गई है। स्त्री और पुरुष के बीच भेद–भाव गलत एवं अन्यायपूर्ण है। स्त्री को वे सब सुविधाएँ, अवसर प्राप्त होने चाहिए जो पुरुष को प्राप्त हैं। शोध में स्त्री के जन्मादि अधिकारों के सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है कि लड़कियाँ गलत धारणाओं की वजह से जन्म पूर्व या अपने जीवन काल में मौत के मुँह में चली जाती हैं। लड़कियों का घटता लिंगानुपात यह सिद्ध करता है कि शिक्षित समाज आज भी अपनी संकीर्ण मानसिकता के दायरे से बाहर नहीं निकल पाया है। इस शोध में स्त्री के पोषण सम्बन्धी अधिकारों को बताया गया है। भारतीय समाज में कन्या को पुरुष की अपेक्षाकृत कम पोषक आहार मिलता है अगर स्त्री स्वस्थ नहीं होगी तो वह स्वस्थ शिशु को कैसे जन्म देगी? स्त्री के नागरिक अधिकारों के विषय में चिन्तन किया गया है कि स्त्री को शिक्षा का अधिकार उसके मौलिक अधिकारों में आता है, लेकिन माँ–बाप उन्हें इस डर से स्कूल कॉलेज नहीं भेजत कि वे बुरी नजरों का शिकार हो जाएंगी, लेकिन फिर उन्हें शिक्षा कैसे प्राप्त होगी? क्या पुरुष अपनी नकारात्मक सोच में बदलाव नहीं कर सकता? इन प्रश्नों के सन्दर्भ में स्त्री के प्रति सामाजिक मुद्दों की पहचान, मानसिक दृष्टिकोण, व्यवहार, महिलाओं सम्बन्धी संगठनों से लाभ आदि के बारे में अध्ययन किया गया है।

स्त्री के मानवाधिकारों के अध्ययन में यह निष्कर्ष है कि सरकार ने महिलाओं को कुछ क्रूर पुरुषों के अत्याचार से बचाने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया है लेकिन जब तक स्वयं महिला ही जागरूक नहीं होगी, सरकारी कोशिशें अधूरी रहेंगी। महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना होगा। जहाँ तक स्त्री स्वतन्त्रता और समानता की बात है वहाँ निष्कर्ष यह निकलता है कि स्त्री और पुरुष दोनों यदि पारस्परिक सम्बन्ध में अपने को अर्धनारीश्वर (शिव) के स्वरूप की भाँति एक–दूसरे के पूरक समझे तो वह संसार में सुख–शान्ति का कारण बन जाता है। स्त्री स्वायत्तता और स्त्री सत्ता उपशीर्षक में अध्ययन किया गया है कि नारीवाद की अवधारणा ने महिला जागरूकता आन्दोलनों और नारी मुक्ति संगठनों को जन्म दिया है, जो नारी के हित में है। स्त्री प्रश्न के अन्तर्गत यह सिद्ध किया गया है कि नर की शक्ति नारी है। नारी अक्षय ऊर्जा का स्रोत है। नारी के जीवन विकास पर नर के जीवन का उत्कर्ष अवलम्बित है। नर, नारी सृष्टि का आधार हैं। दोनों एक ही अस्तित्व के ऐसे परस्पर सम्बद्ध पहलू हैं जिनमें एक की उपेक्षा करने से दूसरे की हानि सम्भव है।

इस शोध में स्त्री की सामाजिक स्थिति के अन्तर्गत समाजशास्त्रियों और इतिहास वेत्ताओं के अनुसार स्त्रियों की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन किया गया है। सामाजिक रूप से स्त्री हमेशा से आर्थिक पर निर्भर रही है। इस धारणा के अन्तर्गत यह अध्ययन किया गया है कि पितृ सत्तात्मक ताकत ने औरत का हर सामाजिक अधिकार छीन लिया है। आज भी हमारा समाज वेश्यावृत्ति को सहन करता है तथा उसे यथासम्भव योगदान भी देता है। आत्म निर्णय के मामले में भी नारी पर–निर्भर ही रही है। उसके महत्त्वपूर्ण फैसले भौतिक रूप से पुरुष वर्ग द्वारा ही किए जाते रहे हैं। जैविक इकाई बनाम मानविक इकाई शोध बिन्दु में अध्ययन किया गया है कि स्त्री अपने आप में जैविक इकाई है, लेकिन भावनात्मक स्तर पर वह मानविक इकाई है। लगभग हर युग में स्त्री को अपनी देह का स्वामित्व प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ा है। प्राचीनकाल से ही नारी की देह और उसके प्रजनन अंगों के प्रति पुरुषवर्गीय समाज ने अलग–अलग धारणाएँ बनाकर, उसको शारीरिक प्रताड़ना देकर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध किया। देह का स्वामित्व प्राप्त करने हेतु नारी को वर्तमान में भी संघर्ष करना पड़ रहा है। स्त्री के यौन शुचिता सम्बन्धी प्रश्न के सन्दर्भ में यह अध्ययन किया गया है कि यौन शुचिता के क्षेत्र में भी नारी को दोयम दर्जे पर रखा

जाता है। इस अध्ययन में शुचिता का अर्थ, परिभाषा, स्त्री से पवित्रता की उम्मीद, पर प्रकाशन डाला गया है जिसका निष्कर्ष यह निकलता है कि भारतीय समाज में स्त्री को आज भी भोग की वस्तु के रूप में देखा जाता है। दूसरी ओर स्त्री से ही पवित्रता एवं सती सावित्री बने रहने की उम्मीद की जाती है। निष्कर्ष यह भी निकलता है कि स्त्री स्वत्वों की माँग ही नारी चिन्तन है। जब तक समाज नारी का स्वत्व ईमानदारी से नहीं समझेगा, तब तक नारी विकास का स्वप्न अधूरा ही रहेगा। 'नारी चिन्तन की चारित्रिकता' उपशीर्षक में यह विचार किया गया है कि नारी को अभी तक अपनी स्वतन्त्रता का बोध नहीं है। आज भी नारी को अभी तक अपनी स्वतन्त्रता का बोध नहीं है। आज भी नारी शिक्षित होने के बावजूद अपने मामलों में निर्णय लेने में स्वतन्त्र नहीं है। स्त्री–पुरुष के बीच समानता के प्रश्न में निष्कर्ष यह है कि समान अधिकारों का, समान अवसरों का और समान कार्य व्यवहार का अर्थ ही समानता है। विवाह, तलाक एवं पुनर्विवाह में स्त्री को आत्म निर्णय की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। भक्तिकाल में तुलसीदास ने विवाह के प्रति आत्म निर्णय की स्वतन्त्रता के प्रति अपना सराकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। अन्य कवियों ने भी नारी के विवाह सम्बन्धी आत्म निर्णय का पूर्णरूपेण समर्थन किया है। पुनर्विवाह तो प्राचीनकाल से ही होते रहे हैं। मध्यकाल में यह परम्परा क्षीण–सी हो गई लेकिन अब प्रबल हो रही है। जब स्त्री बहुत ज्यादा दुःखी हो जाती है तो वह विवाह और परिवार नामक संस्था से मुक्ति चाहती है। इसके पक्ष में मीरा का सन्दर्भ देकर प्रमाणित किया गया है कि स्त्री विवाह और परिवार के बिना भी स्वतन्त्र जीवन जी सकती है। मार–पीट, शोषण, अत्याचार, भेद–भाव आदि कारक उसे विवाह और परिवार संस्था से दूर कर देते हैं। नारी को भोग की वस्तु कहने पर प्राचीनकाल से ही आपत्ति है क्योंकि वह स्वयं में एक मानव सत्ता है। स्त्री यौन प्रतीक के रूप में अपनी अस्वीकृति व्यक्त करती है और अपनी सत्ता की अधिमान्यता चाहती है। निष्कर्ष यह निकलता है कि स्त्री अपने आप में एक स्पष्ट सत्ता है, वह अपने बारे में सोच सकती है। उसके पास निर्णय क्षमता है, स्त्री त्याग का प्रतीक है, शक्ति का पुँज है। इस प्रकार स्त्री सत्ता की अधिमान्यता परमावश्यक है।

भक्तिकाल में सामान्य नारी का दोयम दर्जा था। नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता था। पद्मावत में राजा रतनसेन पद्मावती को पाने के लिए अपनी ब्याहता पत्नी नागमती का त्याग कर देता है। भक्तिकाल में मीरा को छोड़ कर अन्य भक्त एवं सन्त कवियों ने नारी

की सार्थकता पुरुष वर्चस्ववादी ढाँचे में सुरक्षित की है। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के चिन्तन में नारी का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व का अभाव स्पष्ट हुआ है। मीरा जैसी शख्सियत को जब महलों को छोड़ना पड़ा तो सामान्य स्त्री की तो बात ही क्या? कवियों के चिन्तन में स्पष्ट हुआ है कि नारी पुरुष की सम्पत्ति के रूप में मान्य थी। मुगल हमलावरों के इस दौर में यौन शुचिता की रक्षा के नाम पर नारी के कैदखाने के बन्धन और कठोर हुए, इसी समय आत्मदाह (जौहर) जैसी परम्पराएँ विकराल रूप में उभरीं। नारी की सफलता, पति के प्रति अंधश्रद्धा और अंधानुमन में ही निहित थी। विधवाओं को सती होने के लिए प्रेरित किया जाता था अन्यथा विधवा होने पर कलंकिनी कहकर बनारस और मथुरा के मन्दिरों में भिक्षावृत्ति करने हेतु बाध्य कर दिया जाता था। भक्तिकाल में नारी उपभोग्या के रूप में देखी जा रही थी तो दूसरी ओर वह पैर की जूती समझी जा रही थी। तुलसीदास जी ने विनयपत्रिका के एक पद में पत्नी को पति की भोग्या के रूप में बताया है। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन में हमें कई स्थानों पर स्त्री दासता, शोषण आदि के चित्र मिलते हैं। भक्तिकाल में नारी मानवीय सत्ता के रूप में पुरुष वर्ग को अस्वीकार थी। उस समय नारी की सुकुमारता को लिप्सा और कामुक दृष्टि से देखा गया। जननांग विशेषता, शारीरिक कमजोरी, उपार्जन क्षमता में न्यूनता के कारण इसे उसकी दुर्बलता समझा गया। कबीरदास जी ने कहा कि कोई स्त्री किसी से साधारणतया हँस बोल ले तो वह लांछित हो जाती है। तुलसीदास जी भी विनयपत्रिका में नारी को स्वार्थी और मतलबी बता कर उपहास करते हैं। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के नारी चिन्तन में स्त्री, जैविक इकाई के रूप में स्वत्वहीन थी। इस समय स्त्री की स्थिति, जिस तरह तार के बिना वीणा, धुरी के बिना रथ और आत्मा के बिना शरीर था इस समय नारी सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में पिछड़ती जा रही थी। पद्मावती में भी सतीप्रथा को बढ़ा–चढ़ा कर बताया गया है।

इस अध्ययन में विभिन्न कवियों की रचनाओं एवं विभिन्न राजवंशों का सन्दर्भ देकर भक्तिकालीन समाज में स्त्री की स्वत्वहीनता सिद्ध की गई है। भक्तिकाल के सन्त कवियों ने नारी को नरक के द्वार के रूप में अधिमान्य कर दिया। इस समय के साहित्य में पाखण्ड विरोध के समानान्तर स्त्री विरोध का स्वर भी स्पष्टत: मुखर हुआ है, खासकर कबीर जैसे प्रगतिशील और भक्त कवि ने अपने दोहों में स्त्री के कामिनी स्वरूप की निन्दा

की है। तुलसीदास जी ने भी स्त्री के कामिनी स्वरूप को त्याज्य माना है। मलिक मुहम्मद जायसी ने भी पद्मावत में नागमती को नागिन की संज्ञा दी है। सूरदास की गोपियाँ भी स्वयं को तुच्छ और निम्न समझती हैं कि वे कृष्ण को नहीं रोक पाईं हालाँकि नारी के पतिव्रता रूप की प्रतिष्ठा भक्तिकाल में जरूर की गई है। उसके लिए कहा गया है कि पतिव्रता और साध्वी स्त्री वही है जो सर्वदा अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर अपने पति पर निर्मल प्रीति रखती है।

तुलसीकृत रामचरित मानस के अरण्यकाण्ड में सीताजी को महासती अनुसूया द्वारा पतिव्रत धर्म की शिक्षा देने का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार कबीरदास, सूरदास और मलिक मुहम्मद जायसी ने भी स्त्री के पतिव्रत धर्म का चिन्तन अपने काव्यों में किया है। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के चिन्तन में नारी का संघर्षशीला और विद्रोहिणी का भी स्वरूप मिलता है। तुलसीकृत रामचरित मानस में सीता और जायसी कृत पद्मावत में पद्मावती के संघर्षशील स्थिति का चित्रण मिलता है। सूरदास ने भी भ्रमरगीत में स्त्री के वियोग और संघर्ष का चित्रण किया है। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के चिन्तन के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि उस दौर में नारी की स्थिति संघर्षमय थी। भक्तिकाल में कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं जहाँ नारी ने पति के दासत्व को अस्वीकार किया है। इनमें प्रमुख उदाहरण मीरा का है। मीरा ने वैधव्य के पश्चात् समस्त जीवन सिर्फ कृष्ण प्रेम में ही गुजार दिया। एक विधवा नारी के लिए, भले ही वह राजकुल की वधू क्यों न हो? यह संघर्ष और विरोध कितना मर्मान्तिक कहा जायेगा, इसकी मात्र कल्पना ही की जा सकती है। मीरा को कृष्ण भक्ति करने पर 'बिगड़ी हुई स्त्री' की संज्ञा मिली लेकिन मीरा ने राजवंश का बंधन स्वीकार नहीं किया। इस प्रकरण में अक्का महादेवी और आण्डाल का सन्दर्भ देकर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भक्तिकाल में कुछ नारी भक्तों ने पति की दासता अस्वीकृत की है।

इस शोध में भक्तिकालीन कवियों का नारी चिन्तन स्पष्ट किया गया है। कबीर ने नारी के प्रति नकारात्मक विचार क्यों प्रस्तुत किए, इसका उत्तर खोजने की कोशिश की गई है। भक्तिकालीन कवियों के चिन्तन का मूल नारी है, चाहे वह नकारात्मक रूप में है या सकारात्मक रूप में है। इन कवियों ने नारी को मनोविकृतियों की जननी भी माना है। समाज सुधारक कबीर ने अपने वचनों में नारी की एक ओर सती आदि कहकर प्रशंसा की वहीं

उसके व्यक्तित्व को गलाने का भी पूर्ण प्रयास किया। तुलसीदास नारी को भयंकर कारकों के साथ जोड़ते हैं। सन्त सुन्दरदास नारी की प्रशंसा करने वालों को महागंवार बताते हैं। निष्कर्ष यह निकलता है कि भक्तिकाल में स्त्री के मानवीय स्वरूप की उपेक्षा हुई है। तुलसीदास ने रामचरित मानस में सती प्रसंग में नारी को कपटी स्वभाव का बताया है। सन्त कबीरदास ने भी नारी को सती-प्रथा का अनुसरण करने हेतु उकसाया है। भारत में यदि किसी का सबसे ज्यादा शोषण हुआ है तो वो स्त्री का हुआ है, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म की हो। सूरदास ने नारी को मात्र भाव सत्ता की प्रतिनिधि माना है। सूरदास ने नारी मन की भावनाओं का विभिन्न प्रकार से चित्रण किया है। इनके काव्य में नारी, मात्र अपनी भावनाओं को व्यक्त करती है, वह मात्र अपनी इच्छाओं, भावनाओं की प्रतिनिधि है, गोपियाँ अपनी इच्छा तो व्यक्त करती हैं पर सशक्तता से अड़ी नहीं रह सकतीं। सूर के काव्य में गोपियाँ रो रो कर बेहाल हो जाती हैं और कृष्ण उन्हें छोड़कर चले जाते हैं। उनके मन में कृष्ण प्राप्ति की तीव्र इच्छा है, लेकिन कृष्ण उन्हें मिलते नहीं हैं। भक्तिकाल में नारी की सामाजिक निष्क्रियता का भी चिन्तन मिलता है। चूँकि उस समय मुगलों का शासन था, अत: समस्त स्त्री वर्ग परदा प्रथा से पीड़ित था। नारी कहीं भी खुले में साँस नहीं ले सकती थी। वह सामाजिक क्रिया-कलापों में स्वतन्त्र रूप से हिस्सा नहीं ले सकती थी, क्योंकि सामाजिक रूप से निर्णय के समस्त अधिकार पुरुष वर्ग के हाथ में थे। कृष्ण भक्त मीरा, हालाँकि कृष्ण के प्रेम में दीवानी थी, लेकिन उसकी कविताओं में सांसारिक नारी मन की भावनाएँ और व्यथा व्यक्त होती है। सूरदास ने भी कृष्ण के माध्यम से चित्रित किया है कि पुरुष वर्ग बड़ा स्वार्थी होता है वह स्त्री को स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता।

तुलसीदास जी की दृष्टि भी रामचरित मानस में सिर्फ सीता पर ही केन्द्रित रही, अन्य नारी पात्रों का उन्होंने यथोचित सामाजिक चित्रण नहीं किया। भक्तिकाल में स्त्री जाति के लिए निश्चित नियम कायदे कानून थे। नारी यन्त्रवत थी। नारी जीवन यान्त्रिकता से पूर्ण था। स्त्री की यान्त्रिकता में पुरुष बाह्य शक्ति था, जो उसे संचालित करता था। भक्तिकाल में स्त्री की भावनाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। परिवार व समाज में नारी का कोई खास आदर नहीं था, वह तो पैरों की जूती समझी जाती थी। पुरुष जब चाहे उसे बदल सकता था। यहाँ नारी जीवन की यान्त्रिकता का अर्थ, नारी हृदय की भावनाओं की अवहेलना के रूप में लिया जाना चाहिए।

भक्तिकाल में स्त्री को केवल जैविक इकाई के रूप से स्वीकृति प्राप्त थी। जिस प्रकार इस संसार में अन्य जन्तु अपना अस्तित्व रखते हैं, उसी तरह स्त्री 'पशु' भी अपना अस्तित्व बनाये रखने हेतु संघर्षरत थीं। स्त्री नामक जीव हमेशा पुरुष के प्रभाव को ढोते हुए दिखाई दी गई। सूरदास जी भी नारी को दासी से ज्यादा कुछ नहीं मानते हैं और उसे सिर्फ भावना शून्य जैविक सत्ता के रूप में देखते हैं। तुलसीदास भी नारी को त्याज्य मानते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने भी नारी को नारी की विरोधी के रूप में चित्रित किया है। नारी अधिकांश स्थितियों में प्राकृतिक रूप से नियन्त्रित रहती है और कुछ में उसे जबरन नियन्त्रित किया जाता है। भारतीय समाज में नारी की समानता व स्वतन्त्रता का समाप्त होना कब शुरू हुआ, इसका ठीक-ठीक समय निर्धारण करना बड़ा कठिन है लेकिन मध्यकाल के कवियों के नारी चिन्तन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामन्तवाद और जातिवाद के उद्भव और विकास के साथ ही नारी को भी दास, सम्पत्ति और भोग्या मानने का चलन प्रारम्भ हुआ। लेकिन यह भी सच है कि सामन्तवादी वातावरण के परिप्रेक्ष्य में नारी चेतना का विकास भी हुआ। स्त्री ने विरोध में अपनी आवाज भी मजबूत की। सामन्तवादी समाज में विकसित नारी चेतना का उदाहरण मीराबाई थी। इन्होंने ही उस वक्त की सामन्तवादी व्यवस्था के खिलाफ मुँह खोलने का साहस किया था। नूरजहाँ, रजिया बेगम, सामन्तवादी दौर में विकसित नारी चेतना की प्रतीक हैं। मध्यकाल में मीरा के काव्य में नारी चेतना की अद्भुत सुगन्ध मिलती है, जो कि हर नारी के लिए प्रेरणास्पद एवं प्रासंगिक है। भक्तिकाल में स्त्री सत्ता के लिए संघर्ष का आह्वान का चिन्तन भी मिलता है जो कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक है। सूरदास की गोपियाँ सामन्ती नैतिकता और जड़ संस्कृति, पातिव्रत धर्म के बन्धनों का अतिक्रमण करती हैं। वे पुरुषों के समान ही सामाजिक क्रिया-कलापों में हिस्सा लेती हैं। गोपियों को राजा कृष्ण की नहीं, सखा कृष्ण की आवश्यकता है। मीराबाई भी स्वतन्त्रता की आकांक्षा को हृदय में लिए कृष्ण के समक्ष सारे संसार को फीका समझती है। भक्तिकाल में सामान्य नारी अपने ऊपर होने वाले अत्याचार और शोषण का प्रतिरोध नहीं कर पा रही थी। स्त्री शोषण चरमोत्कर्ष पर था। हर कवि अपने-अपने तरीके से नारी निन्दा कर रहा था, लेकिन इसका प्रतिरोध करने की शक्ति नारी वर्ग में नहीं थी। कबीरदास, तुलसीदास, सुन्दरदास आदि ने स्त्री के विषय में निन्दा वाक्य लिखे। वह केवल दैहिक काया बनकर रह गई और नख शिख वर्णन का विषय बनने लगी। उस समय

में अत्याचार का किसी भी स्त्री ने प्रतिरोध का स्वर व्यक्त नहीं किया, यही स्त्री की प्रतिरोध हीनता थी। भक्तिकाल में स्त्री के प्रति दमनकारी सोच अपने चरम बिन्दु पर प्रकट हुई है कि स्त्री–पुरुष की निजी सम्पत्ति है, लेकिन पुरुष इस सम्पत्ति को आगे नहीं बढ़ाना चाहता है, वह नारी को कमजोर रखने में ही अपनी सुरक्षा समझता है, बस यही से स्त्री और पुरुष का वैचारिक टकराव शुरू हुआ। मीराबाई का सम्पूर्ण जीवन और साहित्य नारी विद्रोह का अच्छा उदाहरण है। भक्तिकाल के प्रमुख कवि सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि के काव्यों में स्त्री स्वतन्त्रता का भी स्पष्ट चिन्तन मिलता है। तुलसीदास ने राम सीता विवाह में कहीं भी सीता को घूँघट में नहीं दिखाया है जबकि मध्यकालीन युग तो मुस्लिम प्रभाव से परदा प्रथा की वकालत करता था। तुलसीदास ने नारी के समान अधिकारों का चित्रण कर स्त्री स्वतन्त्रता की अवधारणा को पुष्ट किया है। तुलसीदास जी चित्रित करते हैं कि जब राम का विवाह होता है तो सब स्त्रियाँ अपने परदे को छोड़कर अपनी–अपनी रुचि के अनुसार राम और उनके स्वयंवर को देखने आ जाती हैं। स्त्री स्वतन्त्रता का यहीं से स्पष्ट चिन्तन शुरू होता है।

जब स्त्री अपनी उम्मीदों और अपनी उमंगों को पूरा नहीं कर पाती है तो उसके मन में भी ये भावना उत्पन्न होती है कि ऐसा क्या है जो उसकी इच्छाओं को पूरी नहीं होने दे रहा है। स्त्री की इच्छाओं को भावनाओं को जब दबाया जाता है नारी मन प्रतिकार करने को प्रेरित हो उठता है। उसमें विद्रोही भावना आ जाती है। नारी द्वारा अपने ऊपर होने वाले अत्याचार, अनाचार का रोकने हेतु जब कमर कसी जाती है, वही उसका प्रतिरोध कहलाता है। जितना मीरा का विरोध सामन्तशाही द्वारा किया गया उतनी ही उसके हृदय में प्रतिरोधी चेतना शक्तिशाली होती चली गई। मीरा का विद्रोही व्यक्तित्व पुरुष प्रधान समाज के वर्चस्व को चुनौती देता हुआ दिखाई पड़ता है। वे मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था की पीड़ित नारी भक्त कवयित्री हैं। मीराबाई के व्यक्तित्व और कृतित्व ने स्पष्ट रूप से पुरुष के सामाजिक वर्चस्व को चुनौती दी है। तुलसीदास जी भी स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देने का चित्रण रामचरित मानस में करते हैं। शूर्पणखा प्रकरण को नारी द्वारा पुरुष के प्रतिरोध का उदाहरण माना जा सकता है। भक्तिकालीन नारी सामाजिक सक्रियता की आकांक्षी है, वह मुक्त मन से घर के बाहर के कार्यों में हिस्सा लेना चाहती है। मध्यकाल में पुरुषवाद का पूर्ण प्रभाव था जिसमें नारी की सामाजिक सक्रिय होने की आकांक्षा दब

कर रह जाती थी। इन सब कठिनाइयों के उपरान्त भी भक्त कवियों के चिन्तन में सामाजिक रूप से नारी के सक्रिय रहने की आकांक्षा व्यक्त हुई है। जायसीकृत पद्मावती में पद्मावती का अपनी सखियों के साथ मानसरोवर स्नान का सुन्दर वर्णन है। तुलसीदास भी शबरी राम प्रसंग के माध्यम से नारी की सामाजिक सक्रियता का सुन्दर चित्रण करते हैं। सूरदास जी भी कृष्ण जन्म के अवसर पर गोपियों की सामाजिक सक्रियता को चित्रित करते हैं। भक्तिकाल के कवियों की प्रासंगिकता इसलिए है कि जिस प्रकार राम ने शबरी के झूठे बेर खाकर उसे महत्त्व दिया उसी प्रकार के महत्त्व की आकांक्षा आज स्त्री को पुरुष से है। कबीरदास की नारी आलोचना में कुछ दोहे इस प्रकार के भी मिलते हैं कि वे नारी को सही रास्ता भी दिखलाते हैं। कबीरदास ने सिर्फ नारी को चरित्र के सम्बन्ध में ही नहीं कहा, अपितु दुष्चरित्र पुरुषों को भी सच्चरित्रता का पाठ पढ़ाया है, लेकिन सहारा नारी का ही लिया है।

भक्तिकाल के प्रमुख कवियों ने उपदेश द्वारा भी नारी शिक्षा को बल दिया है जो आज भी प्रासंगिक है। कवियों की ज्यादातर शिक्षा सामाजिक सन्दर्भ में है। प्रायः कुछ सन्त कवियों ने पारिवारिक जीवन जिया है। वे आत्म शुद्धि और व्यक्तिगत साधना पर बल देते थे तथा शुद्ध मानव धर्म के प्रतिपादक थे। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भक्त कवियों के उपदेश समस्त नारी वर्ग के लिए प्रासंगिक हैं और लाभदायक हैं। कड़वा सच और कड़वी दवा दोनों ही अच्छी होती हैं, थोड़ी देर को खराब लगती हैं लेकिन परिणाम अच्छा देती हैं। महिला सशक्तिकरण की धारणा बहुआयामी है। यह कोई पुरुष निरपेक्ष नहीं बल्कि सापेक्ष चिन्तन है और इसके लिए भक्तिकाल में पुरुष कवियों ने अपने उपदेशों और शिक्षा से स्त्री की स्थिति के परिवर्तन का प्रयास किया है। भक्तिकाल में भी नारी को पुरुषों के समान भक्ति के योग्य मना गया जिसके फलस्वरूप अनेक महिला सन्तों ने भक्ति के क्षेत्र में विशेष स्थान बनाया जिनमें प्रमुख हैं—मीराबाई, मुक्ताबाई, केसमाबाई, गंगूबाई, जानी आदि, सहजोबाई का नाम भी सन्त साहित्य में आदर के साथ लिया जाता है। जायसी ने पद्मावती के चरित्र को प्रस्तुत कर समस्त स्त्री जाति को नैतिक व चारित्रिक शिक्षा देकर नारी सशक्तिकरण का चिन्तन व्यक्त किया है। कबीरदास के वचन भी स्त्री की स्थिति को परिवर्तित करने में सक्षम हैं। सूरदास और तुलसीदास भी यह मानते हैं कि नारी की ज्ञान युक्त शिक्षा और उपदेश को सर्वोत्तम मानना चाहिए नहीं तो सर्वनाश निश्चित है। वर्तमान

स्त्री चिन्तन की नींव हमें भक्तिकाल में ही मिलती है, तब से आज तक नारी पर चिन्तन और बहस हो रही है। यह एक ऐसा चिन्तन है जो शायद कभी थमने का नाम नहीं लेगा हालाँकि भक्तिकाल और वर्तमान स्त्री चिन्तन में अन्तर जरूर दिखाई देता है। जहाँ स्त्री के सकारात्मक मानवीय पक्ष को लेकर न्यायपूर्ण दृष्टि से उसके अधिकारों के लिए बात की जाती है या सोचा जाता है, स्त्री चिन्तन का आधार वहीं से शुरू होता है। भक्तिकाल के कवि सूरदास, तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी, मीरा आदि ने ईमानदारी से स्त्री के अधिकारों की बात की है। इन कवियों ने ही सर्वप्रथम स्त्री चिन्तन को पहचान दी। इनके काव्यों को पढ़कर ही ये लगा कि स्त्री के बारे में अवश्य ही सोचा जाना चाहिए। जब कभी तुलसीदास को पढ़ा जाता है तो लगता है कि सीता के रूप में वर्तमान नारी अपनी दशा का ताल्लुक वहीं से रखती है। सूरदास जी ने भी नारी के चरित्र को सर्वाधिक स्पर्श किया है। उन्होंने समाज को क्रमिक विकसित होने वाले प्रेम से परिचित कराया है।

भक्तिकालीन कवियों ने स्त्री की सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में अपनी रचनाओं में यथोचित चित्रण किया है, जब इन कवियों के स्त्री सम्बन्धी विचारों को पढ़ा जाता है तो लगता है कि आज भी वे बातें स्त्री वर्ग के लिए प्रासंगिक है। हमें भक्तिकाल के पूर्व कालों में स्त्री के प्रति उच्च विचार मिलते हैं लेकिन भक्तिकाल तक आते-आते नारी दैवीय रूप से सामान्य नारी के रूप में देखी जाने लगी, नारी की स्थिति पराधीन में परिवर्तित हो गई। कबीर के काव्य में कहीं माया और नारी एक है तो कहीं दोनों ही अग्नि के समान हैं जिससे जल कर मनुष्य नष्ट हो जाता है। नारी सम्बन्धी ये विचार उस युग की ही देन हैं जिससे नारी के लिए सम्मानजनक स्थान कम ही था। भक्तिकालीन समाज की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। सम्पूर्ण समाज असहाय, दरिद्रता और अत्याचार की भट्टी में सुलग रहा था। भारत पर मुगलों का शासन था। हिन्दू जनता ने इस सामाजिक आक्रमण से बचाव के लिए अनेक उपायों को अपनाया जिसमें सती-प्रथा, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा आदि प्रमुख थे।

वर्तमान सन्दर्भ में नारी चिन्तन करने पर आरम्भ में ही यह तथ्य ज्ञात हो जाता है कि इक्कीसवीं सदी की शुरुआत ही महिला सशक्तिकरण वर्ष 2001 के रूप में हुई। नारी हितों पर केवल चर्चा ही नहीं, कई ठोस और सार्थक कार्यक्रम भी सरकार द्वारा चलाये जा रहे हैं। वर्तमान युग चेतना का युग है, यह तकनीकी उपलब्धियों का युग है और प्राचीन मूल्यों में परिवर्तन का युग है। नारी पर जो बंधन, सीमा तथा नियन्त्रण थे, वह इन सब से

मुक्त हो रही है। वर्तमान समाज में अर्थ प्रधान संस्कृति का बोलबाल है। नारी जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है। भारतीय सन्दर्भ में संयुक्त परिवार की प्रथा समाप्त हो रही है। पश्चिम के अनुकरण में आज की नारी शिक्षा, विज्ञान, कला, विज्ञापन, साहित्य के शीर्ष को स्पर्श करने में लगी है। वर्तमान समाज को अपनी सामन्ती सोच और सड़ी–गली मानसिकता, संकीर्ण व्यवस्था, रूढ़िगत कुप्रथाओं को नारी उत्कर्ष हेतु पूरे तौर पर समाप्त करना होगा। आज समाजवादी नारी भावना का निरन्तर विकास हो रहा है, लेकिन समूचे देश काल और परम्पराओं का सम्मान बनाये रखना बहुत जरूरी है, तभी नारी की गरिमा सुरक्षित रह सकती है।

लेकिन जब हम बात स्त्री स्वतन्त्रता की करते हैं तो यह तथ्य भी हमारे समक्ष खड़ा होता है कि मध्यकाल से लेकर आज तक नारी को पुरुष जैसी सुविधाएँ और स्वतन्त्रता नहीं मिल पाई है। आज भी नारी के प्रति अत्याचार निरन्तर देखे जा सकते हैं। आज भी भारत पुरुष प्रधान समाज का हुक्म चलता है। आज भी स्त्री शोषण के प्रतिदिन समाचार सुनने को मिल जाते हैं। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों द्वारा स्त्री वर्ग की सुरक्षा एवं संरक्षा का चिन्तन उनके काव्य में किया गया है जिसका लाभ वर्तमान में स्त्री वर्ग उठा सकता है। नारी की सुरक्षा के लिए सबसे पहले समाज को अपनी सोच में परिवर्तन लाना होगा, साथ ही नारी का आत्मविश्वास भी बढ़ाना होगा। उसे शोषण के विरुद्ध सशक्त बनाना होगा। भक्तिकालीन कवियों ने नारी सुरक्षा को लेकर जो चिन्तन किया, यह चिन्तन आज भी जारी है, हालाँकि वर्तमान में सरकार नारी सुरक्षा को लेकर कृत–संकल्प नजर आती है लेकिन फिर भी समाज, पीड़ित महिलाओं को सुरक्षा प्रदान नहीं कर पा रहा है। ज्ञान एवं भक्ति से नारी की श्रेष्ठता सम्भव है, इसका स्पष्ट चिन्तन तुलसीकृत रामचरित मानस में मिलता है। तुलसीदास त्रिजटा, अहिल्या, मंदोदरी, सुमित्रा, तारा आदि नारी पात्रों द्वारा नारी की श्रेष्ठता व्यक्त करते हैं। सूरदास भ्रमरगीत में व्यक्त करते हैं कि नारी जाति ज्ञान और भक्ति के माध्यम से अपना कल्याण कर स्वयं को आध्यात्मिक क्षेत्र में श्रेष्ठ साबित कर सकती हैं। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध न केवल चिन्तन किया है बल्कि उन्हें समाप्त करने का सन्देश भी समाज को दिया है। कवि तुलसीदास के पास मानव चिन्ता से बढ़ कर कोई अन्य चिन्ता नहीं थी। वाल्मीकि, वेदव्यास के बाद उनकी ही सामाजिक चिन्तन दृष्टि सर्वश्रेष्ठ है। कृष्ण भक्त कवि सूरदास

जी ने घूँघट प्रथा की कुरीति का खण्डन भ्रमरगीत में गोपियों से करवाया है। गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण प्रेम में हम सामाजिक लज्जा और मर्यादा को भी भूल गए हैं। सन्त कबीरदास ने पराई स्त्री पर बुरी नजर डालने की निन्दा की है और शिक्षा दी है कि पराई स्त्री पर नजर डालने से मनुष्य नरकगामी होता है। मध्यकाल में छुआछूत और नारी विरोधी भावना चरमोत्कर्ष पर थी। लेकिन तुलसीदास ने उसी दृढ़ता के साथ राजा राम को एक दलित नारी शबरी के झूठे फल खाते हुए दिखा कर सामाजिक समन्वय की स्थापना की है।

इस शोध की उपादेयता यह है कि जो चिन्तन मध्यकालीन भक्त कवियों ने नारी सन्दर्भ में किया है, वह वर्तमान में भी प्रासंगिक है, यह सिद्ध किया गया है। क्योंकि युग बदला है पर नारी और पुरुष की प्रकृति युगानुरूप नहीं बदली। तब सामन्तवाद था और नारी पर अत्याचार होते थे, अब लोकतन्त्र है फिर भी स्त्री भयावह वातावरण में साँस ले रही है। भक्तिकालीन कवियों ने नारी सुरक्षा के जो उपाय बताये हैं, उन्हें अपनाने की परमावश्यकता है। भक्त कवियों ने सामाजिक कुरीतियों पर भी चिन्तन किया है। यह चिन्तन भी प्रासंगिक है। भक्तिकाल के प्रमुख कवि सूरदास, तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी और कबीरदास के स्त्री चिन्तन को यदि समाज आत्मसात कर ले तो शायद इस पृथ्वी को ब्रह्माण्ड में सर्वश्रेष्ठ ग्रह का दर्जा मिल सकता है। यह शोध अपने अध्यायों की उपलब्धियों की ओर संकेत करते हुए अन्य समवर्ती दिशाओं की ओर ध्यान आकर्षित करेगा। यह शोध अध्ययन, विश्लेषण, रचनाओं के अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्यों के भीतर से गुजर कर प्राप्त तथ्यों पर आधारित समीक्षा और शोध की स्वीकृत वैज्ञानिक प्रणाली का अनुपालन करता है। ऐसा मन वचन और कर्म से पूर्ण प्रयास किया गया है।

❑

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

शोध क्षेत्र से सम्बन्धित आधार ग्रन्थ

1.	जायसी ग्रन्थावली	सम्पा. आ. रामचन्द्र शुक्ल	अनु प्रकाशन, जयपुर, प्रथम सं. 2007
2.	सम्पूर्ण सूरसागर	सम्पा. डॉ. किशोरी लाल गुप्त	लोक भारती, इलाहाबाद, सं. 2005
3.	रामचरित मानस	तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर, 38वां सं. 2048 संवत्
4.	कवितावली	सम्पा. प्रो. राजेश शर्मा (एम.ए.)	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2005
5.	गीतावली	गो. तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर, 30वां सं., 2062 संवत्
6.	तुलसी दोहावली	सम्पा. राघव रघु	ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2011
7.	रहीम दोहावली	सम्पा. वाग्देव	ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2011
8.	सूरसागर सार	सम्पा. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा	साहित्य भवन प्रा.लि., इलाहाबाद, प्रथम सं. 2009
9.	मीरां पदावली	सम्पा. डॉ. शम्भुसिंह मनोहर	रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर ISBN-81-8639-8252
10.	कबीर ग्रन्थावली	सम्पा. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2001

11.	जायसी ग्रन्थावली (सटीक)	सम्पा. डॉ. श्रीनिवास शर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2011
12.	भ्रमरगीत सार	सम्पा. डॉ. हरिचरण शर्मा	श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्रथम सं. 2001
13.	विनय पत्रिका (हरितोषिणी टीका)	सम्पा. डॉ. वियोगी हरि	पुस्तक सदन, ज्ञान वापी, वाराणसी, प्रथम सं. 1965
14.	मीरांबाई की पदावली	सम्पा. डॉ. राज नागपाल	रचना प्रकाशन, जयपुर, प्रथम सं. 2011
15.	कबीर ग्रन्थावली	सम्पा. पारसनाथ तिवारी	दिल्ली साहित्य परिषद्, इलाहाबाद, प्रथम सं. 1962
16.	कबीर ग्रन्थावली	सम्पा. बाबू श्याम सुन्दर दास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 20वां सं. 1995
17.	कवितावली	सम्पा. रामनारायण लाल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वितीय सं. 1975
18.	गीतावली	सम्पा. मोतीलाल जालान	गीता प्रेस, गोरखपुर, 10वां संस्करण 1990
19.	दोहावली	सम्पा. मोतीलाल जालान	गीता प्रेस, गोरखपुर, 10वां सं. 1993
20.	रामचरित मानस	सम्पा. मोतीलाल जालान	गीता प्रेस, गोरखपुर, 16 वां स. 1970
21.	विनयपत्रिका	सम्पा. मोतीलाल जालान	गीता प्रेस, गोरखपुर, 23वां सं. 1989
22.	कबीर का सामाजिक दर्शन	डॉ. प्रहलाद प्रसाद मौर्य	पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्रथम सं. 1980
23.	गोस्वामी तुलसीदास	आ. रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 10वां सं. 1982
24.	तुलसी की साहित्य साधना	डॉ. लल्लन राय	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1987
25.	तुलसी 'आधुनिक वातायन से'	डॉ. रमेश कुन्तल मेघ	भारतीय यज्ञ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1983

26.	भक्ति काव्य और लोक जीवन	शिव कुमार मिश्र	पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली, प्रथम सं. 1995
27.	समाजशास्त्र के सिद्धान्त	डॉ. आर.डी. सचदेव	किताब महल, इलाहाबाद, तीसरा सं. 1990
28.	पद्मावत (सटीक)	मलिक मुहम्मद जायसी	आर्यन बुक डिपो, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1970
29.	अखरावत (सटीक)	मलिक मुहम्मद जायसी	आर्यन बुक डिपो, नई दिल्ली, द्वितीय सं. 1975
30.	आखरी कलाम	मलिक मुहम्मद जायसी	आर्यन बुक डिपो, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1974
31.	सन्त साहित्य की भूमिका	डॉ. राजदेव	आर्यन बुक डिपो, नई दिल्ली, द्वितीय सं. 1974
32.	सन्तों की सहज साधना	डॉ. राजदेव	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं. 1976
33.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1990
34.	तुलसी एवं कबीर का सामाजिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन	सरिता राय	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1993
35.	राम कथा और उसके प्रमुख नारी पात्र	डॉ. आशा भारती	इतिहास संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1996
36.	गोस्वामी तुलसी	राजश्री तिवारी	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1996
37.	कबीर साहित्य की परख	परशुराम चतुर्वेदी	भारती भण्डार प्रयाग, ISBN-2908
38.	कबीर	हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी ग्रन्थागार, बम्बई, द्वितीय सं. 1964
39.	स्त्री उपेक्षिता : एक अध्ययन	डॉ. प्रभा खेतान	हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2002

40.	मातृ देवो: भव	पं. अक्षय चन्द्र शर्मा	कन्नोई प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1985
41.	राजस्थान की भक्ति परम्परा तथा संस्कृति	दिनेश शुक्ल	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, द्वितीय सं. 1992
42.	उठो अन्नपूर्णा चलें	उषा महाजन	हिमाचल पुस्तक भण्डार, नई दिल्ली, सं. 1998
43.	भारतीय जन जीवन चिन्तन के दर्पण में	संकलन	प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नव सं. 1993
44.	सुनो भाई साधो	रजनीश ओशो	रजनीश फाउण्डेशन प्रकाशन, प्रथम सं. 1976
45.	स्त्रियों के लिए कर्त्तव्य शिक्षा	जयदयाल गोयंदका	गीता प्रेस, गोरखपुर, 22वां सं. 1992
46.	प्रेम पियासे नैन	राजेन्द्र अरुण	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, नव सं. 1986
47.	रामायण के पात्र	नाना भाई भट्ट	सस्ता साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा सं. 1977
48.	खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर	भगवत शरण उपाध्याय	पीपुल्स पीब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, नव सं. 1995
49.	रामायण के कुछ आदर्श पात्र	जयदयाल गोयंदका	गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2043
50.	माया (ऋग्वेद से सन्त काव्य तक)	डॉ. राजदेव सिंह	भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं. 1989
51.	नारी	जैनेन्द्र कुमार	पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1980

शोध दृष्टि से सम्बन्धित ग्रन्थ

1.	सूरदास	सम्पा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	सरस्वती मन्दिर, वाराणसी, 5वां सं. 1961
2.	सूरदास	सम्पा. प्रो. शिव शंकर सारस्वत	विनोद पुस्तक मन्दिर, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1965
3.	त्रिवेणी	सम्पा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	

4.	भक्तिकाव्य	प्रमिला मिश्रा	पंचशील प्रकाशन, जयपुर चौथा सं. 2009
5.	पद्मावत समीक्षा	राजनाथ शर्मा	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम सं. 1962
6.	नारी	डॉ. प्रभुदत्त शर्मा 'पथिक'	अनु प्रकाशन, जयपुर, प्रथम सं. 2013
7.	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार शर्मा	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा सं. 1973
8.	भारत में महिलाएँ एवं मानवाधिकार	डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा	गोवर्धन पब्लिकेशन्स, जयपुर प्रथम सं. 2006
9.	समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएं	डॉ. सुरेश चन्द्र राजौरा	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर तृतीय सं. 2004
10.	रिसर्च मेथडॉलॉजी	वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा	पंचशील प्रकाशन, जयपुर, तृतीय सं. 2004
11.	शोध प्रविधि	डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा	हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, प्रथम सं. 2006
12.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आ. रामचन्द्र शुक्ल	मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर प्रथम सं. 2008
13.	राजपाल अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश	डॉ. हरदेव बाहरी	राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2008
14.	समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएँ	वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा	पंचशील प्रकाशन, जयपुर, तीसरा सं. 2004
15.	हिन्दी सन्त काव्य में सगुण भावना	डॉ. भृगुनाथ तिवारी	सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, नव सं. 1987
16.	तत्त्वार्थ रामायण	डोंगरी जी महाराज	राधा प्रेस, नई दिल्ली, दूसरा सं. 1987

17.	भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र	डॉ. सत्यदेव चौधरी	अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, नव सं. 2000
18.	कबीर दर्शन		वैलेडियर प्रेस, प्रयाग, नव सं. 1962
19.	गरीबदास की बानी		वही, दूसरा सं. 1956
20.	गुलाल साहब की बानी		वही, नव सं. 1932
21.	चरणदास की बानी, भाग 1-2		वही, प्रथम सं. 1952
22.	जग जीवन साहब की बानी		वही, प्रथम सं. 1922
23.	दादू दयाल की वाणी भाग 2		प्रथम सं. 1958
24.	दूलनदास की वाणी		वही, प्रथम सं. 1964
25.	भक्ति का विकास	डॉ. मुंशीराम वर्मा	चौ.वि. वाराणसी, नव सं. 1958
26.	रैदास की वाणी		वैलेडियर प्रेस प्रयाग, नव सं. 1948
27.	वैष्णव धर्म	परशुराम चतुर्वेदी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नव सं. 1948
28.	सन्त वाणी संग्रह भाग 1		वेलेडियर प्रेस, प्रयाग, नव सं. 1933
29.	सन्त वाणी संग्रह भाग 2		वही, प्रथम सं. 1943
30.	हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि	डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत	साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम सं. 1961
31.	हिन्दी सन्त काव्य संग्रह	सम्पा. गणेश प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य अकादमी, प्रथम सं. 1952
32.	हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी ग्रन्थ संस्था, बम्बई, प्रथम सं. 1954

33.	हिन्दुत्व	रामदास गौड़	सेवा उपवन, काशी प्रथम सं. 1995
34.	हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध	डॉ. उदय भानु सिंह	दिल्ली विश्वविद्यालय, सन् 1963

पत्र–पत्रिकाएँ

1.	कल्याण (नारी विशेषांक)	गीता प्रेस गोरखपुर, 13वां सं. संवत् 2069
2.	कल्याण वेदांतक और परिशिष्टांक	गीता प्रेस, गोरखपुर, नव सं. 1936
3.	कल्याण उपासना अंक	गीता प्रेस, गोरखपुर, नव सं. 1968
4.	कल्याण सन्त वाणी अंक	गीता प्रेस, गोरखपुर, नव सं. 1955
5.	कल्याण भक्त चरितांक	गीता प्रेस, गोरखपुर, नव सं. 1952
6.	हिन्दी अनुशीलन संयुक्तांक	भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, 1976
7.	तन्त्र और सन्त	डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्रथम सं. 1965

शोध से सम्बन्धित विविध ग्रन्थ

1.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	
2.	स्त्रियों के अधिकारों का औचित्य	मेरी स्टोन काफर	
3.	तुलसीदास और उनका युग	डॉ. राजपति दीक्षित	
4.	महिलाएँ एवं उनकी समस्याएँ	महात्मा गाँधी	
5.	नन्ददास ग्रन्थावली	सम्पा. ब्रजरत्नदास	
6.	भारतीय नारी : दशा और दिशा	आशारानी बोरा	
7.	भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास	नलिनी मोहन सान्याल	

8.	भारतीय नारी कितनी जीती कितनी हारी	सुभाष चन्द्र सत्य	अनिल प्रकाशन, दिल्ली
9.	भारतीय साधना और सूर साहित्य	डॉ. मुंशीराम शर्मा	
10.	स्त्री के लिए जगह	राजकिशोर	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
11.	महाकवि सूरदास	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	
12.	साहित्य लहरी	सम्पा. प्रभुदयाल मीतल	
13.	परिधि पर स्त्री	मृणाल पाण्डे	
14.	सूरदास	आ. रामचन्द्र शुक्ल	
15.	भारतीय समाज में नारी	डॉ. प्रभा आप्टे	रावत पब्लिकेशन हाउस, जयपुर
16.	सूरदास	डॉ. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल	
17.	सूरदास	डॉ. जनार्दन मिश्र	
18.	सूरदास	डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा	
19.	सूर और उनका साहित्य	डॉ. हरवंश लाल शर्मा	
20.	सूर की काव्य कला	डॉ. मनमोहन गौतम	
21.	सूर की झांकी	डॉ. सत्येन्द्र	
22.	सूर निर्णय	द्वारिका प्रसाद पारीख	
23.	सूरसागर		नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
24.	सूर सारावली	सम्पा. प्रभुदयाल मीतल	
25.	सूर सागर	सम्पा. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	
26.	सूर सौरभ	डॉ. मुँशीराम शर्मा	
27.	हिन्दी में भ्रमर गीत काव्य और उसकी परम्परा	डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव	

28.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ. रामकुमार वर्मा	
29.	मध्यकालीन धर्म साधना	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	
30.	मध्यकालीन सन्त साहेब	डॉ. राम खिलावन पाण्डेय	
31.	महाराष्ट्र के सन्त कवि	आचार्य विनय मोहन शर्मा	
32.	मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद	डॉ. कपिल देव पाण्डेय	सं. 2020
33.	मलूकदास की वाणी		वेलेडियर प्रेस, प्रयाग, 1946
34.	मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति साहित्य में विरुद्ध भावना	डॉ. वी.एन. फिलिप	संगम प्रकाशन, इलाहाबाद
35.	सन्त संग्रह भाग 1-2		राधास्वामी सत्संग प्रकाशन, आगरा
36.	सन्त साहित्य	डॉ. प्रेम नारायण शुक्ल	
37.	सन्तों का भक्ति योग	डॉ. राजदेव सिंह	हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी
38.	सुन्दर विलास		वेलेडियर प्रेस, प्रयाग
39.	वैष्णव कबीर	स्वामी रांगीराज गोवत्स	गुरुद्वारा आश्रम, हरिद्वार
40.	मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव	डॉ. सरला त्रिगुणायत	साहित्य निकेतन, कानपुर
41.	मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैव मत का प्रभाव	डॉ. कमला भण्डारी	
42.	भारतीय संस्कृति और साधना	नायक विराज	वि.रा. परिषद्, पटना
43.	पलटू साहब की बानी		वेलेडियर प्रेस, प्रयाग
44.	अष्टछाप और सम्प्रदाय	डॉ. दीनदयाल गुप्त	
45.	अष्टछाप परिचय	प्रभुदयाल मीतल	

46.	उत्तरी भारत की सन्त परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी	
47.	औरत : एक दृष्टिकोण	अमृता प्रीतम	राजपाल एण्ड संस्, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1957
48.	आज की महिलाएं	विमल मेहता	पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, नव सं. 1975
49.	आधुनिक युग की लेखिकाएँ	उमेश माथुर	जैन एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम सं. 1969
50.	कामयाबी नारी की	प्रमिला कपूर	राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1976
51.	नारी तेरे रूप अनेक	सम्पा. क्षेमचन्द्र सुमन	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम सं. 1967
52.	नारी और समाज	चिरंजीलाल पाराशर	राकेश पब्लिकेशन, मेरठ, नव सं. 1969
53.	भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ	प्रमिला कपूर	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रम सं. 1976
54.	भारतीय महिलाएँ तथा अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष	शशिप्रभा	प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1975

शोध क्षेत्र से सम्बन्धित इन्टरनेट की वेब साइटें

1.	चौथी दुनिया	हिन्दी का साप्ताहिक अखबार	Google Internet
2.	शब्द कोश	रफ्तार	English Hindi Dictonary
3.	यौन शुचिता : इज्जत का अर्थ यौन शुचिता ही क्यों?		Webduniya, Sunday 9-8-2015
4.	शुचिता की चाह नारी से ही क्यों	डॉ. फौजिया नसीम शाद	Google Internet
5.	NAARIVAAD	विकीपिडिया	Google Internet

6.	नारी की निर्णय क्षमता पुरुष से कम नहीं	बिन्दु त्रिपाठी	Google Internet Webduniya
7.	मध्यकालीन भारतीय सांस्कृतिक अनुशीलन	युग बोध, पृ. 204	Google Internet
8.	भारत ज्ञान कोष	अक्का महादेवी	Google Internet
9.	स्त्री स्वर : पितृ सत्ता के स्वर पर प्रश्न चिह्न लगाने वाली कन्नड भाषा की पहली महिला कवयित्री : अक्का महादेवी		Google Internet
10.	आण्डाल	गुरु परंपराई	Google Internet
11.	स्त्री अस्मिता का संघर्ष : नये प्रश्न, नई चुनौतियाँ (शोध पत्रांश)	डॉ. फिरोजा जाफर अली	(छत्तीसगढ़ विवेक शोध पत्रिका) Google Internet
12.	भारत में महिला सशक्तिकरण : दशा और दिशा	धर्मवीर चन्देल	Google Internet
13.	नारी विमर्श : दशा, दिशा और समाज	डॉ. उषा त्यागी	swatantraawaz.com Google Internet
14.	वर्तमान युग की नारी	नीलम चौधरी	प्रवक्ता डॉट कॉम Google Internet
15.	नर-नारी का यह संसार	डॉ. प्रभुदत्त शर्मा 'पथिक'	अटल संदेश 31-4-2014 Google Internet
16.	मर्यादित जीवन सर्वोपरि		Google Internet
17.	दलित मत	खुशाल चन्द्र रैगर	Google Internet dalitmat.com/7.2.2012

❑